'इन पहाड़ों में जो सौन्दर्य दीख रहा है, मेरी कामना है कि वह यहाँ के लोगों में भी दीखे'—श्रीमती इन्दिरा गांधी

बदरीनाथ की ओर जाते हुए श्रीमती इन्दिरा गाँधी श्रीनगर (गढ़वाल) में लेखक के साथ

मूल्य : तीस रुपये
नक्शे सहित
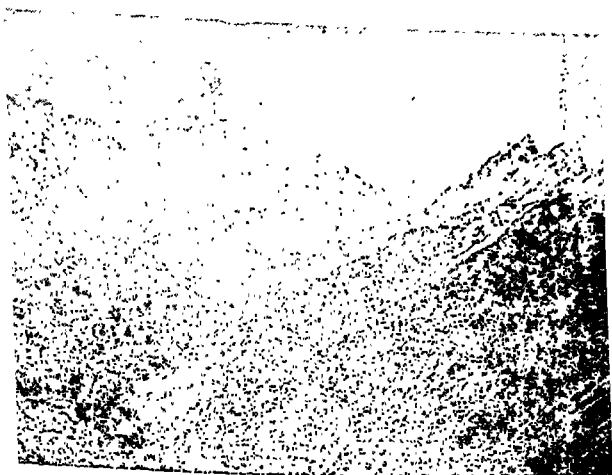
नगाधिराज के शिखर चमक-चमक उठे,
सुधांशु पीत सिन्धुजल लपक-लपक उठे।
कि प्राण में लहर उठे, चमक उठे धरा,
अनन्त शक्ति उर्वरा बने वसुन्धरा।

—उदय शंकर भट्ट

यस्ये में हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
—ऋग्वेद १०।१२१।४

(ये हिमवन्त पर्वत जिसकी महिमा गाते हैं, जिसके महत्त्व की घोषणा पृथ्वी (नदी) सहित समुद्र कर रहा है और जिसके सामर्थ्य की अभिव्यक्ति ये प्रदिशायें बाहुवत होकर कर रही हैं, उस देव की हम हविष्य से आराधना करते हैं।)

श्री बदरीनाथ-स्तुति

श्री पवन मन्द सुगन्ध शीतल हेम मन्दिर शोभितम् ।
निकट गंगा वहत निर्मल श्री बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।

शेष सुमिरन करत निशिदिन धरत ध्यान महेश्वरम् ।
श्री वेद ब्रह्मा करत स्तुति बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।

इन्द्र चन्द्र कुबेर दिनकर धूप दीप प्रकाशितम् ।
सिद्ध मुनिजन करत जय जय श्रीबद्रीनाथ विश्वम्भरम् ।

शक्ति गौरी गणेश शारद नारद मुनि उच्चारणम् ।
योग ध्यान अपार लीला श्री बदरीनाथ विश्वम्भरम् ।

यक्ष किन्नर करत कौतुक ज्ञान गंधर्व प्रकाशितम् ।
श्रीलक्ष्मी कमला चँवर डोले श्रीबदरीनाथ विश्वम्भरम् ।

कैलाश में एक देव निरंजन शैल शिखर महेश्वरम् ।
राजा युधिष्ठिर करत स्तुति श्रीबदरीनाथ विश्वम्भरम् ।

श्री बदरीनाथ जी के पंच रत्न पढ़त पाप विनाशनम् ।
कोटि तीर्थ भयो पुण्यं प्राप्यते फलदायकम् ।

—:o:—

बदरी केदार की ओर

[उत्तराखण्ड के चारों धामों— गंगोत्तरी, यमनोत्तरी, बदरीनाथ
केदारनाथ एवं पंच प्रयाग, पंच बदरी, पंच केदार आदि
तीर्थों का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि सहित सांगोपांग
सचित्र वर्णन]

लेखक
धर्मानन्द उनियाल 'पथिक' पत्रकार

मूल्य
तीस रुपये

प्रकाशक
रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
हरिद्वार

प्रकाशक :

रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन)
एस० एन० नगर, समीप आरती होटल
हरिद्वार-२४६४०१

मुख्य विक्रेता—
१. पुस्तक संसार, बड़ा बाजार, हरिद्वार
२. पुस्तक संसार, नुमाइश का मैदान, जम्मूतवी
३. सरस्वती पुस्तक भंडार, श्रीनगर (गढ़वाल)

मुद्रक—
ओम प्रिंटिंग प्रेस,
दाईवाड़ा, नई सड़क, दिल्ली-६

मूल्य—तीस रुपये

संस्करण : प्रथम १९८२
द्वितीय १९८८

BADRI KEDAR KI OR—By : Dharma Nand Uniyal

समर्पण

देह गेह से विरक्त हिमालय व गंगा की संस्कृति को दिग् दिगन्त तक प्रसारित करने में संलग्न देव भूमि उत्तराखंड में अपार श्रद्धा रखने वाले परम भागवत दिव्य जीवन संघ शिवानंद आश्रम के

परमाध्यक्ष

स्वामी चिदानन्द जी के

कर-कमलों में

सादर

समर्पित

धर्मानन्द उनियाल

एक ओर भौतिक माया में, सोया है संसार जहाँ,
एक ओर आध्यात्म चेतनाप्रद बदरी केदार यहाँ।
लेते हैं भगवान जन्म भक्तों के पावन भावों में,
गंगा बहती जहाँ प्राप्त करती संस्कृति विस्तार वहाँ।

—डा० पार्थसारथि डबराल

प्राक्कथन

भारतीय संस्कृति अत्यन्त प्राचीन एवं परिपुष्ट है। इसकी विविधता में एकता विश्व बन्धुत्व की भावना को जागृत करती, प्रेरणाप्रद रही है। शास्त्रकारों ने इसीलिए इस संस्कृति की प्रशंसा करते हुए स्पष्ट कहा है :—

> एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
> स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

उत्तराखंड इस संस्कृति का देदीप्यमान शुभ्रभाल है। इसके पवित्र तीर्थ इसका प्रशान्त वातावरण तथा प्राकृतिक सौंदर्य हठात् जनमानस को अपनी ओर खींचता रहा है। यह क्षेत्र जहाँ एक ओर विद्वानों के लिए एक पावन पाथेय है वहीं दूसरी ओर धार्मिक जीवन जीने वाले मनीषियों की क्रीड़ाभूमि तथा समाज सेवियों के लिए संघर्ष का प्रेरणा स्रोत है।

यद्यपि उत्तराखण्ड के पवित्र तीर्थों के सम्बन्ध में प्रारम्भ से अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान लेखकों ने अपनी-अपनी विचारधाराओं के अनुसार ग्रंथ लिखे। लिखकर इस क्षेत्र को देव भूमि एवं मोक्ष भूमि के रूप में स्वीकारा है परन्तु "बदरी केदार की ओर" के लेखक श्री धर्मानन्द उनियाल 'पथिक' ने इस ग्रन्थ में बदरी केदार से सम्बन्धित समस्त पावन तीर्थों का जितना विशद्, क्रमबद्ध एवं प्रामाणिक विवेचन किया है वह उल्लेखनीय है।

साथ ही लेखक ने यात्रा के व्याज से उत्तराखण्ड की ओर आ रही आधुनिकता के नाम मादक द्रव्यों की सेवन प्रचुरता के प्रति गहरी वेदना भी प्रकट की है। मेरा विचार है कि जहाँ पहले उत्तराखण्ड की पैदल यात्रा वहाँ के अधिकाधिक निवासियों के लिए आय स्रोत के साथ-साथ

भारत के बारे में जानने का उचित साधन थी वहां यात्रियों को प्राकृतिक सौन्दर्य एवं जन जीवन को समझने के लिए भी परम सहायक थी।

शहरी जीवन से त्रस्त मानव कुछ दिन इस पैदल प्राकृतिक सौन्दर्यमय यात्रा से अपार सन्तोष एवं शान्ति का अनुभव करता हुआ अपने को उन्मुक्त समझता था। किन्तु वर्तमान में यात्री तेज वाहनों वाली सुगम यात्रा के कारण वहां की वास्तविकता की जानकारी से अपने आपको वंचित समझता है।

सैलानियों के लिए इस क्षेत्र में अब भी ऐसे अनेक सौन्दर्यपूर्ण प्राकृतिक पर्यटक स्थल हैं, जहां आधुनिकता का प्रभाव नहीं है। यदि पर्यटन उद्योग इन स्थलों को पैदल यात्रियों के लिए पर्यटन स्थल के रूप में विकसित करे तो जहां एक ओर वहां के निवासियों के जीवन निर्वाह के लिए ये यात्राएँ आर्थिक संबल होंगी वहां सैलानियों के लिए भी ये स्थल आकर्षण पैदा करेंगे।

मैं आशा करता हूं कि 'श्री उनियाल' की यह कृति पर्वतीय क्षेत्र के सैलानियों के लिए एवं धार्मिक जिज्ञासुओं के लिए मार्ग दर्शक सिद्ध होगी।

शुभकामनाओं सहित

—हेमवती नन्दन बहुगुणा
संसद सदस्य

२ अक्टूबर १९८२

लेखक की ओर से

हिमालय समस्त भारतीय चेतना का महान देवालय रहा है। सृष्टि के आदिकाल से ही यह देवात्मा ज्ञान, विज्ञान, भक्ति और दर्शन की महिमा से ओत-प्रोत रहा है। वैदिक संस्कृति और भारतीय जीवन-धारा में नग-पति के महान योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। न केवल आध्या-त्मिक रूप में अपितु भौतिक-रूप में भी इस भू के अखण्ड मानदण्ड ने हमें उपकृत किया है। सारा उत्तरी-भारत इसकी नदियों और इसके रज-कणों का वरदान है। यह रत्नों और औषधियों का भण्डार है, वर्षा का आह्वान करता पुरोहित है और सारे भारत की जलवायु का नियन्त्रक है।

इस पर्वतराज ने जिज्ञासुओं को अपनी गोद में बिठाकर ब्रह्म का ज्ञान कराया। इसकी रचना में सृष्टि-कर्त्ता की सामर्थ्य का भान हुआ और इसका गुणानुवाद भी विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद में—"यस्ये मे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु" : (१०– १२१/४) द्वारा घोषित हुआ।

पुरुष सूक्त को पढ़ते समय लगता है यह सहस्र हस्त, सहस्र पाद, सहस्र शीर्ष विराट पुरुष का आधिभौतिक विग्रह ही क्या यह सहस्र शृंग हिमालय नहीं ? भगवान कृष्ण ने जब अपने विराट स्वरूप में स्थिरता नाम के महान तत्त्व की चर्चा की तो उनके नेत्रों में स्थिरता की यह श्वेत मूर्ति हिमालय घूम रहा था। उन्होंने कहा—'स्थवराणां हिमालयः' (गीता) अर्थात् अर्जुन ! स्थिर वस्तुओं में मैं हिमालय हूं।

भारतीय चिन्तन के इतिहास में हिमालय का सदा सम्मान रहा है और इसको हमेशा स्मरण किया गया है। भारतीय मनीषा ने उसकी त्रैकालिक सत्ता को कभी ओझल नहीं होने दिया।

युगीन परिवेश एवं चेतना के कारण हिमालय को अनेक दृष्टियों एवं कोणों से देखा गया है। सभी पुराणों ने हिमालय को हमेशा स्मरण किया

है। पुराण वेत्ता को हिमालय ने इतना आकर्षित किया कि अपने किसी भ
प्रस्तुतिकरण के लिए वे हिमालय का नाम जोड़ना आवश्यक समझते थे
विष्णु-पुराण ने भारतीयों की पहचान कराने में भी हिमालय को ही या
किया है। यथा :—

उत्तरे यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥

आदि कवि वाल्मीकि ने जब भगवान राम की दृढ़ता की प्रशंसा की तो वे भी हिमालय को न भूला सके। उनकी दृढ़ता की तुलना उन्होंने हिमालय से—स्थैर्येण हिमवानिव—कहकर ही की।

हिमालय के महान आकर्षण ने सबको अपनी ओर खींचा है। तपस्वियों को इसकी नीरवता ने, आध्यात्मवादियों को इसकी अलौकिकता ने, पर्यटकों को इसके सौन्दर्य ने, और अनुसंधान-कर्ताओं को इसके अपार रत्न-भंडार ने अपनी ओर खीचा है।

कला व साहित्य की कल्पना एवं रचना में हिमालय के योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा' के गायक कवि कुल-गुरु कालिदास हों, हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती के रचनाकार जयशंकर प्रसाद हों, जय जय शुभ्र हिमालय शृंगा के रचयिता श्रीधर पाठक हों या नमन मेरा हिमजलद अभिषिक्त शृंगों को, के रचनाकार डा० जगदीश गुप्त हों, हिमालय सबकी चेतना में साकार रहा है। इतना ही नहीं उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने—'ए हिमाला ! ऐ फसीले किश्वरे हिन्दोस्तां' और नजीर बनारसी ने—

कलाओं का मन्दिर अदब का शिवाला।
वतन का पुराना निगहबां हिमाला ॥

कहकर हिमालय का सम्मान किया है। बंगाल के महान कवि गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने—

"हे निस्तब्ध गिरिराज, अभ्रभेदी तोमार संगीत।
तरंगिया चलियाछे अनुदात्त उदात्त स्वरित।"

गा कर हिमालय के प्राकृतिक रूप में प्राणों का स्पंदन देखा था।

स्तर को मैंने इतने नीचे ले जाने की कोशिश भी नहीं की कि स्तरीय पाठक इसे पढ़ना पसन्द ही न करें।

इस पुस्तक में मैंने उत्तराखण्ड के तीर्थों के सम्बन्ध में लगभग सभी पक्षों की जानकारी देने का प्रयास किया है। मैंने प्रयत्न किया है कि यात्रियों को उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से भी परिचित कराया जाय। पुस्तक में तीर्थ के अर्थ और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। एक अध्याय में उत्तराखण्ड में तीर्थ यात्रा की परम्परा पर भी प्रकाश डाला गया है। तीर्थ स्थानों की परस्पर दूरी, सिन्धु तट से ऊँचाई, आवास व्यवस्था, विभिन्न पूजाओं की जानकारी तथा अन्य सामान्य सूचनाओं का पुस्तक में यथास्थान समावेश कर दिया गया है। अनेक दुर्लभ-चित्रों को देकर पुस्तक में सजीवता एवं रोचकता लाने का यत्न किया गया है।

इस पुस्तक को तैयार करने में मैंने जिन विद्वानों की रचनाओं से सहायता प्राप्त की है उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ। ऐसे सभी ग्रंथकारों का मैंने यथास्थान नामोल्लेख भी कर दिया है।

पुस्तक तैयार करते समय जिन मित्रों ने मुझे प्रोत्साहित किया है उनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं। उनमें कुछ नाम इस प्रकार हैं:—श्री आर० पी० सुन्दरियाल, श्री एस० एन० कोठियाल, श्री पी० डी० डोवरियाल, श्री बी० डी० सुन्दरियाल, डा० रतन सिह चौहान (श्रीनगर, गढ़वाल) डा० चन्द्रमोहन चमोली, श्री वाचस्पति उनियाल, डा० कमलेश्वर भट्ट (दिल्ली), श्री हरि प्रसाद कुकरेती (कोटद्वार), श्री पुष्कर सिह कन्डारी जिला विद्यालय निरीक्षक (पौड़ी) श्री मोहन लाल बाबुलकर (प्रयाग) तथा अनुज अनुसूया प्रसाद उनियाल व प्रिय सुरेन्द्र उनियाल।

मैं रूप छाया स्टुडियो के स्वामी श्री सुरेशानन्द कोठियाल, श्री जयदेव कोठियाल और श्री जे० के० रावत (गढ़वाल विश्वविद्यालय) का अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के लिए अनेक दुर्लभ चित्र उपलब्ध कराए हैं।

वर्तमान सभ्यता हमारे इन पवित्र तीर्थों में यद्यपि विकृति उत्पन्न करने की कोशिश कर रही है तथापि वहाँ के अलौकिक वातावरण में मनुष्य तन्मय होकर प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित कर क्षण भर के लिए तो भौतिक संसार की निस्सारता का अनुभव कर ही लेता है।

पश्चिम की भोगवादी सभ्यता भले ही मनुष्य को तनिक देर के लिए आरोपित कर ले किन्तु उससे आत्मिक शान्ति काफी दूर नजर आती है भोग की पराकाष्ठा पर पहुँचकर भी पश्चिम का जन-मानस आज छटपटा रहा है। भोग से उसे ग्लानि महसूस हो रही है और आत्मिक शान्ति के लिए वह आज पूर्व की ओर भाग रहा है। यह अकारण नहीं। अस्तु,

प्रस्तुत पुस्तक, "बदरी केदार की ओर" उत्तराखण्ड की ओर आने वाले यात्रियों और पर्यटकों की उस जिज्ञासा का परिणाम है जिसे वह अपने अन्तर में दबाए लौट जाते थे। चूंकि यातायात की आधुनिक सुविधा के कारण उन्हें ऋषिकेश से डिब्बे में बन्द कर सीधे बदरी-केदार या गंगोत्तरी, यमनोत्तरी पहुँचाया जाता है और वहाँ एक रात रहकर फिर उसी डिब्बे में बन्द कर वापिस ऋषिकेश छोड़ दिया जाता है। मार्ग में कौन कौन-से तीर्थ हैं, किन नदियों के संगम हैं, किस तीर्थ का क्या महत्त्व है, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि क्या है, क्षेत्र की बोली भाषा, रस्म रिवाज और खान-पान कैसे हैं, इसका कुछ भी पता उन्हें नहीं चलता। जब यात्रा पैदल थी तब उन्हें क्षेत्र की पूरी जानकारी मिल जाती थी और क्षेत्रवासियों को भी अपने देश के विभिन्न प्रान्तों के लोगों के रहन-सहन बोली-भाषा एवं खान-पान का पता लग जाता था। एक रात्रि के प्रवास में तीर्थ यात्रियों को उस तीर्थ विशेष की भी जानकारी नहीं हो पाती जिसकी उन्होंने यात्रा की है।

उत्तराखण्ड के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी देने वाली बाजार में किसी ऐसी पुस्तक का अभाव देखकर मैंने जिज्ञासुओं की क्षुधा शांत करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक को जिज्ञासुओं के हाथ में देने का प्रयास किया है। पुस्तक की भाषा-शैली को मैंने इतना सरल रखा है कि साधारण हिन्दी जानने वाला व्यक्ति भी इससे लाभान्वित हो सकता है परन्तु भाषा के

स्तर को मैंने इतने नीचे ले जाने की कोशिश भी नहीं की कि स्तरीय पाठक इसे पढ़ना पसन्द ही न करें।

इस पुस्तक में मैंने उत्तराखण्ड के तीर्थों के सम्बन्ध में लगभग सभी पक्षों की जानकारी देने का प्रयान किया है। मैंने प्रयत्न किया है कि यात्रियों को उत्तराखण्ड की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से भी परिचित कराया जाय। पुस्तक में तीर्थ के अर्थ और उसके महत्त्व पर भी प्रकाश डाला गया है। एक अध्याय में उत्तराखण्ड में तीर्थ यात्रा की परम्परा पर भी प्रकाश डाला गया है। तीर्थ स्थानों की परस्पर दूरी, सिन्धु तट से ऊँचाई, आवास व्यवस्था, विभिन्न पूजाओं की जानकारी तथा अन्य सामान्य सूचनाओं का पुस्तक में यथास्थान समावेश कर दिया गया है। अनेक दुर्लभ-चित्रों को देकर पुस्तक में सजीवता एवं रोचकता लाने का यत्न किया गया है।

इस पुस्तक को तैयार करने में मैंने जिन विद्वानों की रचनाओं से सहायता प्राप्त की है उनके प्रति मैं हार्दिक आभार प्रकट करता हूं। ऐसे सभी ग्रंथकारों का मैंने यथास्थान नामोल्लेख भी कर दिया है।

पुस्तक तैयार करते समय जिन मित्रों ने मुझे प्रोत्साहित किया है उनके प्रति भी मैं अपना आभार व्यक्त करता हूं। उनमें कुछ नाम इस प्रकार हैं :—श्री आर० पी० सुन्दरियाल, श्री एस० एन० कोठियाल, श्री पी० डी० डोबरियाल, श्री बी० डी० सुन्दरियाल, डा० रतन सिंह चौहान (श्रीनगर, गढ़वाल) डा० चन्द्रमोहन चमोली, श्री वाचस्पति उनियाल, डा० कमलेश्वर भट्ट (दिल्ली); श्री हरि प्रसाद कुकरेती (कोटद्वार), श्री पुष्कर सिंह कन्डारी जिला विद्यालय निरीक्षक (पौड़ी) श्री मोहन लाल बाबुलकर (प्रयाग) तथा अनुज अनुसूया प्रसाद उनियाल व प्रिय सुरेन्द्र उनियाल।

मैं रूपा छाया स्टुडियो के स्वामी श्री सुरेशानन्द कोठियाल, श्री जयदेव कोठियाल और श्री जे० के० रावत (गढ़वाल विश्वविद्यालय) का अत्यधिक आभारी हूं जिन्होंने पुस्तक के लिए अनेक दुर्लभ चित्र उपलब्ध कराए हैं।

हिमालय के वरद-पुत्र भारतीय राजनीति के स्तम्भ माननीय हेमवती नन्दन बहुगुणा जी के प्रति मैं अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने अपनी राजनैतिक व्यस्तता से समय निकाल इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखा है।

आर० बी० एस० प्रकाशन के मालिक श्री रणधीर सिंह जी का भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन में गहरी रुचि ली। पुस्तक की साज-सज्जा का सारा श्रेय उन्हीं को जाता है।

मुद्रणालय दूर होने से मैं पुस्तक के अन्तिम प्रूफ नहीं पढ़ पाया अतः पुस्तक में प्रूफ की कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं जिसके लिए मैं सुधी पाठकों से क्षमा-प्रार्थी हूं।

मेरा यह प्रयास कितना सफल रहा है,-इसका निर्णय पाठक करेंगे। इस पुस्तक के पढ़ने से पाठकों की जिज्ञासा कुछ भी शान्त हुई तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

गांधी जयन्ती
२-१०-८२

—धर्मानन्द उनियाल

प्रकाशकीय

नगाधिराज हिमालय की गोद में अवस्थित उत्तराखण्ड के परमपावन तीर्थ चिरकाल से हिन्दू जगत की आस्था के केन्द्र रहे हैं। इनके नैसर्गिक परिवेश ने न केवल धर्म में आस्था रखने वालों को अपितु प्रकृति प्रेमियों को भी आकर्षित किया है। जिज्ञासुओं को ऐसे क्षेत्र के सम्बन्ध में अधिक जानने की इच्छा स्वाभाविक है।

हमारी धार्मिक साहित्य को प्रकाशित करने में प्रारम्भ से ही रुचि रही है। हमें खुशी है कि हमने सत्साहित्य से जनता की सेवा करने का प्रयास किया है और यह प्रयास सतत जारी है।

उत्तराखण्ड की विस्तृत जानकारी देने वाली पत्रकार श्री धर्मानन्द उनियाल द्वारा लिखित—बदरी केदार की ओर नामक पुस्तक को प्रकाशित करने में हमें गौरव का अनुभव हो रहा है। पुस्तक में जहाँ धार्मिक स्थलों की गवेषणापूर्ण जानकारी है वहाँ उत्तराखण्ड के ऐतिहासिक वृत्त पर भी शोधपूर्ण सामग्री है।

जिस साज-सज्जा के साथ हम प्रस्तुत पुस्तक को पाठकों के हाथों में देना चाहते थे, किन्हीं कारणों से वह न दे पाये, फिर भी हमने पुस्तक को सुरुचिपूर्ण बनाने का भरसक प्रयत्न किया है। हमें आशा है कि पाठक इस पुस्तक का स्वागत करेंगे और कमियों की ओर हमारा ध्यान भी आकर्षित करेंगे ताकि आगामी त्रुटि रहित संस्करण को पूर्ण

साज-सज्जा के साथ हम अपने सुधी पाठकों के सम्मुख शीघ्र प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकें।

कागज और छपाई की दरों में अत्यधिक वृद्धि होने पर भी हमने पुस्तक का मूल्य अधिक नहीं रखा है। हम चाहते हैं कि यह उपादेय पुस्तक अधिक से अधिक लोगों के हाथों मे जाये। पाठकों की सन्तुष्टि ही हमारा ध्येय है।

—प्रकाशक

प्रथम संस्करण के सम्बन्ध में विद्वानों तथा समाचार-पत्रों की सम्मतियां

'लेखक ने हिमालय की इस उपत्यका में जन्म लेकर भारतवर्ष के लिए इस विराट नगाधिराज हिमाच्छादित पर्वत की अपार महिमा का ही वर्णन नहीं किया है, वरन भारत के हृदय की उस पारसमणि को ढूंढ निकाला है जिसके स्मरण मात्र से हमारा अन्तस स्वाभिमान की ऊँचाइयों से भर जाता है। श्री उनियाल ने वेदों और पुराणों के काल से लेकर वर्तमान तक इस क्षेत्र के सभी तीर्थों, नदियों और भू-भागों का सजीव और आँखों देखा वर्णन किया है। प्रत्येक स्थल पर लेखक पाठक को अपने साथ लेकर चला है। इस पुस्तक को अनेक भाषाओं में छपवा कर सभी तीर्थों एवं यात्रा संस्थानों में रखना चाहिए। तभी हमारे देश की आध्यात्मिक धरोहर इस अमूल्य सामग्री को एकत्रित करने और उसे शुद्ध प्रांजल भाषा में लिपिवद्ध करने में लेखक का श्रम सार्थक होगा।'

प्राचार्या कमला रत्नम्
एफ १/७ हौजखास, नई दिल्ली

'इस ग्रंथ में श्री उनियाल जी ने हिमालय एवं गंगा की संस्कृति का जिस तल्लीनता के साथ चित्रण किया है उससे अनुभूतियों का निराकार भी साकार हो जाता है। फलतः पाठक के हृदय में आनन्द धारा कल-कल छल-छल वहने लगती है और सम्पूर्ण पुस्तक के अध्ययन के उपरान्त आंखों के सम्मुख उत्तराखंड के सम्वन्ध में एक विराट विम्व की सृष्टि हो जाती है। पुस्तक का २१वां अध्याय उत्तराखंड के लोक जीवन के हृदय का स्पन्दन है। श्री उनियाल ने इस अध्याय में प्रकृति को जीवनी शक्ति और प्रेरिका स्वीकार करते हुए उसकी जो महत्ता स्वीकार की उसके लिए वे

बधाई के पात्र है। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि भारतवासी एवं भारत में भ्रमण हेतु आए हुए अनेक विदेशी पर्यटक इस कृति को अवश्य पढ़ें।

डा० चन्द्रमोहन चमोली
अध्यक्ष, दिल्ली साहित्य समाज
नई दिल्ली २५।३।८३

उत्तराखंड भारतीय संस्कृति का एक महानतम प्रदेश है। प्राचीनकाल से ही इस देव भूमि की महिमा रही है। आर्यों के भारत आगमन के पश्चात् ही हिमालय का महत्त्व बढ़ चुका था तथा यहाँ की हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियाँ, हिमालय से उद्भूत पवित्र गंगा तथा यमुना और अन्ततः यहाँ के तीर्थ आर्य संस्कृति के लिए प्रेरणा स्रोत बन गए। विविध पक्षों से समृद्ध यह प्रदेश किसी भी ज्ञान पिपासु के लिए महत्त्वपूर्ण आकर्षण विन्दु है।

ऐसे प्रदेश पर श्री धर्मानन्द उनियाल द्वारा लिखा हुआ ग्रंथ "बदरी केदार की ओर" बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ है। पुस्तक में गढ़वाल के सभी महत्त्वपूर्ण तीर्थ स्थलों, पर्यटक क्षेत्रों के अतिरिक्त ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों को उजागर करते हुए विवरण प्रस्तुत किए गए हैं। स्पष्टतः यह पुस्तक किसी भी पर्यटक, धार्मिक यात्रा से सम्बद्ध एवं जन साधारण जिज्ञासु के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। इसकी महत्ता इस कारण भी पुष्ट होती है कि इसका दूसरा संस्करण शीघ्र हो रहा है।

इस पुस्तक के आद्योपान्त अध्ययन करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि उत्तराखंड के इस अंचल को पूर्ण रूप से समझने के लिए किसी भी व्यक्ति के लिए इसका संकलन लाभप्रद होगा। इस उपयोगी पुस्तक के लेखक श्री धर्मानन्द उनियाल 'पथिक' को मेरी हार्दिक बधाई एवं शुभ कामनाएँ कि इसके अनेक संस्करण भविष्य में भी प्रकाशित होकर उत्तराखंड की यात्रा में आए हुए जनमानस के लिए अधिक से अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकेंगे।

प्रोफेसर के० पी० नौटियाल
विभागाध्यक्ष इतिहास एवं पुरातत्त्व तथा डीन
कलासंकाय, गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर।

'बदरी केदार की ओर' केवल एक लेखक का प्रस्तुत किया गया उत्तराखंड प्रदेश का विवरण मात्र नहीं है। इस कृति के लेखन में जहां एक ओर इस प्रदेश के प्रति लेखक की उत्कट आस्था रही है, वहीं दूसरी ओर उसने इस पुस्तक पर योजनाबद्ध तरीके से अत्यन्त परिश्रम के साथ कार्य किया है। इसकी योजनाबद्धता ही, इस कृति को महत्त्वपूर्ण और उद्देश्यः परक बनाती है।

लेखक की यह कृति केवल उसके व्यक्तिगत अनुभवों पर ही आधारित नहीं है। इस ग्रंथ को तैयार करने में उसने भारतीय और पश्चिमी विद्वानों के लिखे अनेक ग्रंथों से सहायता ली है और उसे समीचीन बनाने का भरपूर प्रयास किया है। इससे इस कृति की उपयोगिता काफी बढ़ गई है और इसका स्वरूप एक सामान्य कृति से उठकर शोध प्रबन्ध जैसा हो गया है।

ब्लिटज २३ अप्रैल १९८३

'पथिक जी मूलरूप से एक पत्रकार भी हैं। अत: उनकी दृष्टि उन संदर्भों को स्पष्ट करने में सार्थक सिद्ध हुई है, जिनसे जन सामान्य को उत्तराखंड की यात्रा के लिए स्वत: प्रेरणा एवं जिज्ञासा प्राप्त होती है। पुस्तक की लेखन शैली रोचक, सरल तथा सारगर्भित है और एक बार हाथ में लेकर उसको पूरा करने की पाठक की जिज्ञासा निरन्तर बलवत्तर होती जाती है। एक यात्री के लिए ही नहीं एक साहित्य-जिज्ञासु के लिए भी पुस्तक की उपादेयता असंदिग्ध है। उत्तराखंड दर्शन की सम्यक जानकारी देने वाली इस उपयोगी पुस्तक के लिए श्री धर्मानन्द उनियाल बधाई के पात्र हैं।'

गढ़वाल मंडल (साप्ताहिक) १५ अप्रैल १९८३

'पत्रकार धर्मानन्द उनियाल ने 'बदरी केदार की ओर' पुस्तक लिखकर बहुत सराहनीय कार्य किया है। पुस्तक में प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थों तथा उत्तराखण्ड से सम्बन्धित पुस्तकों और इतिहास के दृष्टान्तों सहित तीर्थ स्थलों का वर्णन सुरुचिपूर्ण ढंग से किया गया है। पुस्तक को आद्यो-

पान्न पढ़ने से लगता है कि पुस्तक की सामग्री जुटाने में लेखक ने बहुत परिश्रम किया है। इसीलिए पुस्तक उपयोगी भी बन गई है।

नया जमाना, देहरादून ३० अप्रैल १९८३

लेखक द्वारा पुस्तक को २३ अध्यायों में बाँटा गया है। पुस्तक के प्रथम अध्याय में 'पौराणिक पुरावृत्त में केदारखण्ड' तथा 'केदारखण्ड के आदि मानव' एवं तीसरे अध्याय में 'वल्लभाचार्य और तुलसीदास की बदरीनाथ यात्रा' लेख खोजपूर्ण हैं। उधर इक्कीसवाँ अध्याय 'उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा का भविष्य' सामयिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस विषय के अन्तर्गत तीर्थाटन के प्राचीन स्वरूप को बिगाड़ने, तथा इन तीर्थ स्थानों को सैरगाह के रूप में मात्र पर्यटक स्थल बनवाने में आधुनिक सभ्यता, विलासिता तथा सुविधाओं की चकाचौंध को दोषी ठहराकर तर्क संगत बात कही गई है। पुस्तक को तैयार करने में लेखक का प्रयास सराहनीय है। पुस्तक की छपाई उत्तम तथा मुख पृष्ठ आकर्षक है।

नैनीताल समाचार १ मार्च १९८४

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

१

केदारखण्ड (गढ़वाल) का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत पुस्तक में जिन तीर्थस्थलों एवं पर्यटनस्थलों का वर्णन किया है वे सभी गढ़वाल हिमालय में अवस्थित हैं, अतः केदारखण्ड के इन तीर्थस्थलों एवं पर्यटनस्थलों की जानकारी करने से पूर्व यहाँ का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना समीचीन होगा।

गढ़वाल हिमालय का यह पर्वतीय क्षेत्र जहाँ उत्तरी भारत के प्रसिद्ध तीर्थ बदरी-केदार और गंगोत्तरी-यमनोत्तरी विद्यमान हैं तथा जहाँ जग विख्यात गंगा-यमुना का स्रोत प्रदेश है, पृथ्वी की २९°, २६' उत्तरी अक्षांश एवं ७८°, १२' पूर्वी देशान्तर रेखाओं के मध्य अवस्थित है[1]। इसके पूर्व में पिथौरागढ़, अलमोड़ा और नैनीताल, दक्षिण में जिला बिजनौर तथा सहारनपुर, पश्चिम में हिमाचल प्रदेश और उत्तरी सीमा के उस पार हूणदेश (तिब्बत) स्थित है।

इस पर्वतीय भू-खण्ड को वर्तमान में 'गढ़वाल' नाम से जाना जाता है। जो प्रशासन की दृष्टि से चमोली, उत्तरकाशी, टिहरी, पौड़ी और देहरादून जनपदों में विभक्त है। ये पाँचों जिले गढ़वाल मंडल (कमिश्नरी) के अन्तर्गत हैं, जिसका मुख्यालय वर्तमान में पौड़ी है। गढ़वाल कमिश्नरी का गठन १ जनवरी १९६९ को हुआ। इससे पूर्व गढ़वाल कुमायूँ कमिश्नरी में था।

उत्तराखंड के इस पर्वतीय क्षेत्र को प्राचीन काल में—तपोभूमि, बदरिकाश्रम, हिमवन्त, देवभूमि एवं केदारखण्ड आदि नामों से पुकारा जाता रहा है। 'गढ़वाल' नाम इसका १५०० ई० के आस-पास हुआ। 'गढ़वाल' शब्द योगरूढ़ि है। अर्थात गढ़ वाला। वाला प्रत्यय है, जिससे

1. हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास।

गढ़वाल शब्द योगिक हुआ[1]। पण्डित हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने गढ़वाल के इतिहास में लिखा है कि सन् १५०० ई० से पूर्व यहाँ ठकुरी राजाओं के छोटे-छोटे ५२ 'गढ़' (किले) थे, जिन्हें पँवारवंश के ३७वें राजा अजयपाल ने सन १५०० ई० के लगभग पराजित कर अपने नव निर्मित राज्य—गढ़वाल—में विलीन कर दिया। सन १८०४ ई० तक अविभाजित गढ़वाल पर पँवारवंश के राजाओं का एकाधिपत्य रहा। १८०४ ई० में गढ़वाल पर गोरखों ने आक्रमण कर इसे विजित कर दिया, पँवारवंश का तत्काल राजा प्रद्युम्नशाह गोरखों से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। १८१५ ई० तक गढ़वाल पर गोरखों का शासन रहा। प्रद्युम्नशाह के सुदर्शनशाह ने अंग्रेजों से मदद ली, तब १८१५ ई० में अंग्रेजों ने गोर को परास्त कर गढ़वाल से खदेड़ दिया। सिगोली की सन्धि के अनुस आधा गढ़वाल अंग्रेजों को युद्ध के हर्जाने के रूप में दिया गया और अ हिस्से पर सुदर्शनशाह का आधिपत्य हो गया। इस प्रकार गढ़वाल के हिस्से हो गये।

अलकनन्दा और मन्दाकिनी नदी के पूर्वी भाग पर अंग्रेजों का शास और पश्चिमी भाग पर पँवारवंशीय राजा सुदर्शनशाह का शासन ह गया। अंग्रेजों द्वारा शासित क्षेत्र को टिहरी रियासत पुकारा जाने लगा सन् १९४७ ई० में देश के स्वतन्त्र होने पर ब्रिटिश गढ़वाल उत्तर प्रदेश स्वयमेव विलीन हो गया। बाद में अगस्त सन् १९४७ ई० में टिहरी रियासत भी उत्तर प्रदेश के महाराज्य में विलीनीकरण टिहरी रियासत के अन्तिम राजा मानवेन्द्रशाह के समय हुआ।

सन् १९६० ई० तक गढ़वाल के दो हीं जिले रहे, पौड़ी गढ़वाल और टिहरी गढ़वाल। १९६० में टिहरी गढ़वाल की रवांई तहसील और पौड़ी गढ़वाल की चमोली तहसील को पृथक जिलों के रूप में मान्यता दी गई और इस प्रकार गढ़वाल चार जिलों में विभक्त हो गया। अब प्रशासन की दृष्टि से देहरादून को भी गढ़वाल में शामिल किया है, जो कि गोरखा आक्रमणों से पूर्व गढ़वाल का ही एक अभिन्न अंग था। देहरादून सहित

1. हरिकृष्ण रतूड़ी—पूर्वोक्त।

पीछे नहीं है। गढ़वालियों की गौरवपूर्ण सैनिक परम्परा विश्व विख्यात है। यहाँ के लोग छल कपट से दूर अपनी ईमानदारी के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ के लोगों का बौद्धिक स्तर भी काफी ऊँचा है। शिक्षा मिलने पर यहाँ के लोग सभी क्षेत्रों में आशातीत सफलता प्राप्त कर सकते हैं। हिन्दी जगत में सर्वप्रथम डाक्ट्रेट की उपाधि धारण करने वाले पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल यहीं पैदा हुए। विश्व विख्यात चित्रकार व कवि मौलाराम व मूर्तिकार अवतारसिंह पँवार को इसी धरती ने जन्म दिया। घनानन्द खण्डूड़ी व स्वामीराम जैसे दानी, भरत कवि, मेधाकर शास्त्री, हरिदत्त शास्त्री, चन्द्रकुँवर, बालकृष्ण भट्ट, अम्बा शायर, आधुनिक वाराहमिहिर मुकुन्द दैवज्ञ जैसे विद्वान साहित्यकार, विक्टोरिया क्रास विजेता ठाकुर गबरसिंह नेगी व दरबानसिंह नेगी तथा चन्द्रसिंह गढ़वाली जैसे शूरवीर, आत्मदानी श्रीदेव सुमन, नागेन्द्र सकलानी और मौलू भरदारी, नन्दू जुयाल मेजर हर्ष बहुगुणा, मेजर जय बहुगुणा, कैं० विजयपाल सिंह नेगी (सभी शहीद) कु० हर्षवन्ती विष्ट एवं कु० बचेन्द्रीपाल जैसे पर्वतारोही, श्री हेमवती नन्दन बहुगुणा जैसे राजनीतिज्ञ इस गढ़वाल की धरती में पैदा हुए हैं। आज तो अनेक साहित्यकार, पत्रकार, प्रशासक, राजनेता व कलाकार देश सेवा में जुटे हैं। गढ़वाल मण्डल में यदि कमी है तो केवल यही कि अभी भी आर्थिक दृष्टि से यह क्षेत्र अत्यधिक विपन्न है। इस क्षेत्र की बोलचाल की भाषा गढ़वाली है किन्तु हिन्दी भी सभी लोग समझते हैं।

पौराणिक पुरावृत में केदारखण्ड (गढ़वाल)

पौराणिक पुरावृत में चिन्तकों ने हिमालय को पाँच खण्डों में विभाजित किया है, यथा—

> खण्डा: पंच हिमालयस्य कविता नेपाल कूर्माचलो।
> केदारोऽथ जलंधरोऽथ रुचिर: कश्मीर संज्ञोऽन्तिम: ॥

अर्थात् पहला नेपालखण्ड, दूसरा कूर्मांचल, तीसरा केदारखण्ड, चौथा जालंधर (पंजाब का पर्वतीय प्रदेश) और पाँचवां खण्ड कश्मीर। इन पाँचों खण्डों में केदारखण्ड अब गढ़वाल के नाम से प्रसिद्ध है। जिसका संक्षिप्त परिचय पूर्व पृष्ठों में दिया गया है। उक्त खण्डों के तीर्थ स्थलों का वर्णन

करने के लिए इन्ही के नामों पर आधारित ५ ग्रंथों की रचना मनीषियों द्वारा की गई है। जो इस प्रकार हैं—नेपाल प्रस्ताव (नेपालखण्ड), कूर्मांचल प्रस्ताव (कूर्मांचलखण्ड), केदार प्रस्ताव (केदारखण्ड), जालंधर प्रस्ताव (जालंधरखण्ड) एवं कश्मीर प्रस्ताव (कश्मीरखण्ड)[1]।

केदारखण्ड नामक ग्रन्थ प्रकाशित भी हो चुका है। इसमें २०६ अध्याय हैं और हरिद्वार से लेकर बदरीनाथ तक के तीर्थों का इसमें रोचक वर्णन है। केदारनाथ ग्रन्थ को स्कन्द पुराण का एक हिस्सा माना जाता है। इस ग्रन्थ के अनुसार हरिद्वार से लेकर श्वेतपर्वत अर्थात् महाहिमालय तक एवं तमसा (टौंस) नदी से बौद्धाचल (बधाण में नन्दादेवी पर्वत) तक विस्तृत भू-खण्ड केदारमण्डल (केदारखण्ड) कहलाता है। इस पुण्यक्षेत्र में विचरने के लिए देवी-देवता भी लालायित रहते हैं। भू-मण्डल पर यह प्रदेश सर्वथा निराला है। यह स्वर्ग द्वार कहा गया है।[2]

केदारखण्ड की भूमि को पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों से निराला बतलाना केवल कवि कल्पना मात्र नहीं है। इसकी विशिष्टता एवं दुर्लभता का अनुभव प्रत्यक्ष द्रष्टा को ही हो सकता है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसकी अलौकिक छटा से आकर्षित होकर ही इसे अपनी तपश्चर्या की भूमि बनाया था। इसकी निर्जन वन वीथिकायें, हिमधवल उत्तुंग पर्वत मालायें, फूलों की घाटियाँ, ऊँचे-ऊँचे जल प्रपातों की दूधिया धारायें, देवदारू और चीड़

1. तीर्थानि प्रवराण्येव श्वेताख्ये पर्वतोत्तमे,
अग्रे मानस प्रस्तावे तथा नेपालके मुनि।
कश्मीरेचैव प्रस्तावे जालंध्रे वै तथा पुनः,
तथा केदार प्रस्तावे कथितानि मयाद्यते।

—केदारखण्ड २०४।५६-५७

2. इति तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्।
पंचाशत योजनायाम त्रिंशद योजनविस्तृतम।
इदम वै स्वर्ग गमनम् नपृथ्वीं तापहोविभो।
सा गंगाद्वार मर्याद श्वेतांतम् वर वर्णिनी।
तमसा तटतः पूर्वमर्वाग्बौद्धाचलं शुभम्।
केदारमण्डल ख्यातं भूम्यास्तद भिन्नकस्थलम्।

—केदारखण्ड ४०।२७-२९

की शंखमुखी वृक्षावलियां और विशाल सरोवरों में खेलती हुई पंकज-पांखुड़ियां आज भी दर्शक को विभोर किए बिना नहीं रहतीं। ऐसी बात भी नहीं है कि इसके प्रशंसक भारतीय ही रहे हों। जिसने भी इसे देखा वह अभिभूत हुए बिना न रहा। अनेक विदेशी पर्यटक, पर्वतारोही एवं प्रकृति प्रेमियों ने इसके सौन्दर्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। प्रसिद्ध विदेशी पर्यटक डा० टी० जी० लौंग स्टाफ लिखते हैं—"मैं हिमालय की ६ बार यात्रा करने के उपरान्त मैं अब भी विश्वास करता हूं कि गढ़वाल एशिया का सुन्दरतम प्रदेश है।"

"हिमालय के उत्तुंग शिखरों के आरोहण अभियान में एक अव्यक्त और अनिवर्चनीय आनन्द निहित है। अन्तरात्मा की कोई शक्ति हमें निरन्तर इस उच्चता की ओर बढ़ने के लिए पुकारती रहती है। इन साहसिक यात्राओं का प्रारम्भ कब हुआ, यदि कोई यह पता लगाने की कोशिश करे तो अद्‌भुत परिणाम सामने आयेंगे। इन शिखरों के आकर्षण की पृष्ठ भूमि का परिज्ञान यह सिद्ध कर देगा कि हिमालय अप्रतिम क्यों है। अज्ञात अतीत काल से असंख्य विभूतियों का सम्बन्ध इन पार्वत्य अंचलों से जुड़ा हुआ है।"[1]

"संसार भर में जब कभी 'हिमालय' शब्द का उच्चारण होता है तो लोग सचेत हो जाते हैं। एक विशिष्ट कुतुहल और आकांक्षा से उनका मुखमण्डल दमक उठता है। यह केवल अत्यधिक ऊँचाई की ही धारणा नहीं है, अजेय शिखरों की ही ललकार नहीं है, अज्ञात हिम सरोवरों और घाटियों की ही कल्पना नहीं है, वनस्पतियों और पशुओं की अविश्वसनीय सम्पत्ति की भी बात नहीं है, बल्कि इन बाहरी आकर्षणों की अपेक्षा कोई और ही महान विशिष्टता है इस शब्द में, मानो कोई अदृश्य मानसिक प्रभाव हो उस शब्द में, कोई विशिष्ट चुम्बकीय शक्ति हो, जिसने हिमालय को धार्मिक यात्राओं का एक महान केन्द्र बनाया।"[2]

प्राचीन भारतीय वैदिक और पौराणिक साहित्य तो हिमालय की

1. निकोलस रोरिक।
2. वेस्टोलेव रोरिच।

श्लाघा से भरा पड़ा है। महाभारत में लिखा है कि भारत का उत्तरीय हिमालय संसार में महा पवित्र तथा अति प्रसिद्ध माना गया है। क्योंकि यहाँ पर ही प्राचीन आर्यों की प्रथम उत्पत्ति होकर वे वाहर प्रदेश में गए और बसे।[1]

केदारखण्ड के आदि मानव

केदारखण्ड ग्रन्थ में व अन्यान्य प्राचीन ग्रन्थों में इस क्षेत्र के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री बिखरी पड़ी है। महाभारत, पद्म-पुराण, स्कन्द पुराण, श्रीमद्भागवत पुराण, देवी भागवत, वायु पुराण, वामन पुराण, कूर्म-पुराण नारद पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, वाराह पुराण, हरिवंश पुराण, ब्रह्म पुराण विष्णु पुराण, शिव पुराण, मार्कण्डेय पुराण, मत्स्य पुराण और आनन्द रामायण आदि ग्रन्थों में इस क्षेत्र के सम्बन्ध में काफी रोचक गाथायें मिलती हैं, जो इस भू-खण्ड के प्राचीन इतिहास पर काफी प्रकाश डालती हैं किन्तु प्रागैतिहासिक काल के इस इतिहास को क्रमबद्धता में पिरोना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

पुष्ट प्रमाणों के अभाव में केदारखण्ड के आदिम मानवों के वारे में निश्चितरूप से कुछ कहना कठिन है। उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध इतिहास वेत्ता डा० शिव प्रसाद डबराल के मतानुसार केदारखण्ड की गणना धरती के उन विरले भागों में हो सकती है जहाँ अत्यन्त प्राचीन काल में आदिम मानव आ बसा था। उन दिनों विन्ध्याचल और हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेश पर दलदल फैले हुए थे। किन्तु हिमालय की ढलानों पर झाड़ियाँ और वन उग गए थे। जिनमें विभिन्न आकार प्रकार के जीव-जन्तु विचरण करते थे। समकालीन मानव उनका आखेट करके जीवन यापन करता था। किन्तु इन आखेटक मानवों के वारे में अभी तक विस्तृत सूचनायें एकत्रित नहीं हो सकी हैं। डा० डबराल लिखते हैं कि जब शिवालिक की तलहटी में स्थित दलदल सूख गए तो गंगाद्वार (हरिद्वार) के पास पड़ोस में ऐसे मानवों की टोलियां आ बसीं जो शिलाखण्डों को तथा गंगाजी के

---

1. हिमालयाभिधानोऽयं ख्यातो लोके सुपावनः।
   प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभः॥ (महाभारत)

वाले गोल मटोल पाषाणों को तोड़कर अपने उपकरणों का निर्माण करती थी। उनके पाषण उपकरण हरिद्वार के निकट बहादराबाद की खुदाई में तथा कालसी के निकट प्राप्त हुए हैं। केदारखण्ड के इन पाषाण उपकरणों वाले मानवोंके सम्बन्ध में भी अभीतक विधिवत अध्ययन नहीं हो सका है।

कूर्मांचल केसरी पण्डित बद्रीदत्त पांडे ने अपने कुमायूँ के इतिहास में मत व्यक्त किया है कि आज से ५ हजार वर्ष पूर्व आर्य भारतवर्ष में आए थे और सर्वप्रथम वे सिन्धु नदी के किनारे बसे थे। ऋगवेद के अनुसार आर्यों की पांच शाखायें थीं। (१) पुरु (२) त्रित्सु (३) उनु (४) यदु और (५) त्रिवसु। उनके अनुसार इस उत्तराखण्ड में आर्यों की त्रित्सु शाखा का राज्य था। श्री पांडे के अनुसार इस प्रदेश का वैदिक नाम सुमेरू या मेरू था। डा० डबराल ने भी महाभारत शान्ति पर्व के आधार पर माना है कि मनु के वंशज राजा पृथु का राज्य केदारखण्ड में था और उसने मेरू पर्वत पर स्वर्ण प्राप्त किया था।

"महाभारत और पुराणों में केदारखण्ड के प्राचीन निवासियों के सम्बन्ध में अनेक रोचक गाथायें संग्रहित हैं। ये गाथायें लिपिबद्ध किए जाने से पूर्व कई शताब्दियों तक समाज में मौखिक रूप से प्रचलित रहीं और इतनी परिवर्तित एवं मिश्रित हो गई कि उनके मूल स्वरूप का पता लगाना और उनमें वर्णित घटनाओं के कालक्रम का निश्चित करना अत्यन्त जटिल हो गया है। पुराण और महाभारत स्वयं घोषणा करते हैं कि उनमें विभिन्न राजवंशों के चरित्र एवं इतिहास सुरक्षित हैं। अब विद्वान पुराणों एवं महाभारत तथा रामायण में वर्णित अधिकांश घटनाओं को किसी न किसी रूप में ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित मानते हैं। सभी पुराणों और महाभारत में उन अनेक घटनाओं का भी उल्लेख है जो केदारखण्ड में प्रलय से पूर्व हुई थीं।"[1]

विद्वानों के अनुसार मनु के जल प्लावन के पश्चात जिस "मनोख सर्पण' स्थान पर सृष्टि की रचना हुई थी वह स्थान इसी केदारखण्ड (गढ़वाल) में अलकापुरी के समीप ब्रह्मावर्त के अति निकट है। आदि-

1. डा० शिवप्रसाद डबराल—केदारखण्ड गढ़वाल मण्डल पृ० २४-२५।

मानव ने यहीं मानव जीवन प्रारम्भ किया था। बदरीनाथ के अनतिदूर गणेशगुफा, व्यासगुफा, नारदगुफा, मुचुकुन्दगुफा और स्कन्दगुफा है। इन्हीं गुफाओं में बैठकर वेदों और पुराणों की रचना की गई थी। सप्तऋषियों ने माणाग्राम में, जो बदरीनाथ से ३ मील की दूरी पर है, जल प्रलय के बाद प्राण रक्षा की थी और पुनः सृष्टि-रचना में रत हो गए थे।[1] इन्हीं सप्तऋषियों (मरीचि, आँगिरा, अत्रि, अगस्त्य, भृगु, वशिष्ठ और मनु) से अनेक वंश चले। पण्डित हरिराम धस्माणा ने तो अपनी पुस्तक—सभ्य मानव का इतिहास—में प्रमाणों से सिद्ध कर दिया है कि आर्यों का मूल स्थान यही केदारखण्ड था। उन्होंने मरीचि के वंशजों को मारीच्या (मार्छ्या) बताया है जो आज तक माणा गाँव में रहते हैं। उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि सीताहरण में जो मारीच था वह दशौली का मारीच (मार्छ्या) था। श्री भजन सिंह 'सिंह' ने अपनी पुस्तक "आर्यों का मूल-स्थान सप्त सैंधव-गढ़वाल" में भी यही धारणा पुष्ट की है कि आर्यों का मूल-स्थान यहीं था। श्री धस्माणा की दो अन्य पुस्तकें—"वेदमाता" और "ऋगवेदिक इतिहास" तो पूर्णतः उक्त धारणा को पुष्ट करते हैं।

जो भी हो इतना तो निश्चय रूप से कहा जा सकता है कि केदारखण्ड हिमालय का प्राकृतिक वैभव आर्यों के लिए आकर्षण का विषय रहा। यही कारण है कि वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों और आरण्यकों में इस क्षेत्र की गौरव गाथा सुरक्षित मिलती है। महाभारत और पुराणों में अनेक ऐसे ऋषियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने इस पुण्य क्षेत्र में तपस्या की थी।

अंगिरा (महाभारत वनपर्व १४२।६), कश्यप (महा० १५०।३८-३९) पुलह (महा० वन १४२।६), जमदग्नी (केदारखण्ड ९०।१५), वशिष्ट (केदारखन्ड ४७।१७, महा० अनु० १६५।४४ पद्मपुराण ११८।६१-७६), भारद्वाज (महाभारत आदि १२९।६), विश्वामित्र (महा० शान्ति० ३०८।३३) गौतम (महा० शान्ति० २०८।३३), अगस्त्य (महा० वन० १०४), भृगु (महा० शांति० १९२), कण्व (महा० आदि० ६९) जह्नु (केदारखण्ड ३७।१०), व्यास (महा० आदि० ६३।२४) आदि सुप्रसिद्ध

1. ऋग्वेद १०।२७।१६

ऋषि एवं मनीषियों ने केदारखन्ड की इस श्रेष्ठ भूमि में ही तप किया था। मनुस्मृति कहती है कि मुनियों के निवास से देश पवित्र हो जाते हैं। अतः केदारखन्ड की इस भूमि की पवित्रता का एक कारण श्रेष्ठ मुनियों का निवास भी था।

इतिहासकारों ने माना है कि रामायण और महाभारत काल में यहाँ किरात, कोल, भील, तंगण और पुलिन्द आदि जातियाँ निवास करती थीं और यही लोग यहाँ के मूल निवासी थे। आजकल ब्राह्मण और क्षत्रिय की जो जातियाँ यहां निवास करती हैं इतिहासकारों के अनुसार ये स छठी शताब्दी के बाद बाहर से आई थीं। हिमालयन गजेटियर के लेखव मिस्टर एट्किन्सन के अनुसार भी पौराणिक काल में सकास, नाग, हूण खस, किरात और कमयु जातियां हिमालय में निवास करती थीं। अस्तु,

पूर्व पृष्ठों में मैंने पाठकों की जानकारी के लिए उत्तराखण्ड का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया है। मैं न इतिहासकार हूँ और न भूगोलवेता, जो कुछ विवरण मैंने दिया है यह सब विद्वानों के मतानुसार या पौराणिक ग्रंथों के आधार पर दिया है। इसमें मेरा अपना कुछ नहीं है। इस विवरण को पिरोने में यदि मुझसे कोई अव्यवस्था हुई हो तो उनके लिए मैं पारखी विद्वानों से क्षमा याचना करना चाहूँगा।

२

तीर्थ और उसका महत्व

तीर्थयात्रा का हिन्दू संस्कृति तथा हिन्दू धर्म में प्रधान स्थान है। प्रत्येक हिन्दू की लालसा रहती है कि वह कम से कम एक बार तीर्थ यात्रा अवश्य करे। तीर्थ यात्रा क्यों की जाती है ? इसके महत्व पर प्रकाश डालने से पूर्व यह समझना जरूरी है कि तीर्थ है क्या ? तीर्थ शब्द की निष्पत्ति विद्वानों ने इस प्रकार की है—

"तरति पापादिकं यस्मात्" अथवा 'तीर्यते अनेन' अर्थात जिसके द्वारा मनुष्य पापादि से मुक्त हो जाय उसे तीर्थ कहते हैं। अमरसिंह ने निपान, आगम, ऋषिजुष्टजल तथा गुरु की भी तीर्थसंज्ञा की है।[1] व्याकरण शास्त्र के अनुसार तीर्थ शब्द इस प्रकार निष्पन्न हुआ है—तॄ धातु से थ प्रत्यय जोड़ने पर तीर्थ बना। इसका शाब्दिक अर्थ है जिसके द्वारा तराजाय। तीर्थ के अनेक अर्थ इस प्रकार है—जैसे देव, शास्त्र, गुरु, उपाय, पुण्यकर्म व पवित्र स्थान आदि। परन्तु संसार में इस शब्द का रूढ़ार्थ पवित्र स्थान है। अब इसी अर्थ में यह लिया जाता है।

श्री जयदयाल गोयन्दका ने तीर्थ शब्द का आधुनिक ढंग से निर्वचन किया है। उनके अनुसार 'ती' से तीन और 'र्थ' से अर्थ—प्रयोजन लेना चाहिए। अर्थात जिससे तीन पदार्थों की प्राप्ति हो। वैसे संसार में पदार्थ तो चार हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। अर्थ (धन) तो तीर्थ यात्रा में खर्च ही होता है। प्राप्ति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। शेष तीन पदार्थों—धर्म, काम और मोक्ष—इन तीनों की प्राप्ति तीर्थ यात्रा से होती है।

वर्तमान में जैसा कि ऊपर कहा गया है तीर्थ शब्द का रूढ़ अर्थ ही लिया जाता है अर्थात पवित्र स्थान, जैसे—नदियों के संगम, अवतारों के

---

1. निपाना गमयोस्तीर्थमृषिजुष्टजले गुरो। (अमर० ३। थांत ९३)

जन्म स्थान महापुरुषों के तप स्थान आदि, प्रस्तुत पुस्तक में ऐसे ही तीर्थों की चर्चा की गई है।

वेदों में तीर्थों का महत्व

वेदों में तीर्थों की बड़ी प्रशंसा की गई है। ऋग्वेद में तीर्थराज प्रयाग में स्नान-दानादि करने वालों को स्वर्ग प्राप्ति की बात कही गई है।[1]

अथर्ववेद कहता है—मनुष्य तीर्थों के सहारे भारी से भारी विपत्तियों का सामना कर सकता है। तीर्थों के सेवन से बड़े-बड़े पाप नष्ट हो जाते हैं, बड़े बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करने वाले पुण्यात्माजन जिस मार्ग से जाते हैं तीर्थ सेवन करने वाले भी उसी मार्ग से स्वयं जाते हैं।[2]

यजुर्वेद भगवान को तीर्थ में, नदी के जल में तथा तट में, तटवर्ती छोटे-छोटे तृणों में, कुशाङ्कुरों में तथा जल के फेनों में निवास करने वाला कहकर नमस्कार करता है।[3]

ऋगवेद के एक मंत्र में भारत की प्रधान नदियों की स्तुति की गई है कि वे मनुष्य को वांछित फल प्रदान करें। मंत्र इस प्रकार है—

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति
शुतुद्रि स्तोम सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तया
आर्जीकीये श्रृणह्या सुषोमया॥
(ऋग्वेद म० १० सू० ७५ म० ५)

तात्पर्य यह है कि तीर्थ सेवन की परम्परा आधुनिक नहीं अपितु वैदिक युग में ही तीर्थ यात्रा की परम्परा स्थापित हो चुकी थी।

तीर्थ भेद

तीर्थ तीन प्रकार के कहे गए हैं—जंगम, मानस और भौम।

(अ) **जंगम तीर्थ**—वेदपाठी ब्राह्मणों व साधुओं को जंगम तीर्थ कहा

---

1. सितासिते सरिते यत्र संगमे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति। (ऋक्-परिशि०)
2. तीर्थस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सकृतो येन यन्ति। (अथर्व १८-४-७)
3. नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च। (यजु० १६।४२)

जाता है।[1] ब्राह्मणों के चरण, गायों की पीठ, बालकों के सिर तथा अपने दाहिने कान को भी तीर्थ कहा गया है।[2] ये सभी जंगम तीर्थ हैं।

ब) **मानस तीर्थ**—शास्त्रों में सत्य, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, दया, सरलता, मृदु भाषण, ब्रह्मचर्य, तप, दान, ज्ञान व पुण्य ये सब मानस तीर्थ कहे गए हैं।[3]

स) **भौम तीर्थ**—सप्तपुरियाँ व चार धाम आदि भौम तीर्थ हैं। जैसे शरीर के कुछ अंग पवित्र होते हैं वैसे ही पृथ्वी के कुछ भाग पवित्र होते हैं। इसके अनेक कारण हैं। जैसे—भूमि का प्रभाव, जल, तेज, ऋषि मुनियों का आवास, अवतारों की लीला भूमि आदि।[4] इन कारणों से पूरे भारत को तीर्थ कहा गया है।[5]

तीर्थ कहाँ है ?

तत्रैव गंगा च यमुना वेणी गोदावरी सिन्धु सरस्वती च
सर्वाणि तीर्थानि तत्र यत्राच्युतोदार कथा प्रसंग

जहाँ अच्युत भगवान की मनोहर कथा होती है, वहाँ गंगा, यमुना, [वे]णी, गोदावरी, सिन्धु और सरस्वती सभी तीर्थ रहते हैं।

कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे
तद गृह तीर्थ रूपं हि वसतां पापनाशनम

जिस घर में नित्य भागवत की कथा होती है, वह घर भी तीर्थ रूप [हो]ता है तथा उसमें रहने वालों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। वैसे आश्रुओं

---

1. ब्राह्मणा जंगम तीर्थं—शातातप स्मृ० १।३४
   मुद मंगलमय संत समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू—तुलसी
2. वृहद् धर्म पुराण—पू० खं० १५।१-२
3. देखिए—महाभारत शा०, स्कन्द पुराण का० ६, गरुड़० उत्तर० २८।१०
4. प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा—महा० अनु० १०८।१६
5. त्रयाणामपि लोकानां तीर्थं मध्यमुदाहृतम्
   जाम्बवे भारतं वर्षं त्रैलोक्यविश्रुतम्—ब्रह्म[पु०]

के दर्शन भी तीर्थ रूप ही माने गए हैं।

यथा—साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थ भूताहि साधवः

ऊपर भौम तीर्थों के प्रसंग में सारे भारत को तीर्थ कहा गया है। अलग-अलग पुराणों ने तीर्थतत्त्व की मीमांसा अपने अपने ढंग से की है। स्कन्द पुराथ इस प्रकार कहता है—

मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थ यात्रा प्रसंगतः।
सद्भि समागमो भूमि भागस्तीर्थ तयोच्येते॥

अर्थात् तीर्थ यात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिए जाना तीर्थ यात्रा का मुख्य उद्देश्य है। अतः जिस भू-भाग में सन्तजन निवास करें वहीं तीर्थ कहलाता है। क्योंकि महात्मा तीर्थों को भी तीर्थत्त्व प्रदान करते हैं—'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'[1]

यही बात भागवत में भी कही गई है। युधिष्ठर विदुर से कहते हैं—

भवद्विधा भागवता स्तीर्थभूताः स्वयं प्रभो।
तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृता॥ (१।१३।१०)

प्रभो ! आप सरीखे भगवत भक्त स्वयं तीर्थ स्वरूप हैं। क्योंकि आप लोग अपने हृदय में विराजित भगवान गदाधर के प्रभाव से तीर्थों को भी तीर्थ (पवित्र) बना देते हैं।

पद्मपुरण में भगवान नाम ही सब तीर्थों से परमश्रेष्ठ तीर्थ कहा गया है—

तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्ण नाम महर्षयः। (स्वर्गखंड ५०।१६)

जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य जी तो मन की शुद्धि से बड़ा किसी तीर्थ को नहीं मानते। वे कहते हैं—

तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।

तीर्थों की संख्या

वायु पुराण के अनुसार तीर्थों की संख्या साढ़े तीन करोड़ है। किन्तु बाराह पुराण के अनुसार तीर्थों की संख्या ६६ अरब बताई गई है।

1. नारद भक्ति सूत्र

तीर्थ यात्रा का अधिकार किसे है ?

तीर्थान्येव तु सर्वाणि पापघ्नानि सदानृणाम ?[1]

अर्थात् तीर्थ यात्रा में सभी श्रद्धालुओं का अधिकार है, चाहे वे किसी भी वर्ण या आश्रम के क्यों न हों। स्कन्द पुराण के अनुसार तीर्थ यात्रा का अधिकार स्त्रियों को भी है।

तीर्थ यात्रा में यान का निषेध

शास्त्रों में किसी सवारी द्वारा तीर्थ यात्रा करना वर्जित है। कहा गया है कि तीर्थ यात्रा में शरीर को जितना कष्ट होगा उतना ही तीर्थ यात्रा का फल अधिक मिलेगा।

ऐश्वर्य लोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नर:
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्[2]

अर्थात् ऐश्वर्य के गर्व से, मोह से या लोभ से जो यानारूढ़ होकर तीर्थ यात्रा करता है, उसकी तीर्थ यात्रा निष्फल हो जाती है।

तीर्थ यात्रा का फल किसे नहीं मिलता ?

अश्रद्धान पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थ फल भागिनः॥[3]

श्रद्धारहित, पापी, नास्तिक, संशयात्मा तथा कुतर्की ये पाँच प्रकार के लोग तीर्थ के फल से वंचित रह जाते हैं।

तीर्थ के फल में तारतम्य

मंत्रे तीर्थे द्विजे दैवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥[4]

मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, औषधि, गुरु तथा ज्योतिषी में जिसकी जितनी श्रद्धा होती है उसको उसके अनुसार ही फल मिलता है।

1. शंख स्मृति।
2. मत्स्य पुराण ब्राह्मी सं।
3. वायुपुराण, कृत्यकल्प तीर्थकाण्ड पृष्ठ ६।
4. स्मृतिसार समुच्चय, तीर्थ प्रकाश पृष्ठ १४।

तीर्थ यात्रा का फल किसे मिलता है ?

कामं क्रोध च लोभं यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिद् प्राप्तं तीर्थाभि गमनाद् भवेत ॥[1]

जो काम, क्रोध और लोभ को जीतकर तीर्थ में प्रवेश करता है, उसे तीर्थ यात्रा से कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

अदम्भको निरारम्भो लघ्वा हारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्व संङ्गैर्यः स तीर्थ फल मश्नुते ॥[2]

जो पाखण्ड नहीं करता, नए नए कामों को आरम्भ नहीं करता, थोड़ा सा आहार करता है, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकार की आसक्तियों से छूटा हुआ है, वह तीर्थ के फल को प्राप्त होता है।

नारद पुराण में कहा गया है कि गंगादि तीर्थों में मछलियाँ हमेशा निवास करती हैं, देव मन्दिरों में पक्षीगण रहते हैं; किन्तु उनके चित्त-भक्ति भाव से रहित होने के कारण उन्हें तीर्थ सेवन और देव मन्दिर में निवास करने से कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदय कमल में भाव का संग्रह करके एकाग्रचित होकर तीर्थ सेवन करना चाहिए।

तीर्थ यात्रा का महत्व

हमारा भारत एक विशाल देश है। इसमें अनेक तीर्थ हैं। इस देश को यदि तीर्थों का देश कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। नगाधिराज हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक तीर्थों की एक शृंखला बनी है।

अब प्रश्न यह उठता है कि तीर्थ यात्रा करनी क्यों चाहिए ? इसका महत्त्व क्या है ? यदि मान्यताओं के अनुसार संसार एक विशाल भवसागर है जिसको पार करने में तीर्थ ही साधन माने गए हैं। तीर्थों के पवित्र वातावरण में पहुँचकर मनुष्य निष्पाप हो जाता है। इस मान्यता को लेकर ही इस धर्म प्राण देश के लोग यात्रा करते हैं। इस प्रकार की यात्रा में धार्मिक दृष्टि से तो पुण्य लाभ होता ही है। इससे साथ साथ स्वदेश के विभिन्न क्षेत्रों और उसमें निवास करने वाली समान संस्कृति के सूत्र में आबद्ध

---

1. नारद पुराण।
2. स्कन्द पुराण।

जनता के शुभ दर्शन होते हैं, स्थान-स्थान की वेष-भूषा रहन-सहन, आचार विचार, रंग रूप, भाषा, वनस्पति और पैदावार के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। मनुष्य को इससे धार्मिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं सामाजिक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

हमारे तीर्थ प्रायः प्रकृति की केलि भूमि में स्थापित किए गए हैं। **प्रकृति सुषमा सच्चिदानन्दस्वरूप परम ब्रह्म की अन्तः प्रकृति के सौन्दर्य का पर्याय है। इसकी झाँकी में राग द्वेष विमुक्त मानव प्रभुस्वरूप दिव्य ज्योति का अनुभव करने लगता है। प्रकृति की सरल मंजुल सजीली गोद में प्रतिष्ठित भारतीय तीर्थ इस सत्य के ज्वलंत उदाहरण हैं। उनमें रहकर साधारण मनुष्य भी परमात्म तत्त्व का विश्वासी बन जाता है। असाधारण की बात तो पृथक ही है।**

हमारे तीर्थ भारतीय जातीयता और भारतीय व्यापक अखण्डता के दिव्य प्रतीक हैं। सम्पूर्ण भारतीय तीर्थ यात्रियों के एकात्मक भाव के मूर्त-रूप हैं। ये तीर्थ वस्तुतः भारतीय जातीयता, भारतीय संस्कृति अखण्डता और तीर्थ यात्रियों की स्वर्णिम समन्वय माला के मनके हैं। इसी भारतीय अविकल एकात्मता का ही पुण्य प्रभाव है कि वर्तमान दुर्धर्ष दुःस्थिति में भी हिन्दू जनता की अधिकार प्रधान विभिन्नता भी तत्त्वतः और स्वरूपतः एकात्मभाव की वस्तु बनी हुई है। हमारे पूर्वजों ने इस देश में महत्त्वपूर्ण तीर्थों की स्थापना एक ही जगह न करके देश के चारों कोनों पर की है ताकि एक प्रान्त के लोग अपने ही प्रान्त तक सीमित न रहें। वे दूसरे [illegible] की बोली भाषा, वहाँ की प्राकृतिक छटा और संस्कृति से भी परिचित हों। अनेकता में एकता की भावना भी इससे पुष्ट होती है।

मनुष्य तीर्थ वास से धार्मिक भावना लेकर लौटता है। [illegible] अन्य लोग भी प्रभावित हो जाते हैं। तीर्थों का वातावरण [illegible] होता है कि उनका स्थायी तथा सात्विक प्रभाव मनुष्य के हृदय और आत्मा पर पड़ता है। तीर्थ यात्रा से मनुष्य की [illegible] संकीर्णता की भावना भी तिरोहित हो जाती है। उसका दृष्टिकोण विशाल और विस्तृत हो जाता है। लोक संग्रही भावना का विकास और [illegible] के संवर्द्धन की अभिवृद्धि भी

उनसे होती है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि तीर्थ यात्रा से लौकिक तथा पारलौकिक सभी प्रकार का लाभ सम्भव है।

उत्तराखण्ड के तीर्थ

यों तो हमारा सम्पूर्ण देश तीर्थों का देश है। भारत का कोई कोना ऐसा नहीं है जहाँ छोटा-बड़ा कोई न कोई तीर्थ न हो। यहाँ तक कि हर गाँव का कोई न कोई अपना तीर्थ स्थान अवश्य होता है। किन्तु उत्तराखण्ड (गढ़वाल) के तीर्थों की अपनी अलग ही विशेषता है। इसका प्रमुख कारण है उत्तराखण्ड के तीर्थों से गंगा और हिमालय का संयोग। उत्तराखण्ड के तीर्थ या तो गंगा के तट पर हैं, स्रोत प्रदेश में हैं या हिमालय की गोद में। हिमालय और गंगा का योगदान भारत की संस्कृति को बनाने में कितना अधिक है, यह सर्व विदित है। यदि कहा जाय कि भारत की संस्कृति गंगा और हिमालय की संस्कृति है तो अत्युक्ति न होगी। सच तो यह है कि आर्यावर्त का इतिहास हिमालय और गंगा-सिन्धु का इतिहास है। भारतीय संस्कृति से गंगा और हिमालय को पृथक् कर दिया जाय तो वह खोखली नजर आएगी। गंगा ने इस देश का जितना उपकार किया है उतना शायद ही किसी ने किया होगा। अपने उद्गम स्थल गोमुख (हिमालय) से लेकर गंगा सागर तक इस पुण्यतम नदी ने देश के एक बहुत बड़े भाग को सर सब्ज करने में अपना भारी योगदान किया है, अनेक बड़े-बड़े नगर और तीर्थ स्थान इसी के तट पर हैं, ऐसी पवित्र नदी के स्रोत प्रदेश को देखने की कितनी तीव्र लालसा यात्री के मन में होती है।

इसी प्रकार भारत के भाल हिमालय का भी योगदान इस देश के लिए कम नहीं है। अनन्त काल में यह दधीचि अपनी अस्थियों को घिसकर, उन्हें मृतिका कणों में बदल कर इस देश की उर्वरता बढ़ा रहा है। अपने रोम-रोम से दुग्धामृत की सरिताएँ बहाकर वह मृत्युञ्जय उसे शस्य श्यामला बना रहा है। देश के वर्षा चक्र का संचालन और तापमान का नियन्त्रण इसी के द्वारा होता है। इसके धरातल के नीचे बहुमूल्य खनिज तथा धरातल के ऊपर बहुमूल्य वन हैं। उसके अंक में अपार शान्ति और समृद्धि है। इसीलिए सभ्यता के धुंधले ऊषाकाल से ही इस देश के निवासियों के हृदय

में हिमालय के प्रति अगाध श्रद्धा की भावना जाग्रत हो गई थी। उन्होंने भाव विभोर होकर इस देवात्मा के चरणों में भक्ति पूर्वक नतशिर होना प्रारम्भ किया।[1] कविकुल गुरु कालिदास ने उसे देवात्मा कहा। इस देवात्मा हिमालय के अंग प्रत्यंगों के दर्शनों के लिए आज भारत की धर्म प्राण जनता लालायित रहती है।

इन्हीं कारणों से धार्मिक आस्था वाले हर क्षेत्र के भारतीय नर-नारी अति प्राचीन काल से बड़े-बड़े कष्ट झेलकर भी उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा करते आ रहे हैं, उत्तराखण्ड के इन्हीं तीर्थों का रोचक वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है।

३

उत्तराखण्ड में तीर्थ यात्रा की परम्परा

उत्तराखण्ड के तीर्थों की यात्रा कब से प्रारम्भ हुई, इसका क्रमव लेखा जोखा अप्राप्य है। लेकिन धर्मशास्त्रों, पुराणों और अन्य आर्ष ग्रंथ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तराखण्ड में तीर्थ यात्रा की परम्प अनादि है। सम्भवतः सृष्टि के प्रारम्भिक काल से ही यहाँ तीर्थों की कल्पन कर ली गई थी। दक्षिण के आलवार सन्तों की दिव्य सूक्तियों के अनुशील करने पर १०८ जिन दिव्य-चिन्मय देशों की चर्चा मिलती है उनमें वदरीकाश्रम और तिरुप्पिरिदि (जोशीमठ) का भी नाम आया है। ये दिव्य देश अनादि सिद्ध कहे गए हैं। मनु ने आर्यावर्त की सीमा में उत्तराखण्ड हिमालय को भी सम्मिलित किया है। वौधायन स्मृति, मनुस्मृति, वशिष्ठ स्मृति और वृहद पाराशरीय स्मृति आदि धर्मशास्त्रों ने हिमालय क्षेत्र को सृष्टि के पवित्र खण्डों में गिना है। वृहद्पाराशरीय धर्मशास्त्र (१।४३-४४) में उल्लेख है कि सुखेच्छु द्विजाति के लोग समुद्र में जाने वाली पवित्र नदियों तथा मुनियों से सेवित पुण्य तीर्थों के निकट निवास करें क्योंकि मुनियों के निवास क्षेत्र से वे क्षेत्र भी पवित्र हो गए हैं। समुद्र में जाने वाली गंगा यमुना अवश्य ही ऐसी नदियाँ हैं और इनका उद्गम स्थालय उत्तराखण्ण हिमालय है, मुनियों से सेवित भी यह क्षेत्र हमेशा से रहा है।

'व्यासस्मृति और शंखस्मृति स्पष्ट शब्दों में हरिद्वार, केदार, भृगुतुङ्ग और महालय की महिमा का उल्लेख करती है। व्यासस्मृति (४।१५) में कहा गया है कि गंगा द्वार और केदार की यात्रा से सारे पापों से छुटकारा मिलता है। शंखस्मृति (१४।२७-२६) में कहा गया है कि इन तीर्थों में पितरों के निमित्त जो कुछ किया जाता है उसका फल अक्षव होता है।'[1]

---

1. डबराल—उत्तराखंड यात्रा दर्शन।

तात्पर्य यह है कि युग-युगों से उत्तराखंड की यात्रा परम्परा चली आ रही है। सृष्टि रचना काल से हमारे यहाँ चार युग माने गए हैं—सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर और कलियुग। स्कन्द पुराण में श्री बदरीनाथ के चारों युगों में चार नामो का उल्लेख मिलता है। सत्ययुग में मुक्तिप्रदा, त्रेता में योग सिद्धिदा, द्वापर में विशाला और कलियुग में बदरिकाश्रम।[1]

अत: स्पष्ट है कि उत्तराखंड के तीर्थ अति प्राचीन हैं और प्राचीन युग से ही देवताओं और मानवों द्वारा इनका सेवन होता रहा है। ब्रह्म पुराण के अध्याय १७५ में भी इन तीर्थों का युगक्रम से वर्णन किया गया है। मत्स्य पुराण, बारह पुराण, अग्नि पुराण, मार्कण्डेय पुराण, नारदीय पुराण शिव पुराण और पद्म पुराण के सृष्टिखंड और उत्तरखंड में तीर्थ यात्रा पर प्रभूत सामग्री है। जिससे इन हिमालय के तीर्थों की प्राचीनता पर विशद प्रकाश पड़ता है। जब यहाँ तीर्थो की स्थिति थी तो इनकी यात्रा भी अवश्य होती रही होगी जैसा कि प्राचीन साहित्य से ज्ञात होता है। यात्रियों के आकर्षण का दूसरा कारण यहाँ सुरसरिता गंगा का उद्गम और देवात्मा हिमालय की विद्यमानता भी रही है। कवि कुल गुरु कालिदास ने हिमालय को देवात्मा[2] की संज्ञा से विभूषित कर इसके आकर्षण में चार चाँद लगाए हैं। रघुवंश महाकाव्य में राजा रघु की यात्रा के प्रसंग में उत्तराखंड अछूता न रहा। भगवान राम की उत्तराखंड यात्रा और कमलेश्वर (श्रीनगर) मन्दिर में शिवजी को एक सहस्त्र कमल पुष्पों से प्रसन्न करने का प्रसंग सर्व-विदित है ही। महाभारत काल में तो उत्तराखंड की यात्रा काफी प्रचलित हो चली थी। पाण्डवों का केदार गमन और इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन की तपस्या वर्णन महाभारत के अतिरिक्त शिवपुराण की शतरुद्र संहिता में भी किया गया है।

वन पर्व के अन्तर्गत तीर्थ यात्रा पर्व में गंगाद्वार (हरिद्वार) से भृगुतुङ्ग (केदारनाथ) तक की यात्रा का रोचक वर्णन अत्यन्त प्राचीन होने पर भी

1. कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा।
   विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः। (स्कन्दपुराण)
2. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नागाधिराजः।
   पूर्वापरो तोयनिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः। (कुमार संभव)

कुछ स्थानों के नाम आज भी वही चले आ रहे हैं जो आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व थे। इसी पर्व में पांडवों द्वारा नन्दादेवी की यात्रा का भी वर्णन है। १३९वें अध्याय से तो पांडवों की कनखल से बदरिकाश्रम तक की यात्रा का विशद वर्णन मिलता है, जिसमें यात्रा मार्ग की कठिनाइयों, हिमालय में रहने वाली यक्ष, राक्षस, किन्नर, नाग, गन्धर्व, किरात आदि जातियों का रोमांचकारी वर्णन है। इस यात्रा में हरिद्वार से कुलिन्दाधिपति सुबाहु के राज्य श्रीपुर (वर्तमान श्रीनगर गढ़वाल) होकर गंधमादन (हिमालय) तक की यात्रा का वर्णन है। अध्याय १४० में कुलिन्दाधिपति सुबाहु के प्रभूत वैभव, हाथी घोड़ों और उसके द्वारा पांडवों का प्रीति पूर्वक सत्कार करने की कथा विस्तार से कही गई है।

पांडवों की इस उत्तराखंड यात्रा के प्रसंग में लोमश ऋषि द्वारा आँखों देखा हाल प्रस्तुत है। लोमश कहते हैं—'युधिष्ठिर! ये कनखल की पर्वत मालायें हैं। जो ऋषियों को बहुत प्रिय लगती है। यह महानदी गंगाजी सुशोभित हो रही हैं। इस गंगा में स्नान करके तुम लोग पापों से मुक्त हो जाओगे।'

'भरतनन्दन! अब तुम उशीरध्वज, मैनाक, श्वेत और कालशैल नामक पर्वतों को लाँघकर आगे बढ़ आओ। देखो! गंगाजी सात धाराओं में सुशोभित हो रही हैं। यह रजोगुण रहित पुण्य तीर्थ है, जहाँ सदा अग्निदेव प्रज्ज्वलित रहते हैं। यह देवताओं की क्रीड़ा स्थली है, जो उनके चरण चिन्हों से अंकित हैं। एकाग्रचित होने पर तुम्हें इसका भी दर्शन होगा।'

"कुन्तीनन्दन! इसके पश्चात् हम श्वेतगिरी तथा मन्दराचल पर्वत में प्रवेश करेंगे, जहाँ यक्ष और यक्षराज कुबेर का निवास है। राजन! यहाँ तीव्र गति से चलने वाले अट्ठासी हजार गन्धर्व और उनसे चौगुने किन्नर तथा यक्ष रहते हैं। उनके रूप एवं आकृति अनेक प्रकार की हैं।"

"राजन! उधर छह योजन ऊँचा कैलास पर्वत है, जहाँ देवता आया करते हैं। उसी के निकट विशालापुरी अर्थात् बदरिकाश्रम तीर्थ है।"

(वनपर्व अ० १३९)

महाभारत अश्वमेध पर्व के अनुसार राजा मरुत ने हनुमान चट्टी के निकट यज्ञ किया था। व्यास, वशिष्ठ, गौतम, अंगिरा व कश्यप आदि

ऋषियों द्वारा इस उत्तराखंड की पवित्र भूमि को अपनी तत्पश्चर्या भूमि बनाना यह सिद्ध करता है कि यह भूमि अति प्राचीन काल से ही पवित्र रही है जिससे ऋषियों ने इसे तप के लिए उपयुक्त समझा।

भागवत पुराण के अनुसार श्रीकृष्ण भगवान ने द्वापर के अन्त में स्वधाम गमन से पूर्व अपने प्रिय सखा उद्धव को बदरिकाश्रम गमन का आदेश दिया था।[1] स्पष्ट है कि उस काल में बदरिकाश्रम पुण्य तीर्थों में गिना जाता था। आज से लगभग दो हजार वर्ष पूर्व द्वादश ज्योतिर्लिगों की कल्पना हो चुकी थी जिनमें 'हिमालये तु केदारं' के अनुसार केदारनाथ के ज्योतिर्लिंग की भी गणना होने लगी थी। इन ज्योर्तिलिंगों की यात्रा और इनका दर्शन पाप नाशक कहा जाने लगा था। अतः उस काल में केदारनाथ की यात्रा प्रचलित हो चली थी।

बौद्ध युग में भी उत्तराखंड की यात्रा का पर्याप्त चलन था। जातक ग्रंथों में बोधिसत्त्वों तथा अन्य साधकों द्वारा हिमालय में जाकर तपस्या करने का उल्लेख अनेक बार हुआ। एक धारणा यह भी है कि जिस बदरीनाथ की मूर्ति की आज विष्णु मूर्ति के रूप में पूजा हो रही है वह कभी बुद्ध की मूर्ति समझकर बौद्धों द्वारा पूजित थी। मौर्य युग में यात्रा का काफी प्रचलन बढ़ गया था। अशोक ने स्वयं तीर्थ यात्रा का व्यापक प्रचार किया। अपने राज्याभिषेक के ग्यारहवें वर्ष में अशोक ने अनेक पवित्र स्थलों की यात्रा की थी। जो अशोक की 'धर्म यात्रा के नाम से प्रसिद्ध है। जैन तीर्थों की सूची में कैलाश पर्वत का भी नाम आया है। अतः ई० पू० छठी शताब्दी में जैन धर्म के उत्कर्ष के समय भी उत्तराखंड की यात्रा प्रचलित थी। जैन परम्परा के अनुसार आदि तीर्थंकर ऋषभदेव अपने पुत्र भरत को राज्य सौंप कर तपस्या करने के लिए बदरीनाथ चले गए थे। जैन लोग तो बदरीनाथ की मूर्ति को ही ऋषभदेव की मूर्ति मानते हैं।

मौर्य युग में हिन्दू धर्म में कुछ शिथिलता अवश्य आई थी किन्तु बाद में गुप्तकाल के आने पर चारों ओर हिन्दू धर्म का बोलबाला हो गया और तीर्थ यात्रा का व्यापक प्रचार हुआ। इस युग का अधिकांश साहित्य तीर्थों

1. गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याश्रम ममाश्रमम्। (भागवत)

की महिमा से भरा पड़ा है। आधुनिक विद्वान अधिकतर पुराणों की रचना काल भी इसी युग को मानते हैं। इन पुराणों में वदरी केदार यात्रा का विशद वर्णन आया है जैसा कि पहले लिखा जा चुका है।

सातवीं शती में गुप्तकालीन संस्कृति पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। इसी समय का वाणभट्ट का लिखा हर्ष चरित है। उसमें वाण ने लिखा है कि निदाघ की गर्मी से व्याकुल होकर लोग हिमालयाभिमुखी यात्रा करते थे। उस काल में जात देने की प्रथा भी प्रचलित हो गई थी। जात देना अर्थात् समूह में देव स्थानों की यात्रा करना। ऐसी यात्राएँ हिमालय की ओर वदरिकाश्रम और नन्दा देवी के लिए चलती थी। रूपकुण्ड में जो मानवों के अवशेष मिले हैं उसके सम्बन्ध में एक धारणा यह भी है कि यह यात्रा (जात) कन्नौज से चली थी और रूपकुण्ड में बर्फानी तूफा के कारण दव गई। आज भी नन्दा देवी (जिला चमोली) की यात्र चलती है।

वाणभट्ट के समय में केदार यात्रा का खूब प्रचलन था। हर्षचरित के पाँचवें उल्लास में वाण लिखता है कि प्रभाकर वर्द्धन की मृत्यु पर उसके भृत्यों में से कुछ ने अपने आपको भृगुपतन से गिरा दिया और कुछ वहीं तीर्थों में वस गए।

डा० शिव प्रसाद डबराल के अनुसार ईसा की चौथी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी तक के युग की धार्मिक दृष्टि से मन्दिरों का युग कहा जाता है। इस काल में भारत में मन्दिर इन्हीं ८०० वर्षों में वने। जाहिर है कि मन्दिरों के बनने पर उनकी यात्रा का प्रचलन भी बढ़ा होगा। गुप्त राजाओं ने जो हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक थे, अनेक मन्दिरों और मूर्तियों का निर्माण कराया था।

आठवीं शताब्दी में अपने दिग्विजय अभियान के समय शंकराचार्य का उत्तराखंड में आगमन प्रसिद्ध है। उन्होंने भारत के चार कोनों में जिन चार मठों की स्थापना की थी, उनमें एक ज्योतिर्मठ है जो उन्होंने वदरी-नाथ के मार्ग में स्थापित किया। इसे अब जोशीमठ के नाम से पुकारा जाता है। कहते हैं शंकराचार्य ने मठ की स्थापना करने के उपरान्त अपने

शिष्य तोटकाचार्य को उसका अध्यक्ष बनाया। बदरीनाथ पहुँचकर आचार्य ने जब देखा कि मन्दिर में भगवान की मूर्ति नहीं है तो वे ध्यानावस्थित हुए और उनको ज्ञान हुआ कि मूर्ति नारद कुण्ड में है। जो बौद्धों द्वारा फेंकी गई थी। शंकराचार्य ने मूर्ति को नारद कुण्ड से निकाला और उसकी पुनः मन्दिर में प्राण प्रतिष्ठा की। उन्होंने पूजा के लिए दक्षिण भारत के नम्बूदरी ब्राह्मण की नियुक्ति की। यह परम्परा अब तक विद्यमान है। आज भी बदरीनाथ का प्रधान पुजारी दक्षिण भारतीय नम्बूदरी ब्राह्मण होता है।

शंकराचार्य के पश्चात् दक्षिण के अनेक आचार्यों ने बदरिकाश्रम की यात्रा की। जिनमें माध्वाचार्य और निम्नकाचार्य के नाम उल्लेखनीय हैं, अब दक्षिण भारत के आम यात्री भी बड़ी संख्या में बदरी-केदार की यात्रा करने लगे। शंकराचार्य द्वारा गंगोत्री-यमनोत्री व केदारनाथ की यात्रा का भी वर्णन पुस्तकों में मिलता है। कहा जाता है कि केदारनाथ में तो ३२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त ही हो गया था। यद्यपि शंकराचार्य का काल विवादास्पद है तथापि वे उत्तराखण्ड में आए अवश्य थे। वे बौद्ध धर्म के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करने के लिए अपनी दिग्विजय पर निकले थे।

ग्यारहवीं सदी में महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण करके मन्दिरों का जो विध्वंस किया उससे तीर्थ यात्रा पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा किन्तु इन आततायियों के भय से आतंकित होकर लोग स्वभावतः ईश्वर भक्ति की ओर उन्मुख हुए जिसकी परिणिती भक्तिकाल में चरम सीमा पर पहुँची और पुनः मन्दिरों का नव निर्माण भी हुआ। क्योंकि निराश हिन्दू जनता का आधार अब केवल ईश्वर ही रह गया था। भक्ति-काल में तो तीर्थ यात्रा का खूब प्रचलन हुआ।

श्री वल्लभाचार्य की बदरीनाथ यात्रा

आचार्य चक्रधर जोशी (देवप्रयाग) के पास एक अभिलेख है जिस पर महाप्रभु वल्लभाचार्य के अपने हस्ताक्षर हैं। उस अभिलेख से पता चलता है कि सम्वत् १५६८ वि० में आचार्य श्री कृष्णदास आदि ५० विद्वानों को

साथ लेकर बदरीनाथ की यात्रा पर गए थे। अभिलेख में लिखा है कि मैंने वासुदेव भट्ट सजाति तैलंग ब्राह्मण को अपना पुरोहित नियुक्त किया है। यह रामकृष्ण भट्ट ने वल्लभाचार्य की आज्ञा से लिखा था। लेख तेलगु लिपि में है। श्री वल्लभाचार्य ने बदरीनाथ में जाकर श्रीमद्भागवत का साप्ताह पारायण किया था। आचार्य की भारत में जो चौरासी बैठकें हैं उनमें एक बैठक बदरीनाथ में भी है। यह निर्विवाद है कि वल्लभाचार्य का जन्म सम्वत् १५३५ वि० में रामपुर मध्य भारत में हुआ था। श्री चैतन्य महाप्रभु इनके सम सामयिक थे।

गोस्वामी तुलसीदास की बदरीनाथ यात्रा

रामचरित मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसीदास जी (सम्वत् १५५४-१६८०) ने भी बदरीनाथ की यात्रा की थी। यह बात उनके द्वारा प्रणीत विनय पत्रिका के छन्दों से ज्ञात होती है। उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन पृ० १९३)

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेक विशिष्ट पुरुषों द्वारा समय-समय पर उत्तराखण्ड की यात्रा की गई है। सिद्धों, नाथों और वैरागियों की उत्तराखण्ड यात्रा का बृतान्त अनेक ग्रन्थों में मिलता है। श्रीनगर में गोरखनाथ की गुफा अभी तक विद्यमान है। कहा जाता है कि गुरु गोरख-नाथ ने इस गुफा में तपस्या की थी। श्रीनगर के निकट देवलगढ़ में सत्यनाथ का मन्दिर है। कहते हैं १५वीं सदी के अन्त में नाथ सम्प्रदाय के प्रसिद्ध नाथ योगी सत्यनाथ और उनके शिष्य नागनाथ यहाँ पहुँचे थे। कहते हैं तब गढ़वाल का राजा अजयपाज उनके दर्शन के लिए देवलगढ़ गया था।

शाक्त सम्प्रदाय के तान्त्रिकों द्वारा भी समय-समय पर उत्तराखण्ड की यात्रा की गई है। शाक्तों ने केदारनाथ और बदरीनाथ को सिद्ध पीठों में गिना है। तन्त्र ग्रंथों में '**बदरी च महापीठं**' और '**केदारंपीठमुत्तमं**' कहा गया है। तन्त्र चूड़ामणि, शाक्तानन्द तरंगिणी, प्राणतोपिणीतन्त्र, वृहन्नील-तन्त्र, और ज्ञानार्णव आदि तन्त्र ग्रंथों में उत्तराखण्ड के अनेक शक्ति पीठों का वर्णन है।

विदेशियों का उत्तराखंड में आगमन

मुस्लिम काल और अंग्रेजी काल में उत्तराखण्ड में धर्म भावना वाले ार्थ यात्रियों के अतिरिक्त सैलानी तबियत के लोगों का भी आगमन ारम्भ हुआ। अंग्रेजों को नए-नए स्थानों की खोज करने का शौक था। ुछ प्राकृतिक दृश्यों के शौकीन थे। सन् १६२४ ई० में जेसुयेट पादरी ान्द्रोदे उत्तराखंड में पहुँचा। उत्तराखंड की यात्रा करने वाला यह सर्व ाथम यूरोपियन था। १६३१ में पादरी अजवेदो भी यहाँ आया था। ैप्टेन हार्डविक १७६६ ई० में श्रीनगर आया था। प्राकृतिक दृश्यावली का चितेरा टामस डेनियल १७८६ ई० में उत्तराखंड में आया था। उसने अनेक हिमशिखरों के चित्र बनाए थे। टामस डेनियल का भतीजा विलियम डेनियल भी अपने चाचा के साथ श्रीनगर आया था। इसी प्रकार कर्नल हौर्टन ब्रिस्की, जनरल जौन कारनाक, कैप्टिन जौन गुथरी और जौन स्टरनर आदि सैन्याधिकारी भी गढ़वाल की यात्रा पर आए थे। सम्भवत: ये सैन्य अधिकारी पहाड़ों को प्राकृतिक छटा का अवलोकन करने यहाँ आए हों। ऐसा भी हो सकता है कि अंग्रेज सरकार ने इस क्षेत्र की जानकारी के लिए इन्हें यहाँ भेजा हो। जैसा कि १८०८ ई० में कम्पनी सरकार के कैप्टिन रेपर, ले० वेब तथा कैप्टिन हियरसे को गढ़वाल भेजकर गंगा के स्रोत प्रदेश का पता लगवाया था। कैप्टिन रेपर १८०८ में भागीरथी उपत्यका में गंगोत्तरी तक जाने के पश्चात् वह अलकनन्दा उपत्यका में उतरा और माणा गाँव तक गया। उसने अपने यात्रा वर्णन में तत्कालीन राजनैतिक स्थिति का रोचक वर्णन किया है।

स्माइथ ने ही इस घाटी को 'फूलों की घाटी' नाम दिया और इसे सारे संसार में प्रसिद्ध किया। आज हजारों स्वदेशी और विदेशी फूलों की घाटी की यात्रा करते हैं। इसी प्रकार टी० जी० लौंगस्टाफ, स्लीमैन, बेटन, ओकले एटफिनशन, पिलग्रिम और इत्सिंग आदि विदेशियों के यात्रा विवरणों ने प्रकृति प्रेमियों को उत्तर खंड की ओर आकर्षित किया।

इस प्रकार युग-युग से उत्तराखंड की यात्रा का सिलसिला जारी है अब तो उत्तराखंड के चारों धामों की यात्रा काफी सरल व सुविधाजनक हो गई है। एक जमाना था कि हरिद्वार से ही बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी और यमनोत्तरी की यात्रा पैदल चलकर ही होती थी। अधिकतर बड़ी आयु के स्त्री-पुरुष ही इन दुर्गम स्थानों की यात्रा करते थे। मार्ग में स्थान-स्थान पर रात्रि विश्राम के पड़ाव थे जिन्हें चट्टी कहते थे। स्मरण रहे कि ये चट्टियाँ धर्मशालाएँ नहीं हैं, जैसा कि कुछ लोगों का ख्याल है, वास्तव में चट्टियाँ स्थानीय दुकानदार द्वारा अपने धन से निर्मित होटल थे। इनमें टिकने को स्थान मिलता था। पका पकाया भोजन इन चट्टियों में नहीं मिलता था। केवल कच्चा राशन मिलता था। डा० डबराल के अनुसार ये चट्टियाँ धर्मशाला से अधिक सुलभ, अधिक लाभप्रद, अधिक स्वास्थ्यजनक और अपने घर जैसी थी। बस यातायात आरम्भ होने से अब ये चट्टियाँ उजाड़ हो गई हैं। आज के पैदल यात्री भी मोटर मार्ग पर ही चलते हैं।

पैदल यात्रा समाप्त होने से मार्ग के अनेक छोटे-मोटे तीर्थ स्थान भी अब उजड़ चुके हैं। यात्री अब ऋषिकेश से बस में बन्द होकर सीधे बदरीनाथ उतरते हैं। मार्ग के तीर्थ स्थानों और मन्दिरों के देखने का उन्हें मौका नहीं मिलता। सभी मार्गों का यही हाल है। यद्यपि यातायात के साधन सुलभ होने से अब यात्रियों की संख्या में काफी वृद्धि हो गई है किन्तु यात्रा का वास्तविक आनन्द अब जाता रहा है, जो पैदल यात्रा के समय था। उस काल में यात्रियों का आम लोगों से सम्पर्क होता था। लोगों को एक-दूसरे की बोली भाषा, रहन-सहन, रस्म रिवाज और संस्कृति को देखने समझने का अवसर मिलता था।

आज दो प्रकार के यात्री उत्तराखण्ड की ओर आ रहे हैं। एक धर्म भावना वाले और दूसरे सैलानी वृत्ति के। उत्तराखण्ड की धरती दोनों प्रकार के यात्रियों को आकर्षित करने में सक्षम है। धर्म भावना वाले यात्रियों का यहाँ के पवित्र तीर्थ और सैलानियों का यहाँ के अद्भुत सौन्दर्य स्थल अहर्निश आह्वान कर रहे हैं।

सैर कर दुनिया की गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ।
जिन्दगानी गर रही तो नौ जवानी फिर कहाँ।

(नवाजिन्दा वाजिन्दा)

४

उत्तराखण्ड में प्रवेश

हरिद्वार

अयोध्या मथुरा माया काशी काँची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैताः मोक्षदायिकाः ।।

भारतवर्ष में जो सात मोक्ष प्रदान करने वाली पुरी हैं उनमें मायापु (हरिद्वार) भी एक है। पद्मपुराण में गंगा स्नान की महिमा के साथ-स हरिद्वार, प्रयाग और गंगासागर इन तीनों का विशेष महत्त्व बतलाया ग है।

हिमालय के पाद प्रदेश में सिन्धुतट से २९४ मीटर की ऊँचाई प पतित पावनी गंगा के दक्षिण तट पर उत्तरी भारत का पावन तीर्थ हरि द्वार अवस्थित है। शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ इसे तीन ओर से घेरे हैं भारत के सभी राज्यों से यह पवित्र स्थान रेल एवं मोटर मार्गों से जुड़ा हुआ है। ७५ वर्ग किलोमीटर में फैला लगभग एक लाख की जनसंख्या वाला यह तीर्थस्थल अनादिकाल से हिन्दू जगत की आस्था का केन्द्र बना हुआ है। लाखों की संख्या में प्रतिवर्ष यहाँ यात्री आते हैं। संभवतः उत्तरी भारत में वर्षपर्यन्त सबसे अधिक भीड़ इसी तीर्थ में रहती है। हर छोटे-बड़े पर्व पर यहाँ स्नानार्थियों का मेला लगा रहता है। पंजाब से भारी संख्या में यहाँ यात्री आते हैं, क्योंकि वहाँ की हिन्दू जनता के लिए यह सबसे निकटस्थ तीर्थ स्थान है। प्रशासनिक दृष्टि से हरिद्वार जनपद सहारनपुर में पड़ता है।

पौराणिक पुरावृत्त में हरिद्वार

पौराणिक काल में इसे मायापुरी के नाम से जाना जाता था। गंगा-

द्वार, तपोवन और कपिलस्थान भी इसी के नाम हैं। कथा है कि कपिल मुनि के श्राप से राजा भगीरथ के ६० हजार पुत्र यहीं भस्म हुए थे, जिनकी मुक्ति के लिए भगीरथ ने घोर तप किया और स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर लाए थे। चीनी यात्री युवान चाङ्ग ने अपने यात्रा वर्णन में हरिद्वार का उल्लेख किया है।

पुराणों में तो हरिद्वार का वर्णन अनेक स्थानों पर हुआ है पद्म पुराण आदिखण्ड अध्याय २८ में हरिद्वार की महिमा का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

स्वर्ग द्वारेण तत्तुल्यं गंगाद्वारं न संशयः,
तत्राभिषेकं कुर्वीत कोटितीर्थेसमाहितः,
लभते पुण्डरीकं च कुलंचैव समुद्धरेत्,
तत्रैक रात्रि वासेन गो सहस्र फलं लभेत्।

गंगाद्वार—हरिद्वार की तुलना स्वर्गद्वार से की गई है। यहाँ स्नान करने से करोड़ों तीर्थों का फल मिलता है। ईश्वर प्राप्ति के साथ कुल का भी उद्धार होता है। यहाँ रात्रि निवास करना हजार गोदान के फल के समान है।

प्राचीन काल में हरिद्वार से ऊपर का सारा प्रदेश देवभूमि कहा जाता था। गोमुख से निकलने वाली गंगा पहाड़ों का दामन छोड़कर यहीं से मैदानों का स्पर्श करती है। उत्तराखंड के पवित्र धामों—बदरी-केदार और गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की यात्रा यहीं से आरम्भ होती है। यहां स्नान, पिण्डदान, तर्पण व अस्थि प्रवाह का बड़ा महात्म्य बताया गया है। पुराण-विश्रुत दक्ष प्रजापति का ऐतिहासिक यज्ञ, जिसमें सती ने आत्मदाह किया था, यहीं हुआ था। विदुर जी ने मैत्रेय मुनि से भागवत की कथा यहीं सुनी थी। जिस बदरिकाश्रम में भगवान विष्णु ने नर-नारायण का अवतार लेकर तपश्चर्या की थी उसका मार्ग हरिद्वार से होकर जाता है। इसी कारण उसे 'हरि-द्वार' कहा जाता है।

ब्रह्मकुण्ड या हरि की पैड़ी

हरि की पैड़ी हरिद्वार का मुख्य आकर्षण है। यहाँ ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने का बड़ा महात्म्य बताया गया है। यही कारण है कि भारत के हर

प्रान्त के नर-नारी यहाँ हर मौसम में स्नान करते पाए जाएंगे। वैसे भी हरि की पैड़ी का दृश्य बड़ा ही मनोमुग्धकारी होता है।

कहते हैं राजा श्वेत ने इस स्थान पर तपस्या कर ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया था। प्रसन्न होकर ब्रह्मा जी ने वर मांगने को कहा। राजा ने कहा, यह स्थान आप के नाम से ख्यात हो और यहाँ पर आप, विष्णु और शंकर वास करें। ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही होगा। तभी से इसका नाम ब्रह्मकुण्ड पड़ा। कहते हैं कि विक्रमादित्य के भाई भर्तृहरि ने यहाँ तप करके अमर पद पाया था। यहाँ भर्तृहरि की स्मृति में राजा विक्रमादित्य ने पौड़ियाँ बनवाई थीं। उसका नाम 'हरि की पैड़ी' तभी से हुआ। इसी स्थान पर हरि अर्थात् विष्णुचरण पादुका, साक्षीश्वर एवं गंगाधर महादेव के मन्दिर हैं। राजा मानसिंह की छतरी व बिरला द्वारा बनाया गया घण्टाघर भी यहाँ पर है। सूर्यास्त के पश्चात् दैनिक आरती का कार्यक्रम यहाँ दर्शनीय होता है। भक्तजन पुष्पों से भरे पत्तों के दोनों में जब प्रज्ज्वलित दीपक का जलावतरण करते हैं और ऐसे अनेक दीपक ब्रह्मकुण्ड में मंथर गति से डोलने लगते हैं तो दर्शक अपलक उस दृश्य को देखते अघाता नहीं। इस दृश्य को दूर जाकर देखने में और भी आनन्द आता है। हरि की पैड़ी के ऊपर बाजार की सड़क पहले बड़ी संकरी थी। अब इसे काफी चौड़ा किया गया है। अतः ऊपर से खड़े होकर हरि की पैड़ी का दृश्य देखने में सुविधा हो गई है। सन् १९८६ के महाकुंभ पर्व पर हरि की पैड़ी की मरम्मत की गई तथा इसे दर्शनीय बनाया गया। पूर्वापेक्षा अब यहाँ स्नान करने की अच्छी सुविधा हो गई है

अन्य दर्शनीय स्थल व मन्दिर

गंगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नील पर्वते।
स्नात्वा कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

गंगा द्वार (हरि की पैड़ी), कुशावर्त, बिल्वकेश्वर, नीलपर्वत तथा कनखल, ये पाँच हरिद्वार के प्रधान तीर्थ माने गए हैं। इनमें स्नान तथा दर्शन करने से पुनर्जन्म नहीं होता।

दर्शनीय स्थलों व तीर्थों की विस्तृत सूची निम्न प्रकार है—

१. मन्सा देवी का मन्दिर (बिल्व पर्वत पर)

२. चण्डी देवी का मन्दिर (नील पर्वत पर)।
३. गोरखनाथ की गुफा व मन्दिर।
४. विल्वकेश्वर मन्दिर।
५. श्री अयप्पा मन्दिर।
६. काल भैरों का मन्दिर।
७. गीता भवन।
८. माया देवी का मन्दिर।
९. श्री श्रवण नाथ मन्दिर।
१०. मनोकामना सिद्ध हनुमान मन्दिर ज्वालापुर मार्ग।
११. नारायणी शिला (मायापुर)।
१२. दक्ष प्रजापति का मन्दिर व सती कुण्ड।
१३. आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर।
१४. रामकृष्ण मिशन।
१५. गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय कनखल।
१६. सप्तऋषि आश्रम एवं सप्त सरोवर।
१७. भीम गोडा तालाब।
१८. परमार्थ आश्रम।
१९. साधु बेला।
२०. भारत हैवी इलैक्ट्रिक्स (बिजली के भारी सामान बनाने का कारखाना) रानीपुर।
२१. मानव कल्याण आश्रम कनखल।
२२. विष्णु भवन।
२३. मनोकामना सिद्ध मन्दिर मायापुर।
२४. जयराम आश्रम भीमगोडा।
२५. भारत माता मन्दिर।
२६. पावन धाम।
२७. दूधाधारी मन्दिर।
२८. माँ आनन्दमयी आश्रम।

इसके अतिरिक्त नए नए आश्रम और मन्दिर अभी बनते जा रहे हैं। कई पुराने मन्दिरों एवं आश्रमों को नया रूप दिया जा रहा है। यात्रियों सैलानियों को काफी ऊँचाई पर स्थित मन्सा देवी के मन्दिर को अवश्य देखना चाहिए। यहां से प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य और हरिद्वार नगर व हरि की पैड़ी का दृश्य बड़ा ही लुभावना लगता है मन्सादेवी के लिए अब रज्जुमार्ग भी बन गया है। रज्जुमार्ग से ऊपर नीचे जाना बड़ा रोमांच-कारी लगता है। शिवालिक की श्रेणियाँ यहाँ से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं, इसी प्रकार गंगा के उस पार वन प्रान्त में सघन वृक्षावलियों के बीच एक खूबसूरत चोटी पर अवस्थित चण्डी देवी का मन्दिर भी बहुत प्रसिद्ध है। प्रकृति प्रेमियों को तो यहाँ जरूर जाना चाहिए।

हरिद्वार में कुम्भ

हरिद्वार की एक और बड़ी विशेषता यहाँ का कुम्भ पर्व है। कुम्भ का शाब्दिक अर्थ है कलश या घड़ा। यह कुम्भ पर्व भारतवर्ष के चार स्थानों पर बारह वर्ष के अन्तर पर मनाया जाता है। ये स्थान हैं—हरिद्वार, प्रयाग, नासिक और उज्जैन। कुम्भ पर्व के सम्बन्ध में पुराणों में दो कथाएँ हैं। स्कन्द पुराण में वर्णन आता है कि समुद्र मन्थन से चौदहवें रत्न के रूप में प्राप्त अमृत कुम्भ को असुरों के हाथ न लगने देने के लिए देवराज इन्द्र का पुत्र जयन्त जब इस अमृत कुम्भ को लेकर भागा तो भागते हुए कुम्भ में से अमृत की बूँदें छलक पड़ीं। जहाँ-जहाँ ये बूँदें गिरीं वहीं कुम्भपर्व आयोजित होने लगे। कहते हैं ये बूँदें उक्त चारों स्थानों पर गिरीं थीं, श्रीमद् भागवत पुराण के अनुसार इस अमृत कुम्भ को प्राप्त करने के लिए देवताओं और दानवों में १२ दिन तक युद्ध होता रहा। इन १२ दिनों तक अमृत कुम्भ १२ स्थानों पर रखा गया, जिनमें ८ स्थान स्वर्ग में और ४ पृथ्वी पर हैं। पृथ्वी पर अमृत कुम्भ जहाँ जहाँ रखा गया वहीं हर बारहवें वर्ष कुम्भ मनाया जाने लगा। ये चार स्थान वही हैं जिन्हें ऊपर उद्धृत किया गया है।

हरिद्वार में कुम्भ का योग तब बनता है जब सूर्य मेष राशि और बृहस्पति कुम्भ राशि पर हों। शास्त्रों में कुम्भ पर्व के स्नान का बड़ा महत्त्व लिखा है।

अश्वमेध सहस्त्राणि, वाजपेय शतानि च।
लक्षं प्रदक्षिणा भूमेः कुम्भ स्नानेन तत्फलम् ॥

अर्थात् जो फल हजार वार अश्वमेध करने से, सौ बार राजसूय यज्ञ करने से और लक्ष बार समस्त भू-मण्डल की परिक्रमा करने से होता है, वह फल केवल कुम्भ पर्व पर स्नान करने से होता है।

हरिद्वार के कुम्भ पर भारत के सभी राज्यों के धार्मिक आस्था रखने वाले लोग लाखों की संख्या में यहाँ आते हैं। कई सम्प्रदायों के धर्माचार्य धर्म प्रचार व भजनोपदेश का कार्य यहाँ आकर करते हैं। कुछ लोग केवल स्नान, पूजा-पाठ और दान-दक्षिणा देने के लिए यहां आते हैं। सैलानी लोग भीड़-भाड़ और जन-समाज के उमड़ते सागर को देखने भर के लिए यहां आते है, संक्षेप में कुम्भ के इस महान पर्व पर हिन्दुस्तान के विभिन्न भाषा भाषी, विभिन्न पोषाकों और खान-पान की विविधता को लिए लोगों का यहां एक समन्वित संसार दृष्टिगोचर होता है। ६ वर्ष में यहाँ अर्द्ध कुम्भी पर्व आयोजित करने की भी प्रथा है। शासन और प्रशासन की ओर से कुम्भ पर्व पर विशेष व्यवस्था रहती है। हरिद्वार के इर्द-गिर्द का एक बहुत बड़ा क्षेत्र 'मेला क्षेत्र' घोषित कर दिया जाता है इस मौके पर कानून और व्यवस्था को नियन्त्रण में रखने के लिए विशेष प्रवन्ध होते हैं। सफाई का पूरा ध्यान रखा जाता है, स्वास्थ्य सेवाओं में स्थायी संस्थाओं के अतिरिक्त कई अन्य अस्थाई संचल दल सेवा कार्य में जुटे रहते हैं। इस अवसर पर यातायात को नियन्त्रित करने के लिए गंगा नदी पर कई स्थानों पर अस्थाई पुल निर्मित किए जाते हैं।

हरिद्वार में आवास व्यवस्था

हरिद्वार में यात्रियों और पर्यटकों के लिए आवास की समुचित व्यवस्था है। अनेक धर्मशालाएं, होटल और आश्रम यहाँ विद्यमान हैं। धनी निर्धन सभी प्रकार के यात्रियों और पर्यटकों को यहाँ रात्रि निवास की पूर्ण व्यवस्था है। यहां पर चिकित्सालय, डाक, तार और टेलीफ़ोन की भी पूर्ण व्यवस्था है। यातायात की भी यहाँ कोई कठिनाई नहीं है। यात्रियों

को उनकी स्थिति के अनुसार यहाँ सभी प्रकार के यातायात के साधन उपलब्ध हैं।

तीर्थ यात्रियों को यहाँ स्नान, दान आदि धार्मिक कृत्य करने से आत्मिक शान्ति मिलती है। पर्यटकों को यहाँ की प्राकृतिक छटा से आनन्द की अनुभूति होती है। साथ ही ज्ञान की वृद्धि भी होती है।

भारत के प्रमुख नगरों से हरिद्वार की दूरी (रेलमार्ग)

१. दिल्ली से सहारनपुर होकर हरिद्वार — २६५ कि० मी
२. बम्बई से दिल्ली होकर हरिद्वार — १६५१ कि० मी
३. कलकत्ता से लखनऊ होकर हरिद्वार — १४५१ कि० मी
४. मद्रास से दिल्ली होकर हरिद्वार — २४५६ कि० मी।
५. जयपुर से सहारनपुर होकर हरिद्वार — ५५१ कि० मी।

(ख) प्रमुख सरकारी भवन—

पर्यटक विश्राम गृह हरिद्वार।
केनाल निरीक्षण भवन नं० १, २ ३ व ४ मायापुर हरिद्वार।
जिला परिषद निरीक्षण भवन बस अड्डा, हरिद्वार।
सार्वजनिक निर्माण विभाग निरीक्षण भवन भीमगोड़ा मार्ग
वन विभाग विश्राम भवन रानीपुर, हरिद्वार।

(आ) प्रमुख होटल—

आनन्द निवास होटल, श्रवणनाथ घाट।
आर्य निवास ट्रस्ट बिल्डिंग, निरंजनी अखाड़ा रोड।
गुरुदेव होटल स्टेशन रोड (शिवमूर्ति के पास)
ज्ञान निकेतन सुभाष घाट।
जयपुरिया हाउस रामघाट।
पेलेस होटल श्रवणनाथ नगर।
न्यू रायल होटल गौ घाट।
शान्ति निकेतन हरि की पैड़ी।
उपमा होटल सब्जी मण्डी।
वासुदेव मद्रास होटल, निकट रेलवे स्टेशन, श्रवणनाथ नगर
होटल सम्राट, श्रवणनाथ नगर।

अलका होटल गौ घाट।

होटल हरि निवास विष्णु घाट।

राज होटल, विष्णु घाट।

विक्रान्त होटल गौ घाट।

यात्री निवास, न्यू गंगा टाकिज।

होटल सवेरा, निर्मला छावनी।

(इ) प्रमुख धर्मशालाएँ—

काली कमली धर्मशाला।

धनदेवी धर्मशाला।

बसन्ती देवी धर्मशाला।

नानकीबाई धर्मशाला।

भटिण्डा वाली धर्मशाला।

अमृतसर वाली धर्मशाला।

नरसिंह भवन धर्मशाला।

वृन्दावन धर्मशाला।

लखनऊ वाली धर्मशाला।

सूरजमल धर्मशाला।

करोड़ीमल धर्मशाला।

भोला गिरी धर्मशाला।

कर्नाटक धर्मशाला।

मद्रासी धर्मशाला।

बीकानेर धर्मशाला।

मिश्रा धर्मशाला।

गीता भवन।

गोयल धर्मशाला।

हरिद्वार के सम्बन्ध में अन्य सामान्य सूचनाएँ—

जनसंख्या—७५००० (१९७१ की गणना के अनुसार)

क्षेत्रफल—१२.०३२ वर्ग किलोमीटर

सिन्धु तट से ऊँचाई—२९२.७ मीटर

तापमान—

ग्रीष्म काल :—अधिकतम— ३५.६° से०

न्यूनतम— १६.९° से०

शीतकाल : — अधिकतम— २८.३° से०

न्यूनतम— १०.६° से०

वर्षा—९४ इंच

बोली जाने वाली भाषाएँ—हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी

यात्रा का समय—वर्ष पर्यन्त

हरिद्वार से कुछ प्रमुख स्थानों की दूरी (मोटर मा[र्ग]

दिल्ली	—	२२२ कि० मी०
सहारनपुर	—	८२ कि० मी०
देहरादून	—	५२ कि० मी०
मेरठ	—	१४१ कि० मी०
अम्बाला	—	२१० कि० मी०
आगरा	—	३६८ कि० मी०
मसूरी	—	१०२ कि० मी०
नैनीताल	—	४१७ कि० मी०
बदरीनाथ	—	३२० कि० मी०
केदारनाथ	—	२५० कि० मी०
यमनोत्तरी	—	२५१ कि० मी०
गंगोत्तरी	—	२८० कि० मी०

हरिद्वार से ऋषिकेश

हरिद्वार से ऋषिकेश २४ किलोमीटर की दूर पर स्थित है, यहाँ से उत्तर प्रदेश परिवहन की बसें ऋषिकेश के लिए आसानी से मिल जाती हैं, टैक्सियाँ भी यहाँ हर समय उपलब्ध रहती हैं। कुछ यात्री और पर्यटक हरिद्वार से टैक्सी लेकर सीधे गंगोत्तरी-यमनोत्तरी और बदरी-केदार के लिए चल पड़ते हैं। हरिद्वार में कुछ ऐसी भी संस्थाएँ हैं जो उत्तराखंड के चारों धामों की यात्रा के लिए टैक्सियाँ और बसें उपलब्ध कराती हैं। ये यात्रा एजेन्सियां आने-जाने का पूरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेती हैं।

अधिकतर यात्रीगण हरिद्वार से ऋषिकेश के बीच के व ऋषिकेश के तीर्थस्थान व दर्शनीय स्थलों का अवलोकन करके ही आगे बढ़ते हैं। हरिद्वार से उत्तर की ओर चलने पर नगर के छोर पर भीम गोडा है। यहाँ पर भीम का मन्दिर एवं कुण्ड है। कहते हैं पान्डुपुत्र भीम ने हिमालय प्रस्थान के समय गोडा मारकर यहाँ पर जलधार उत्पन्न की थी, इस कुण्ड में स्नान करने का धार्मिक महत्व बताया गया है, भीम गोडा के निकट ही

रेल सुरंग है। देहरादून और ऋषिकेष से आने वाली रेलें इसी सुरंग से निकलकर हरिद्वार रेलवे स्टेशन पर पहुँचती हैं।

भीम गोडा से आगे चलकर ११ किलोमीटर पर भगवान सत्य नारा-यण का प्राचीन मन्दिर है। यात्री बस से उतर कर यहाँ दर्शन करते हैं। इसके बाद बस सीधे ऋषिकेश की ओर रेंग जाती है। हरिद्वार से ऋषिकेश के बीच अनेक स्थानों पर बस जब सघन वन वीथि में से गुजरती है तो यात्रियों और प्रकृति-प्रेमी सैलानियों का मन आनन्दित हो उठता है। शिवालिक पर्वत श्रेणियाँ यहाँ से धीरे-धीरे ऊपर को उठती नजर आती हैं मैदानों के निवासी, जिन्हें यहाँ प्रथम बार पहाड़ देखने का अवसर मिलता है, आश्चर्य चकित होकर अपलक निसर्ग की इस अद्भुत छटा को देखते नहीं अघाते। ऋषिकेश में पदार्पण से पूर्व दाहिनी ओर कृमि नाशक दवाइयाँ बनाने का एक बहुत बड़ा कारखाना अवस्थित है जिसे आइ० डी० पी० एल० कहते हैं। यह विशाल कारखाना सोवियत सरकार के सहयोग से स्थापित किया गया है। इस कारखाने की सीमा को लाँघकर कुछ देर में यात्रीगण अपने को पहाड़ों की गोद में बसे ऋषियों की तपोभूमि ऋषि-केश में पाते हैं, यहाँ पहुँचकर यात्रीगणों को पहाड़ों को बिलकुल करीब से देखने का मौका मिलता है और कहना चाहिए कि उन्हें केदारखंड या स्वर्ग भूमि के दर्शन होते हैं। केदारखंड ग्रंथ में हरिद्वार से ऊपर की ही भूमि को स्वर्ग भूमि से अविहित किया गया है। यथा :—

गंगाद्वारोत्तरं विप्र स्वर्गभूमिः स्मृता बुधैः।
अन्यत्र पृथ्वी प्रोक्ता गंगाद्वारोत्तरं बिना॥

—केदारखंड अ० १०६

(स्कन्द नारद से कहते हैं —हे नारद! श्री हरिद्वार से ऊपर जो केदारखण्ड की भूमि है वह स्वर्ग भूमि है और उससे भिन्न अन्य भूमि पृथ्वी कहलाती है।)

५

ऋषिकेश

प्रकृति की गोद में पतित पावनी त्रिपथगा (गंगा) के दक्षिण तट
सिन्धुतट से ३५६ मीटर की ऊँचाई पर ऋषिकेश अवस्थित है। सा
सन्यासियों, भौतिक जगत की आपाधापी से पीड़ित मानवों, धर्म
निष्ठा रखने वालों, प्रकृति प्रेमियों व सक्षम शरीर वाले भिक्षुअ
को आकर्षित करने वाली बहुरंगी इस नगरी का अपना अलग ह
महत्त्व है, प्रशासनिक दृष्टि से ऋषिकेश जनपद देहरादून के अन्तर्गत
आता है।

अर्थोपार्जन करने वालों के लिए यह नगर व्यापार का विस्तृत क्षेत्र प्रदान करता है, क्योंकि सम्बन्धित पर्वतीय क्षेत्र की यह एक बड़ी व्यापार मंडी है। विद्यार्थियों के लिए यहाँ विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाएं मौजूद हैं। ज्ञानार्थियों का आह्वान करने के लिए यहाँ के आध्यात्मिक केन्द्र एवं विरक्त आध्यात्मवेत्ता अहर्निश उन्मुक्त अवसर प्रदान करते हैं। स्नानार्थियों को भगवती गंगा का स्वच्छन्द प्रवाह बरबस बुलाता है। भिक्षार्थियों को यहाँ आसानी से भीख सुलभ हो जाती है एवं भ्रमणार्थियों को यहाँ के सघन वन एवं उत्तुंग पर्वतमालायें निशी दिवस आमंत्रित करती है। यही कारण है कि ऋषिकेश की इस भूमि में सभी रसों के रसिक दिखाई देते हैं, यहाँ योगियों को योग और भोगियों को भोग सुलभ है। संक्षेप में मानव जीवन में वांछित चारों पदार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यहाँ उपलब्ध हैं। ऋषिकेश का महत्व इसलिए भी अधिक है कि उत्तराखण्ड के चारों धामों की वास्तविक यात्रा यहीं से आरम्भ होती है। साथ ही यह भारत के सभी राज्यों से रेल पथ और मोटर मार्ग से जुड़ा है।

पौराणिक पुरावृत में ऋषिकेश

हमारे देश के तीर्थ स्थानों के बारे में पुराणों या इतर ग्रंथों में जो [illegible]थाएं मिलती हैं, लिपिबद्ध होने से पूर्व वे सदियों तक समाज में मौखिक [illegible]प से प्रचलित रहीं। इस प्रकार वे इतनी परिवर्तित एवं मिश्रित हो गईं कि उनके मूल ,स्वरूप को पाना काफी जटिल हो गया है। पौराणिक पुरा-वृत्त में ऋषिकेश के सम्बन्ध में कई कथायें मिलती हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार यहाँ भगवान विष्णु ने राक्षसों से पीड़ित ऋषियों की प्रार्थना पर मधु कैटभ आदि दैत्यों का संहार कर ऋषियों को यह साधना भूमि प्रदान की थी। इसी से इसका नाम ऋषिकेश पड़ा।

ऋषिकेश का दूसरा पौराणिक नाम कुब्जाम्रक है। कहते हैं १७ वें मन्वतर में तपस्या में लीन रैम्य मुनि को भगवान विष्णु ने यहां आम के वृक्ष पर दर्शन दिए थे। रैम्य मुनि कुबड़े थे, इसी से इसका नाम कुब्जा-म्रक पड़ा। श्रीराम ने ब्रह्महत्या (रावण वध) के पाप से मुक्त होने के लिए [illegible]ाँ तप किया था। त्रिवेणी तट पर श्रीराम-जानकी का मन्दिर उसकी [illegible]ृति को ताजा किए हुए हैं। ऐसी भी कथा है कि राम के भाई भरत ने [illegible]हाँ तप किया था। उस स्थान पर भरत मन्दिर बनाया गया और उसके चारों ओर बाद में एक नगर उभर आया जो आज ऋषिकेश के प्रमुख मन्दिरों में गिना जाता है। इसके अतिरिक्त यहाँ चन्द्रशेखर महादेव, वाराह भगवान, सोमेश्वर महादेव, वेंकटेश्वर मन्दिर, शत्रुघ्न मन्दिर, लक्ष्मण मन्दिर आदि भी प्रसिद्ध हैं।

काली कमली वाला पंचायती क्षेत्र

ऋषिकेश और उत्तराखंड के वृतान्त में ऋषिकेश में स्थित [illegible] काली कमली वाले क्षेत्र का परिचय न देना उत्तराखंड यात्रा के बारे में अधूरा ज्ञान देना कहा जाएगा। क्योंकि इस संस्था ने [illegible] यात्रियों के लिए जो सुविधायें मुहैया की हैं वे प्रशंसनीय हैं। [illegible] कमलीवाले क्षेत्र के संस्थापक श्री १०८ स्वामी [illegible] थे। [illegible] बदरिकाश्रम में तप किया और [illegible]

धनी मानी लोगों का ध्यान धार्मिक भावना की ओर आकर्षित कर यात्रा मार्ग में यात्रियों की सुविधा के लिए धर्मशालाएँ, सदावर्त तथा प्याऊ आदि स्थापित करवाये। स्वामी जी एक काला कम्बल धारण किए रहते थे। इसी कारण उनका नाम बाबा काली कमली वाले पड़ा और उनके द्वारा स्थापित संस्था भी इसी नाम से विख्यात हो गई। काली कमली वाले क्षेत्र का प्रधान कार्यालय ऋषिकेश में है। इस संस्था की ओर से उत्तराखंड यात्रा मार्ग में इसके जन्मकाल में अब तक निरन्तर यात्रियों की सेवा का कार्य किया जा रहा है। उत्तराखंड के चारों धामों को जाने वाले मार्गों पर काली कमली की धर्मशालायें हैं। कई स्थानों पर औषधालय, सदावर्त, प्याऊ, गोशाला व भोजन वितरण केन्द्र हैं। ऋषिकेश में यह संस्था साधु सन्तों को नित्य प्रति पका पकाया या बिना पका भोजन वितरण करती है।

ऋषिकेश के अन्य दर्शनीय स्थल

१. त्रिवेणीघाट।
२. वीरभद्र एवं ऐण्टी बाइटिक्स प्रोजेक्ट
३. स्वर्गाश्रम
४. परमार्थ निकेतन
५. गीता भवन
६. चौरासी कुटी (महेश योगी का भावातीत ध्यान केन्द्र)
७. शिवानन्द आश्रम
८. लक्ष्मण झुला पुल
९. कैलाशानन्द आश्रम (लक्ष्मण झूला)
१०. गुरुद्वारा हेमकुण्ट ट्रस्ट
११. कैलाश आश्रम
१२. बिट्ठल आश्रम
१३. योग निकेतन
१४. योग साधना आश्रम
१५. शिवानन्द झूला

ऋषिकेश में आवासीय व्यवस्था

ऋषिकेश में सभी श्रेणी के यात्रियों के लिए आवास की पूरी व्यवस्था है। जिनमें निम्नलिखित व्यवस्थायें उल्लेखनीय हैं—

१. पर्यटक विश्राम गृह मुनि की रेती
२. होटल इन्द्रलोक रेलवे रोड (पश्चिमी ढंग का होटल)

३. मेनका होटल, यू० पी० रोडवेज बस स्टैण्ड के निकट।
४. जनता टूरिस्ट लौज, देहरादून रोड
५. सार्वजनिक निर्माण विभाग का विश्राम भवन
६. वन विश्राम भवन मुनि की रेती।
७. तिरूमुला तिरुपति देवस्थानम्।

प्रमुख धर्मशालायें व आश्रम जहाँ आवास सुविधाएँ हैं

१. बाबा काली कमली धर्मशाला।
२. पंजाब-सिन्ध क्षेत्र धर्मशाला।
३. जयराम अन्न क्षेत्र।
४. श्री विट्ठल आश्रम।
५. शिवानन्द आश्रम।
६. परमार्थ निकेतन।
७. गीता भवन
८. स्वर्गाश्रम
९. सिन्धी धर्मशाला
१०. भगवान आश्रम
११. गोपाल कुटी
१२. सहारनपुर वाली धर्मशाला
१३. दिल्ली वाली धर्मशाला।
१४. देवकी बाई धर्मशाला।
१५. जीवन माई धर्मशाला।
१६. कानपुर वाली धर्मशाला।
१७. जयपुर वाली धर्मशाला।
१७. महानन्द आश्रम।
१९. अवधूत आश्रम।
२०. भजनाश्रम
२१. नेपाली क्षेत्र
२२. पुष्कर मन्दिर धर्मशाला।

ऋषिकेश के सम्बन्ध में अन्य सामान्य सूचनायें

जनसंख्या— २८८९७ (१९८१ की जनगणना के आधार पर)।
क्षेत्रफल — ११.२० वर्ग किलोमीटर
सिन्धुतट से ऊँचाई—३५६ मीटर
औसत तापमान—

ग्रीष्म ऋतु :—	अधिकतम	१०६° फा०
	न्यूनतम	९८° फा०
शीतकाल :—	अधिकतम	९०° फा०
	न्यूनतम	६५° फा०

औसत वर्षा ६० इंच
प्रयुक्त भाषायें—हिन्दी, अंग्रेजी, पंजाबी, गढ़वाली

यात्रा का समय—वर्ष पर्यन्त ।

निकटतम हवाई अड्डा—जौली ग्रांट १८ कि० मी० दूर

ऋषिकेश से उत्तराखंड के विभिन्न स्थानों की दूरी

(मोटर मार्ग)

हरिद्वार	२४ कि० मी०
देहरादून	४२ कि० मी०
मसूरी	७७ कि० मी०
नरेन्द्र नगर	१६ कि० मी०
नीलकंठ	१६ कि० मी०
यमनोत्तरी	२८८ कि० मी०
गंगोत्तरी	२५८ कि० मी०
उत्तरकाशी	१५४ कि० मी०
श्रीनगर	१०५ कि० मी०
केदारनाथ	२२८ कि० मी०
बदरीनाथ	३०१ कि० मी०

ऋषिकेश की यातायात एजेंशियाँ

१. गढ़वाल मंडल विकास निगम, मुनि की रेती
२. टिहरी गढ़वाल मोटर औनर्स यूनियन लि०
३. यातायात और पर्यटन विकास सहकारी संघ
४. गढ़वाल मोटर औनर्स यूनियन प्रा० लि०
५. श्री गंगा जी टूरिस्ट टैक्सी कार सर्विस

६

ऋषिकेश से आगे

उत्तराखंड का प्रवेश द्वार वास्तव में हरिद्वार नहीं अपितु ऋषिकेश है। यहीं से उत्तराखंड के चारों धामों—यमनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ की वास्तविक यात्रा आरम्भ होती है।

उत्तराखंड में यूँ तो अनेक तीर्थ स्थान और दर्शनीय स्थल हैं किन्तु यात्रीगण और पर्यटक अपनी सामर्थ्य और समय के अनुसार इन धामों और दर्शनीय स्थलों की यात्रा करते हैं। धार्मिक दृष्टि से उक्त चारों धामों की यात्रा पुण्य दायक है। किन्तु समय की कमी और आर्थिक दृष्टि से सभी लोग चारों धामों की यात्रा नहीं कर सकते। कुछ लोगों के पास पैसा तो है किन्तु सांसारिक कामों में इतने व्यस्त हैं कि सभी स्थानों की यात्रा करने के लिए उनके पास समय नहीं है। अतः तीर्थ यात्री अधिकतर बदरी-केदार की ही यात्रा करते हैं। कुछ लोग तो केवल बदरीनाथ की ही यात्रा करके लौट आते हैं। पर्यटक भी अधिकतर बदरीनाथ की ओर ही चल पड़ते हैं। जबकि पर्यटन की दृष्टि से उत्तराखंड में अनेक सौन्दर्य स्थल विद्यमान हैं।

देखा जाए तो उत्तराखंड की नैसर्गिक सुषमा की रूप माधुरी का रसास्वादन वास्तव में भ्रमणार्थी ही कर सकते हैं। किन्तु यहाँ कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ पहुँचने के लिए भ्रमणार्थी को साहसी होना भी जरूरी है। भ्रमण का जो आनन्द पैदल यात्रा में है वह वाहन की यात्रा में कदापि नहीं। वाहनों की यात्रा ने मनुष्य का समय जरूर बचा लिया है किन्तु उन्मुक्त वातावरण से वंचित कर लिया है। बसें सामान की तरह यात्रियों का ढुलान भर कर देती हैं। यात्री जब ऋषिकेश में बस का दामन पकड़ता है तो वह जैसे डिब्बे में बन्द होकर सीधे अपने गन्तव्य की ओर पर-बस

हुआ चला जाता है। मार्ग में कहां पर क्या है, इसका उसे कोई भान नहीं होता है।

पहले किधर ?

धार्मिक दृष्टि से यात्रा करने वालों को ऋषिकेश में यह निर्णय लेना पड़ता है कि पहले गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की यात्रा की जाये या बदरी-केदार की। क्योंकि ऋषिकेश से गंगोत्तरी-यमनोत्तरी के लिए अलग और बदरी केदार के लिए अलग मार्ग हैं। यातायात का प्रबन्ध भी यहाँ ये होता है।

शास्त्रों की मर्यादानुसार यात्रा वामावर्त हुआ करती है। अर्थात बाईं ओर से दाहिनी ओर को। अतः उत्तराखंड के चारों धामों की यात्रा करने वालों को पहले ऋषिकेश से टिहरी-धरासू होते हुए यमनोत्तरी और यमनोत्तरी से उत्तरकाशी होते हुए गंगोत्तरी की यात्रा करनी चाहिए। गंगोत्तरी से टिहरी श्रीनगर-रुद्रप्रयाग होकर या टिहरी-तिलवाड़ा होकर पहले केदारनाथ और पश्चात् केदारनाथ से ऊखीमठ-चमोली होते हुए बदरीनाथ जाना चाहिये।

ऋषिकेश से गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की ओर जाने वाले यात्रियों को धरासू तक एक ही राह पर चलना पड़ता है। इसी प्रकार बदरी-केदार की ओर जाने वाले यात्रियों को रुद्रप्रयाग तक।

तो आइए, हम बदरी-केदार की ओर चलें। वही बदरी-केदार जी सिन्धु तट से दस-ग्यारह हजार फीट की ऊँचाई पर हिमधवल पर्वत श्रेणियों द्वारा आवेष्टित देवात्मा हिमालय की हिमराजित धरती पर अनन्त काल से करोड़ों भारतीयों की आस्था का केन्द्र बने हुए हैं। इस बर्फीले साम्राज्य में इतनी ऊँचाई पर वास्तुकला के ऐसे नमूने बदरी-केदार के इन पाषाण शिलाओं से निर्मित मन्दिरों को किसने, कब और कैसे बनाया ? मनुष्यों के लिए वहाँ ऐसा क्या आकर्षण है जो बरबस उधर खींचता जा रहा है ? कल्पना कीजिए उस जमाने की जब हरिद्वार से ही लोग पूरा यात्रा मार्ग पैदल ही तय करते थे। क्या हरिद्वार-ऋषिकेश और अन्य मैदानी क्षेत्रों में मन्दिरों और तीर्थों की कमी है जो लोग कष्ट साध्य इस पर्वतीय यात्रा का वरण कर बदरी-केदार की ओर बढ़े चले जाते हैं ? नहीं, भारत में एक से

बढ़कर एक भव्य मन्दिर और तीर्थस्थल हैं किन्तु नगपति के वक्षस्थल में अवस्थित बदरी-केदार की घाटियों और तुषारावृत इन पर्वत श्रेणियों में ईश्वर की विराट सृष्टि के दर्शन होते हैं। ये स्थान जितने ऊँचे हैं उतने ही ऊँचे मनुष्य के विचारों को ले जाते हैं। यहाँ का सब कुछ अनोखा है। प्रकृति की रचना कौशल का कमाल यदि देखना हो तो वह यहीं देखा जा सकता है।

बदरीनाथ की हिम मंडित घाटी में, जहाँ मई-जून में भी हड्डियाँ कड़कड़ा देने वाली ठण्ड रहती है, वहीं मन्दिर के अति निकट प्रकृति ने यात्रियों की सुविधा के लिए बर्फीले पहाड़ों के अन्दर से तप्त धारा बहा दी है, जो अजस्र गति से युगों युगों से बह रही है। क्या यह प्रकृति की रचना कौशल का चमत्कार नहीं ? अस्तु,

आइए, प्रकृति के इस रचना शिल्प को देखने के लिए ऋषिकेश से आगे बढ़ें। यहाँ से स्थानीय मोटर कम्पनियों और राज्य सड़क परिवहन की बसें बदरी-केदार की ओर जाने के लिए सुलभ हैं।

मुनि की रेती

ऋषिकेश से लगभग डेढ़ किलोमीटर चलने पर यात्री मुनि की रेती में प्रवेश करते हैं। यह टिहरी जनपद का एक छोटा सा कस्बा है। यहाँ गढ़वाल विकास निगम का भव्य पर्यटक विश्रामगृह है जो उत्तराखंड की ओर जाने वाले यात्रियों एवं पर्यटकों को हर प्रकार की सुविधायें प्रदान करने को तत्पर रहता है। निगम के यात्रा व्यवस्थापक का कार्यालय भी यहीं है। उत्तराखंड के सम्बन्ध में हर प्रकार की सूचनायें यहाँ से मिल सकती हैं। निगम की ओर से पैकेज टूर की व्यवस्था भी यहाँ से की जाती है। पैकेज टूर में अलग-अलग धामों के लिए आरामदायक डीलक्स बसों द्वारा पर्यटकों के भ्रमण की व्यवस्था की जाती है। निगम की ओर से प्रत्येक बस में एक मार्ग दर्शक होता है जो पर्यटकों को मार्ग के प्रमुख स्थानों का ज्ञान कराता जाता है।

मुनि की रेती में एक विशाल आश्रम है जिसे कैलाश आश्रम के नाम से पुकारा जाता है। कैलाश आश्रम से कुछ आगे बढ़ने पर एक मार्ग टिहरी

जनपद के मुख्यालय नरेन्द्र नगर होते हुए गंगोत्तरी-यमनोत्तरी की ओर चला जाता है और इसका देव प्रयाग-श्रीनगर होते हुए बदरी-केदार की ओर। मुनि की रेती में यात्रा काल में यात्रियों को टीके लगाये जाते हैं ताकि किसी प्रकार की छूत की बीमारी उन पर प्रभाव न डाल सके। यह व्यवस्था अनिवार्य है। कैलाश आश्रम से कुछ आगे बढ़ने पर दाहिनी ओर प्राचीन शत्रुघ्न मन्दिर है। कहते हैं प्राचीन काल में यहाँ पर भगवान राम के भाई शत्रुघ्न ने तपस्या की थी। शत्रुघ्न मन्दिर से आगे चलकर बाई ओर पहाड़ की ढलान पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का शिवानन्द का आश्रम है। शिवानन्द आश्रम के विभिन्न स्कन्ध आज मानव सेवा एवं संसार के विभिन्न देशों में योग-वेदान्त के प्रचार में जुटे हैं। आश्रम की ओर से सड़क की दाहिनी ओर एक नेत्र चिकित्सालय भी संचालित है। यही आश्रम एक फारेस्ट अकादमी का भी संचालन कर रहा है। आश्रम के संस्थापक स्वामी शिवानन्द के ब्रह्मलीन होने के उपरान्त उनके परमप्रिय शिष्य स्वामी चिदानन्द जी इस आश्रम के अध्यक्ष हुए जो बड़े ही वीतरागी और प्रकाण्ड विद्वान हैं। मानव सेवा के लिए वे समर्पित हैं।

शिवानन्द आश्रम के सामने गंगा उस पार परमार्थ निकेतन, स्वर्गाश्रम व गीता भवन आदि संस्थायें हैं। वहीं जंगल में महर्षि महेश योगी का भावातीत ध्यान केन्द्र भी है।

लक्ष्मण झूला

लक्ष्मण झूला मुनि की रेती से ३ किलोमीटर की दूरी पर है। कथा है कि इस स्थान पर श्रीरामचन्द्र के भ्राता लक्ष्मण ने तपस्या की थी। उन की स्मृति में यहाँ पर एक मन्दिर बनाया गया जिसे लक्ष्मण मन्दिर कहते हैं। इस स्थान पर १८८९ ई० तक एक जूट की रस्सियों का एक झूला पुल बनाया गया जो अब तक विद्यमान है। पुल पार स्वामी कैलाशानन्द का बहु मंजिला आश्रम है जो अत्यन्त आधुनिक एवं भव्य है। अनेक पुराने मन्दिर भी लक्ष्मण झूला में है जो दर्शनीय हैं। लक्ष्मण झूला से १२ किलोमीटर की दूर पर नीलकंठ महादेव का मन्दिर है। यह मन्दिर सिन्धुतट

दक्षेश्वर मन्दिर (कनखल)
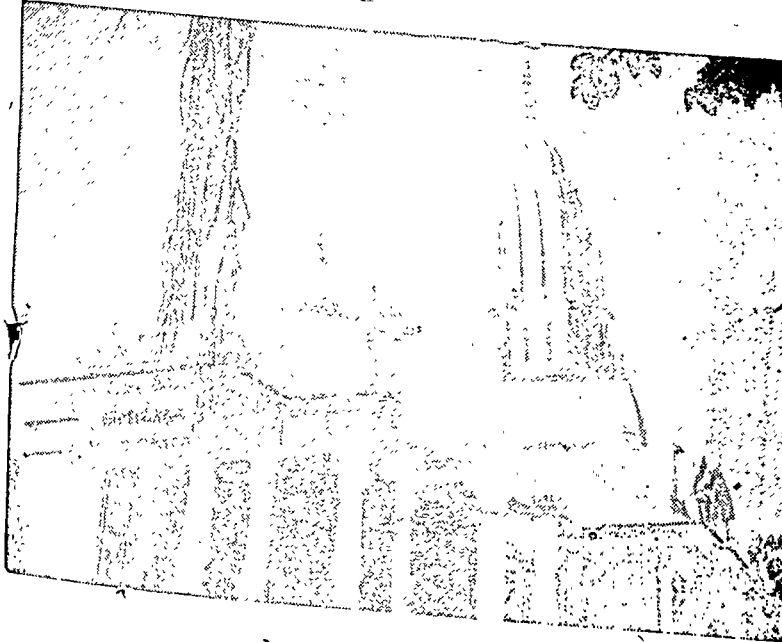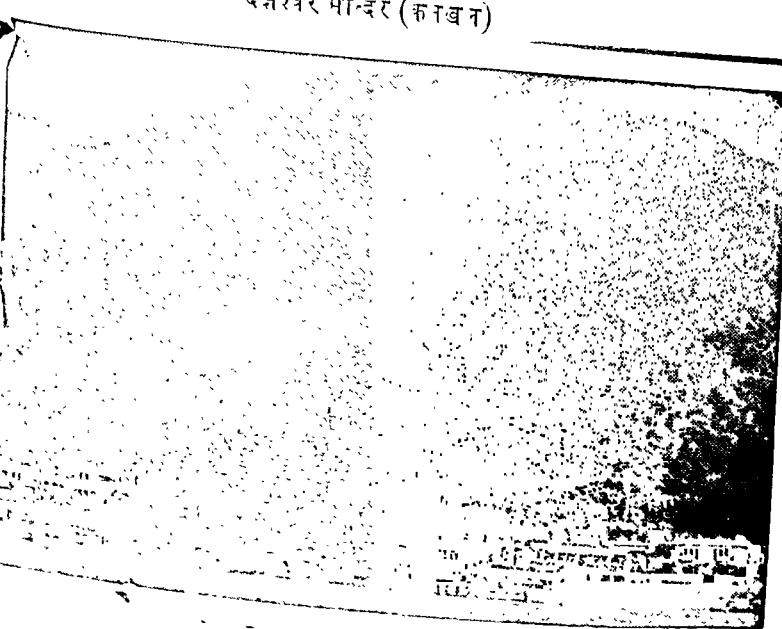
स्वर्गाश्रम (

धारीदेवी की पाषाण
प्रतिमा
(कलियासौड़)

कमलेश्वर मन्दिर
श्रीनगर
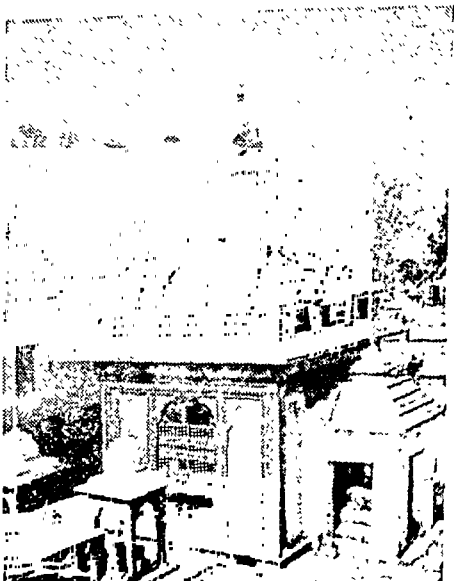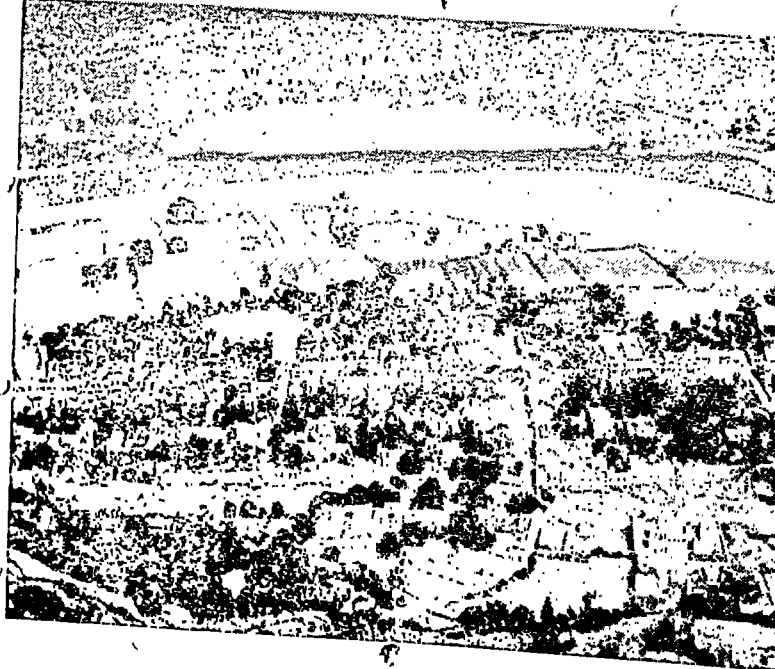
श्री नगर (गढ़वाल) विहंगम दृश्य

शंकरमठ
(श्री नगर
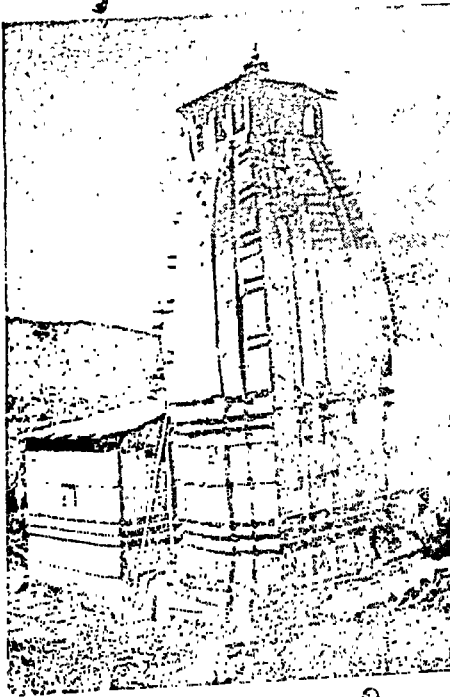
नाग गांव का मन्दिर
खास पट्टी (टिहरी गढ़वाल)

गोमुख
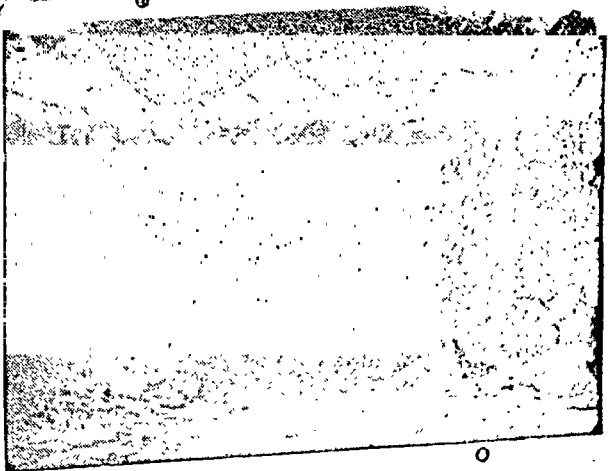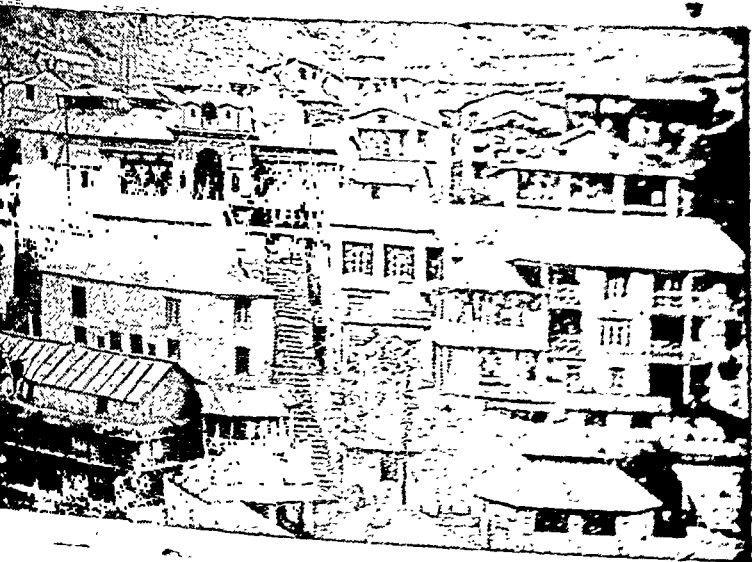
बदरीनाथ पुरी का दृश्य
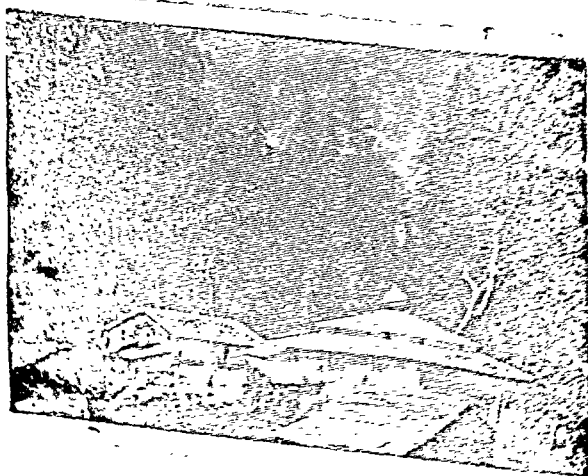
गुरुद्वारा गोविन्द धाम

तुङ्गनाथ
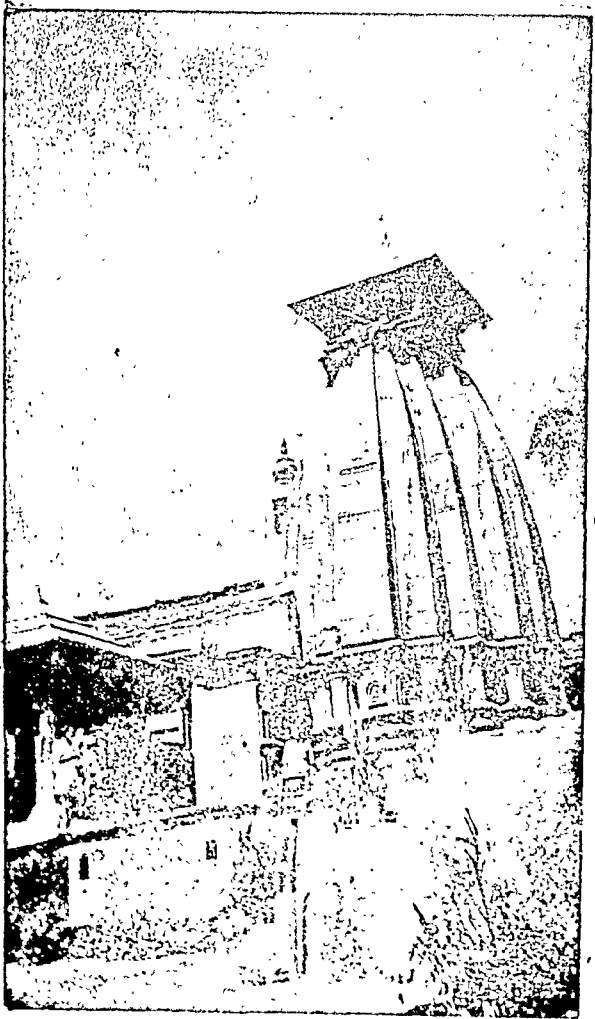
ऊखीमठ
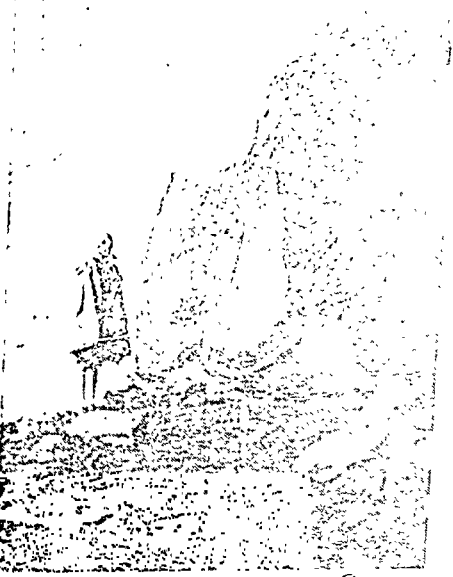
तुंगनाथ शिखर पर शोध छात्र जड़ी बूटियों की खोज में

मद्महेश्वर

गोपेश्वर का
लौह त्रिशूल
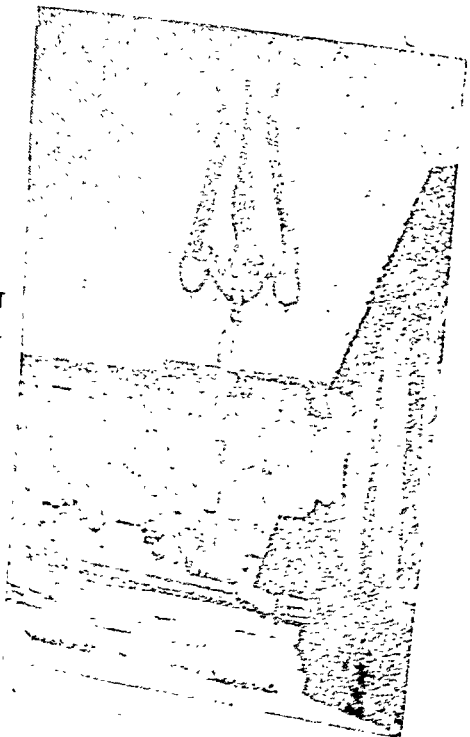
वदरीनाथ के निकट
वामणी गाँव का
देवी मन्दिर

देवरिया ताल
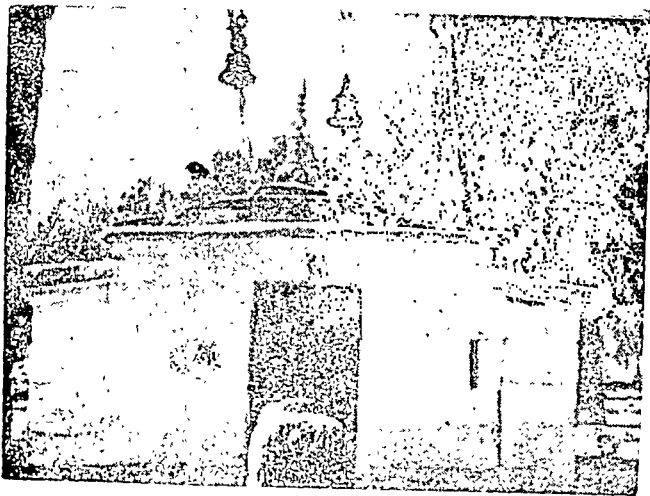
वैरास कुण्ड (जहाँ रावण ने तपस्या की थी)
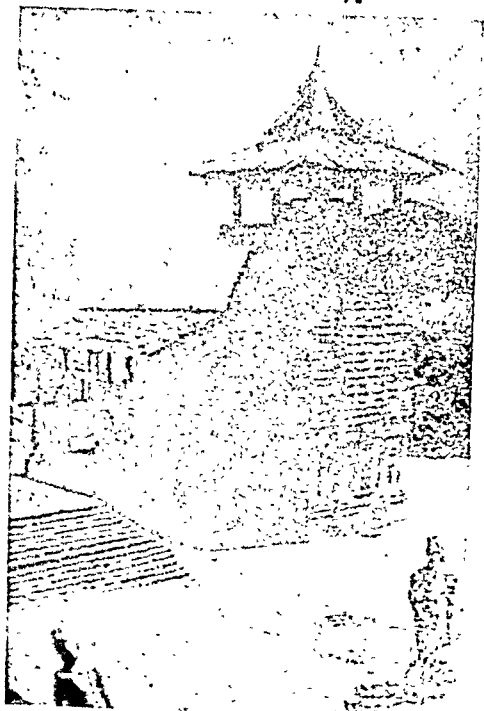
लाखामण्डल
का मन्दिर

ब्रह्मा वमल
१३०० फीट

फेन कमल
१६००० फीट
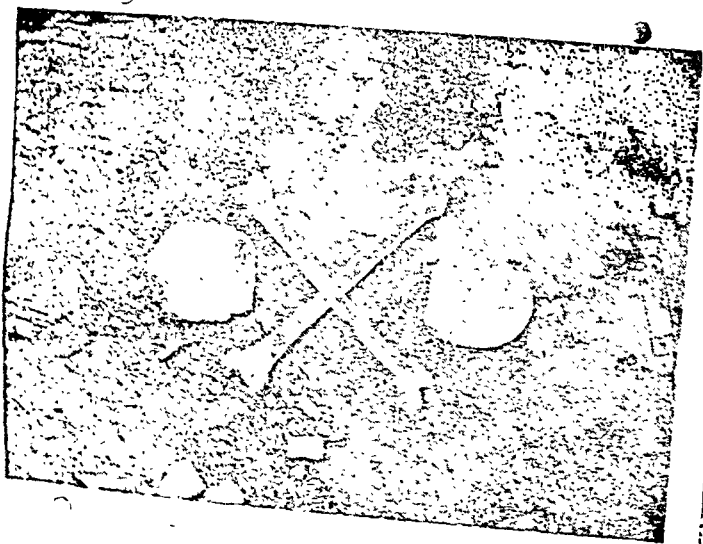
पाण्डुकेश्वर

त्रियुगी नारायण
जी का मन्दिर
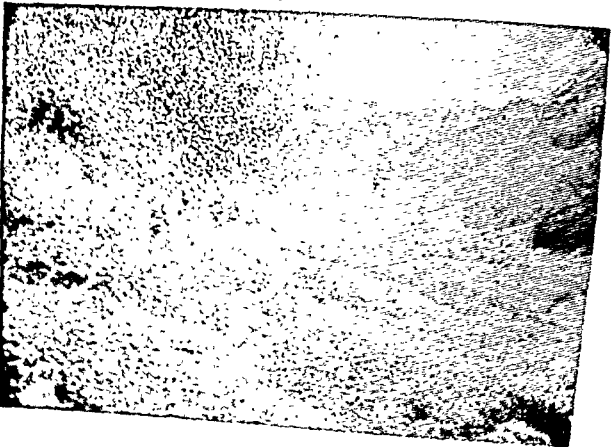
फूलों की घाटी का दृश्य

पद्मटदेव का ताम्रपत्र पाण्डुकेश्वर

समय—लगभग दसवीं शताब्दी
लिपि- ब्राह्मी
भाषा- संस्कृत
उत्कीर्णक—श्रीनन्द भद्र
(गढ़वाल विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व
विभाग के सौजन्य से प्राप्त)

अलकनन्दा का उद्गम
(अलकापुरी)

से ५, ५०० फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की मनोरम छटा नीलकंठ महादेव से देखी जा सकती है।

लक्ष्मण झूला से गंगा के दाहिने किनारे बदरी-केदार की ओर जाने का पैदल मार्ग है और बायें किनारे मोटर मार्ग। मोटर मार्ग बनने से पूर्व यात्रीगण पैदल मार्ग से ही बदरी-केदार की यात्रा करते थे। यह क्रम पुरा-काल की अनेक शताब्दियों तक चलता रहा। वर्तमान मोटर मार्ग सन् १९४० के बाद टिहरी नरेश महाराजा नरेन्द्र शाह के शासन काल में बना था। यह मोर्ग प्रारम्भ में देवप्रयाग तक और बाद में कीर्तिनगर तक बना। मुनि की रेती से कीर्ति नगर तक उस समय यह सारा मोटर मार्ग टिहरी रियासत की सीमा के अन्दर पड़ता था। जनहित में महाराजा नरेन्द्र शाह के शासन काल का यह कार्य सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है। इस मोटर मार्ग के बन जाने से देश विदेश के यात्रियों और पर्यटकों को काफी सुविधा मिली। अब यात्रियों की संख्या में भी वृद्धि होने लगी है।

कोलाहल से दूर

हरिद्वार से लक्ष्मण झूला तक के जनरवमय वातावरण में यात्रीगण उकता जाते हैं। मोटर, तांगे, साइकिल आदि वाहनों की कर्णभेदी ध्वनियों एवं विभिन्न प्रकार के भिखारियों के घेराव से वे अपने को कुछ तटस्थ रखने के लिए आतुर हो जाते हैं।

जैसे ही यात्री लक्ष्मण झूला से आगे बढ़ते हैं, मैदानों का कोलाहलमय वातावरण छूट जाता है और यात्रीगण शान्त-एकान्त पर्वतीय वातावरण में प्रवेश करते हैं। बस धीरे-धीरे देवप्रयाग की ओर रेंगने लगती है। कुछ ही क्षणों में बस की गति तेज हो जाती है। प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य विविध रूपों में अब दृष्टिगोचर होने लगते हैं। कितना सुहाना सफर होता है यह ! एक ओर पतित पावनी गंगा का फेनिल प्रवाह और दूसरी ओर सघन वन प्रान्त की हरीतिमा। नागिन सी बलखाती पर्वतीय सड़क कभी प्रकट और कभी भौगोलिक विचित्रता के कारण दृष्टिपथ से ओझल होती दिखाई देती है। मार्ग में प्रकृति के विविध रूप देखकर यात्री आनन्दित हो उठते हैं। कहीं गगनाभिमुख ऊंचे-ऊंचे साल वृक्ष, कहीं अठखेलियां करते

हुए जल प्रपात, कहीं मृग शावकों की उछल-कूद और कहीं पेड़ों पर झूलतं हुई वानर सेना यात्रापथ के पथिकों का मनोरंजन करती है। घुमावदा पहाड़ी मोटर सड़क पर वसों का आगे बढ़ता हुआ काफिला कितना कौतु हल पूर्ण दृश्य उपस्थित करता है? इसका वास्तविक अनुभव एक प्रत्यक्ष द्रष्टा को ही हो सकता है।

यात्रीगण ऐसे मनोहारी दृश्यों को कभी रुककर भी देखना चाहते है किन्तु उस समय वे स्वतन्त्र नहीं होते। वे दौड़ती हुई बस के अधीन रहते हैं। अतः वे इच्छा होते हुए भी किसी स्थान पर रुककर वहाँ की प्राकृतिक छटा का आनन्द देर तक नहीं ले सकते। जिन लोगों के पास निजी वाहन होते हैं उन्हें इस यात्रा का अधिक आनन्द प्राप्त होता है। वे जहाँ चाहें रुक सकते हैं। वैसे वास्तविक यात्रा का आनन्द तो पदयात्री ही लूटते हैं।

वशिष्ठ गुफा

ऋषिकेश से २२ किलोमीटर की दूरी पर गूलर नदी के पुल को लांघने से पूर्व दाहिनी ओर सड़क के नीचे गँगा के किनारे लता-पादपों के झुरमुट में वशिष्ठ गुफा है। कथा है कि इस स्थान पर मुनि वशिष्ठ ने तप किया था। जो भी हो। इस गुफा को नया जीवन दिया स्वामी पुरुषोत्तमा नन्द जी ने। दक्षिण भारतीय इस वीतरागी सन्त ने अनेक वर्षों तक इस गुफा में साधना की। गुफा पहाड़ के अन्दर काफी दूर तक है। स्वामी पुरुषोत्तमा नन्द के गो लोकवासी होने के उपरान्त उनके शिष्य गुफा के उत्तराधिकारी हैं। अब गुफा के निकट एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर वना है। गुफा के आस-पास का वातावरण तपोवन जैसा है।

ब्यासी

वशिष्ठ गुफा से लगभग १० किलोमीटर की यात्रा तय करने पर यात्रीगण कुदरत के विभिन्न नजारों को देखते हुए ब्यासी पहुँचते हैं। गगन चुम्बी साल वृक्षों के मध्य समतल व रमणीक स्थान है। छोटा-सा बाजार है। यात्रियों को चाय, फल और अन्य अल्पाहार की वस्तुएं यहां उपलब्ध होती हैं। अल्प विश्राम के पश्चात् बसें अगले प्रमुख पड़ाव अलकनन्दा और भागीरथी के संगम स्थल देवप्रयाग की ओर चल पड़ती हैं।

साकनीधार की ओर

अब मोटर मार्ग धीरे-धीरे ऊपर उठने लगता है। सघन वन पीछे छूटने लगते हैं। गंगा दूर खिसकती हुई दिखाई देती है। मोटर मार्ग क्रमशः ऊपर को ही उठता जाता है। यात्रीगण अपने को कुछ उन्मुक्त वातावरण में पाते हैं। दूर-दूर तक पर्वतों की उत्तुंग श्रेणियाँ दिखाई देने लगती हैं। पहाड़ी ढलानों पर पर्वतीय सीढ़ीनुमा खेत और छोटे-छोटे गाँव नए यात्रियों एवं पर्यटकों के लिए कौतुहल की सामग्री उपस्थित करते हैं। थोड़ी ही देर में बस साकनीदार पहुँच जाती है। ऋषिकेश—श्रीनगर मोटर मार्ग पर यह सबसे ऊँचा स्थल है। दूर-दूर के दृश्य यहाँ से दिखाई देते हैं। गंगा और नयार नदी के संगम—व्यासघाट का दृश्य यहाँ से बड़ा मनोरम लगता है। बहुत गहराई में गंगा माता एक नीली लकीर मात्र दिखाई देती हैं। साकनीधारी में सार्वजनिक निर्माण विभाग का विश्रमालय है किन्तु बसें आमतौर पर यहाँ रुकती नहीं है। यहाँ से देवप्रयाग के लिए उतराई शुरू होती है। बस चालक शीघ्र देवप्रयाग पहुँचने की होड़ लगाते हैं। यात्रीगण भी देवप्रयाग में अलकनन्दा और भागीरथी के पवित्र संगम को देखने के लिए अत्यधिक उत्सुक हो जाते हैं। यात्री देवप्रयाग की ओर उत्सुकता से बढ़ते हुए बछेली खाल को पार करते हैं कि उत्तरी क्षितिज पर भारत का भाल हिमालय दृष्टिगोचर होता है। कितना मोहक दृश्य होता है यह ! नील गगन की ओर उठता हुआ तुषारावृत पर्वत शृंग। लेकिन बस के अगले मोड़ लेते ही क्षण भर सफेद चादर ओढ़ने वाला पहाड़ ओझल हो जाता है। कुछ और आगे बढ़ने पर यात्रियों को देवप्रयाग के रघुनाथ मन्दिर की फरफराती पताका और हिरण्यमय कलश आकर्षित करने लगता है। यात्रीगण दृश्यावलोकन में ही खो जाते हैं कि बस देवप्रयाग बस अड्डे पर रुक जाती है।

••

यह मन्दिर किसने और कब बनाया, इसका कोई लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं है। अधिकतर लोगों की धारणा है कि अपनी उत्तराखंड यात्रा के समय आदि शंकराचार्य ने इसे बनाया था। मन्दिर में कुछ शिलालेख हैं जिनमें समय समय पर मन्दिर की मरम्मत करने वालों का विवरण है। कुछ लेखों में मन्दिर में घण्टा चढ़ाने वाले, कपाट बनाने वाले और जागीर चढ़ाने वालों के नाम हैं। इसका प्रमाण है कि मन्दिरों की मरम्मत दौलत-राव सिन्धिया ने की और इसकी छत्री की मरम्मत टिहरी नरेश महाराजा सुदर्शन शाह की रानी खनेटी ने की थी। (रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृष्ठ १२३)

केदारखंड अध्याय १४८ से १६३ तक देव प्रयाग की महिमा का विस्तार से वर्णन मिलता है। इसी केदारखंड में कथा है कि प्राचीनकाल में देव शर्मा नामक ब्राह्मण ने यहाँ तपस्या की थी। रावणवध के पश्चात् जब भगवान राम ने उत्तराखंड की यात्रा की तो यहाँ देव शर्मा की तपस्या से प्रसन्न होकर उसी के नाम से इस स्थान का नाम देव प्रयाग प्रसिद्ध कर दिया। बताया जाता है कि यहाँ ब्रह्मतीर्थ में भगवान ने और दशरथाचल पर्वत पर राजा दशरथ ने तप किया था।

रघुनाथ मन्दिर के आस-पास बदरीनाथ, कालभैरव, महादेव व हनुमान की भी मूर्तियाँ हैं। इस मन्दिर के पुजारी दक्षिण के महाराष्ट्री ब्राह्मण हैं जो भट्ट जाति के हैं। मन्दिर की पूजा व्यवस्था के लिए गढ़वाल नरेशों ने २५ गाँव अर्पित किए थे जिनके भू-राजस्व से इस मन्दिर का खर्च चलता था।

इसके अतिरिक्त यहाँ वाराहशिला, बेतालशिला, सूर्यतीर्थ और भरत जी का मन्दिर भी प्रसिद्ध है। संगम पर ब्रह्मकुण्ड और वशिष्ठकुण्ड हैं। वहाँ स्नान करने के बाद यात्री लोग वैतालशिला पर श्राद्ध करते हैं।

नक्षत्र वेधशाला व ग्रंथालय

देव प्रयाग में बस स्टैंड के ऊपर आचार्य चक्रधर जोशी की नक्षत्र वेध-शाला है। इस वेधशाला में नक्षत्रों का अध्ययन किया जाता है। यहाँ एक आधुनिक दूर वीक्षण यन्त्र भी है। आचार्य चक्रधर उत्तराखंड के प्रकाण्ड

ज्योतिर्विद थे। अनेक ग्रंथों की उन्होंने रचना की है। आचार्य जी का एक विशाल पुस्तकालय भी है, जिसमें ३००० तो केवल प्राचीन हस्त लिखित ग्रंथ हैं, जो तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष, कर्मकांड, व्याकरण, न्याय और मीमांसा आदि विषयों पर हैं। यहाँ सबसे प्राचीन पुस्तक तेलुगु भाषा में "उत्तर-कालामृतम्" है जो डेढ़ हजार वर्ष पुरानी ताड़ पत्रों पर है। इस पुस्तकालय में वल्लभाचार्य के हस्ताक्षरों वाला पत्र सुरक्षित है जो उनके बदरीनाथ जाने के समय सम्वत् १५६८ वि० का है।

देव प्रयाग नगर अब दिन प्रतिदिन प्रगति कर रहा है। यहाँ बैंक डाक, तार, टेलीफोन और चिकित्सालय की पूरी सुविधा है। राजकीय इण्टर कालेज बालकों तथा बालिकाओं के लिए पृथक-पृथक हैं। १९७६ में यहाँ एक डिग्री कालेज की भी स्थापना की गई है।

आवास के लिए यहाँ पर एक सुन्दर पर्यटक विश्रामगृह है। अन्य धर्मशालाएँ भी हैं। देव प्रयाग से एक पैदल मार्ग भागीरथी के किनारे किनारे टिहरी को चला गया है। पुराने समय में गंगोत्तरी-यमनोत्तरी के यात्री इसी मार्ग से जाते थे। यहाँ से एक मोटर मार्ग अंजनीसैण होकर टिहरी चला गया है। इस मार्ग पर चन्द्रवदनी, नैखरी व अंजनीसैण सुन्दर पर्यटन स्थल हैं। ८००० फीट की ऊँचाई पर भगवती चन्द्रवदनी का मंदिर दर्शनीय है। केरल निवासी स्वामी मनमथन ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कर बहुत सुन्दर बनवा दिया है। इसके पाद प्रदेश में प्रसिद्ध भुवनेश्वरी महिला आश्रम है। जिसकी स्थापना स्वामी मन्मथन ने की है।

देव प्रयाग से कीर्तिनगर

देव प्रयाग से ३१ किलोमीटर की दूरी पर एक छोटा-सा नगर अलकनन्दा के दाहिने तट पर अवस्थित है, जिसे कीर्तिनगर कहते हैं। देव प्रयाग से कीर्तिनगर तक का सफर अलकनन्दा के किनारे किनारे है। रास्ते में मुल्यागांव, बगवान, लछमोली और मलेथा हैं। लछमोली में प्राचीन काल के कुछ मन्दिर हैं जो पुरातात्विक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण हैं। कीर्तिनगर से ६ किलोमीटर पीछे मलेथा में एक ऐतिहासिक सुरंग है जो सत्रहवीं शताब्दी में गढ़वाल नरेश महीपतशाह के सेनापति एवं आमात्य माधोसिंह

भण्डारी ने बनाई थी। इस सुरंग के द्वारा पहाड़ की दूसरी ओर बह
नदी का जल इस ओर लाया गया, जिससे मलेथा की सूखी धरती श
श्यामला हो गई। कहते हैं इस सुरंग को बनाते समय माधोसिंह भंडारी
अपने पुत्र का बलिदान करना पड़ा था। सुरंग के ऊपर सन् १९८५ में व
माधोसिंह भण्डारी की मूर्ति स्थापित की गई है। मलेथा से एक मोटर म
टिहरी-उत्तरकाशी की ओर गया है। जो पर्वतों की रानी मसूरी से
जुड़ा है।

कीर्तिनगर

कीर्तिनगर में प्रवेश करने से पूर्व मोटर मार्ग के नीचे अलकनन्दा
तट पर ढुंडेश्वर महादेव का अति प्राचीन मन्दिर है। केदारखण्ड में इ
ढुंडिप्रयाग नाम से सम्बोधित किया गया है। यथा—

गंगाया उत्तरे तीरे शर विक्षेप मात्रके।
ढुंडिप्रयाग तीर्थं तु वर्तते शिवदायकं॥ (१८२-१३)

कीर्तिनगर को महाराजा कीर्तिशाह ने सन् १८९६ ई० में उन गृहहीन
लोगों के लिए बसाया था जो १८९४ की विरही की बाढ़ में बेघरबार हो
गए थे, इसका पुराना नाम बिडोलीसैण था।

कीर्तिनगर में एक सुन्दर बाजार, डाक-तार घर, टेलीफोन, थाना,
परगनाधिकारी का न्यायालय, राजकीय चिकित्सालय, विकासखंड का
मुख्यालय एवं सार्वजनिक निर्माण विभाग का आधुनिक विश्रामगृह है।
यहाँ से एक मोटर मार्ग बडियारगढ़ और सिल्काखाल की ओर गया है।
इसी मोटर मार्ग पर यहाँ से ५ किलोमीटर की दूरी पर किलकिलेश्वर
महादेव का प्राचीन मन्दिर है।

कीर्तिनगर में अलकनन्दा नदी पर एक दर्शनीय झूलापुल है, जो पौड़ी
जनपद और टिहरी जनपद को मोटर मार्ग से जोड़ता है। इसी कीर्तिनगर
में सन् १९४८ की ११ जनवरी को टिहरी गढ़वाल के दो नौजवानों—
नागेन्द्र सकलानी (२८ वर्ष) और मोलूराम (२१ वर्ष) ने सामन्तशाही के
विरुद्ध आवाज उठाने पर सामन्ती गोलियों से शहीदी प्राप्त की थी। अब

कीर्तिनगर के पश्चिमी सिरे पर एक नया मोटर पुल भी सीमा सड़क संगठन ने बनाया है।

कीर्तिनगर से पुल पार करने पर उत्फालक मुनि का आश्रम आता है जो अलकनन्दा के तट पर अब उजाड़ पड़ा है। इसके निकट एक गाँव बसा है जिसे उफल्डा कहते हैं। कुछ ही देर में यात्री गढ़वाल की प्राचीन राजधानी श्रीनगर में प्रवेश करते हैं। बदरी-केदार मार्ग पर श्रीनगर इस घाटी का प्रमुख पड़ाव है। कीर्तिनगर से यह ५ किलोमीटर की दूरी पर है। हरिद्वार-ऋषिकेश से श्रीनगर तक की यात्रा वाहन द्वारा लगभग ३ घन्टे में तय हो जाती है।

८

श्रीनगर

ऋषिकेश से बस द्वारा श्रीनगर १०५ किलोमीटर है। पूरा मार्ग
हरे यातायात के लिए सक्षम है। जिन यात्रियों के पास सीधे
बदरीनाथ का टिकिट होता है उन्हें श्रीनगर में अधिक समय
होता। बसें कुछ ही देर यहाँ रुकती हैं। जो बसें दोपहर के
श से चलती हैं, उनके यात्रियों को ही यहाँ रात्रि निवास का
लता है। वे यहाँ के तीर्थ स्थान एवं दर्शनीय स्थल देख सकते
ों को अपनी यात्रा का कार्यक्रम इस प्रकार बनाना चाहिए कि
की प्राचीन राजधानी श्रीनगर देखने का मौका मिल सके। क्य
प्राचीन मठ-मन्दिर न केवल धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं अ
एवं पुरातत्त्व की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं।

श्रीनगर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ढ़वाल श्रीनगर की कहानी बहुत कुछ भारत के दिल दिल्ली
से मिलती-जुलती है। जिस प्रकार दिल्ली का हर पत्थर उ
की कथा अपने में संजोये है उसी प्रकार श्रीनगर का हर च
प्राचीन इतिहास की कहानी कहता है। यहाँ के गिरि-गह्वर
सर-सरिताएँ एवं देव मूर्तियाँ यहाँ के पुरावृत पर प्रकाश डाल
ली की भाँति यह नगर अनेक बार बसा और अनेक बार उज

राणिक पुरावृत में इसके अनेक प्रसंग बिखरे पड़े हैं। इनकी व्य
रना और इनके काल क्रम को निश्चित करना इतिहास एवं पुर
शोध कर्ताओं का काम है। स्कन्द पुराण के केदारखण्ड में इ
विशद वर्णन है। केदारखण्ड के अनुसार इसे 'श्रीक्षेत्र' कहा ग
जी को यह स्थान अत्यन्त प्रिय था, ऐसा उल्लेख किया गया है।

"हिमालय के दक्षिण में जहाँ परम पावनी अलकनन्दा नाम की गंगा
हैं, वहीं सांसारिक भय मिटाने वाला एक श्रेष्ठ क्षेत्र है। हे मुनि
गवो ! यहाँ अनेक प्रकार के तीर्थ भी विद्यमान हैं एवं श्री महादेवी जी
। यहाँ सम्पूर्णतया बिराजमान हैं। इसी कारण बुद्धिमान शिवपुत्र ने
सका विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। यहाँ महापवित्र श्रीक्षेत्र महादेवी जी
निवास स्थल है। यहाँ अनेक शिवलिंग और बहुत सी श्रेष्ठ नदियाँ हैं।
महा मतिमान ! महादेव जी भी वहाँ अनेक रूपों में विद्यमान हैं।[1]

पुराणवेता सूतजी शौनकादि ऋषियों से आगे कहते हैं—'हे
निश्वरो ! पाण्डुनन्दन अर्जुन ने भी यहाँ ही तप किया था। तब उन्हें
हादेव जी ने पाशुपत अस्त्र प्रदान किया था। महाराजा सत्यसंध ने भी
हीं कोलासुर का वध किया था। हे महाभाग ! इस क्षेत्र की महिमा सुन
र ब्रह्म कुमार नारद जी को बड़ा हर्ष हुआ।"[2]

इन पौराणिक कथाओं में कितनी सत्यता है, यह खोज का विषय है।
हा जाता है कि महाराजा सत्यसंध ने श्री विद्या की उपासना करके सिद्धि
ाप्त की थी और कोलासुर नामक उक्त किरात का वध करके यज्ञानुष्ठान
ारा वेदोक्त विधि से इस नगर को बसाया था। श्री विद्या के प्रभाव से

---

1. हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे क्षेत्र राजो भयापह।
यत्रास्त्यलकनन्दाख्या गंगा परमपावनी॥
तथा नाना विधानीह तीर्थानी मुनि पुंगवाः।
यत्र श्रीश्च महादेवी समग्रा वर्तते पुरा॥
कथितं विस्तरात्तेन शिवरूपेण धीमता।
नाम्ना श्रीक्षेत्रकं पुण्यं महादेव्या निवास भूः॥
नाना रूपेश्वरस्तत्र तथा सन्ति सरिद्वरा।
लिंगानी बहुरूपाणि तत्र सैंति महामते॥

—केदारखण्ड अ० १७६।४-७

2. यत्रार्जुन पाण्डुपुत्र स्तपस्तेपे मुनीश्वराः।
शस्त्र पाशुपतं नाम प्राप्त देवान्महेश्वरात्॥
सत्यसंधेन वै राजा निहतः कोलरूप धृक्।
इदं क्षेत्र महाभागाः श्रुत्वा ब्रह्म सुतो मुनिः।

—केदारखंड अ० १७६।१२ व १५

जय पाकर बसाये गए इस नगर का नाम श्रीपुर हुआ जो काला
श्रीनगर के रूप में परिवर्तित हो गया।

महाभारत काल में यह नगर राजा सुबाहु की राजधानी होना
जाता है। वनपर्व में पाण्डवों के गंधमादन (हिमालय) की ओर जा
वर्णन आया है, मार्ग में वे किरात, कोल, भील, तंगण और कुलिंद
जातियों के अधिपति राजा सुबाहु के अतिथि रहे थे। कहा जाता
यही श्रीपुर सुबाहु की राजधानी था। वनपर्व के अध्याय १४० में कुलि
धिपति सुबाहु के प्रभूत वैभव हाथी घोड़ों और उसके द्वारा पाण्डवं
प्रीतिपूर्वत सत्कार करने की कथा विस्तार से कही गई है।[1]

इसी पर्व के अध्याय ३७ में वर्णन है कि इन्द्रकली पर्वत पर अर्जु
पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने के लिए तप किया था।[2]

इन्द्रकील पर्वत जो श्रीनगर के सामने है, पर अर्जुन द्वारा तप
और शिवजी से पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का प्रसंग न केवल महाभारत
अपितु ठीक इसी प्रकार शिवपुराण की शतरुद्र संहिता में भी वर्णित है।

1. एवं संभाषमाणास्ते सुवाहु विषयं महत्,
   ददृशुर्मुदिता राजन प्रभूत गज वाजिमत्।
   किरात तंगणा कीर्ण पुलिन्द शत संकुलम्॥
   हिमवत्य मरैर्जुष्टं बह्वाश्चर्य समाकुलम्।
   सुवाहुश्चापितान दृष्ट्वा पूजया प्रत्यपृह्णत,
   विषयान्ते कुलिन्दानामीश्वरः प्रीतिपूर्वकम्,
   ततस्ते पूजितास्तेन सर्व एवं सुखोषिता।

   —वन पर्व अ० १४०।२४-२६

2. इन्द्रकीलं समासाद्य ततो तिष्टद धनंजय।
   अन्तरिक्षेऽ लिशु श्राव तिष्टेति स वचस्तदा॥

   —वन पर्व अध्याय ३७।१३

3. इतो गच्छाधुना पार्थ इन्द्रकीलेसुशोभने।
   जाह्नव्याश्च समीपेवै स्थित्वा सम्यक् तपःकुरु॥

   —शतरुद्र संहिता ३७।६५

   अस्त्र पाशुपातं स्वीयन्दुर्जयं सर्वदाखिलै।
   ददो तस्मै महेशानो वचनश्चेदमब्रवीत॥

   —उपरोक्त अ० ४१ श्लोक ५५

तात्पर्य यह है कि पुराणकाल और महाभारत काल में यह अस्तित्व में आ चुका था। चाहे तब इसका जो भी नाम रहा हो। पुराण का केदारखण्ड यदि विश्वसनीय है तो श्रीनगर के पौ अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता।

यह भी कथा है कि अपने दिग्विजय अभियान में आदि शंकर भी विषूचिका रोग से ग्रसित होकर यहाँ रुके थे। शक्ति के अस्तित्व अवहेलना करने पर उन्हें यह रोग हुआ था। अपराध क्षमा के लिए यहीं एक स्त्रोत की भी रचना की थी। (भैरवदत्त शास्त्री—पुण श्रीनगर)

अनेक परिवर्तनों से गुजरता हुआ यह नगर १५०० ई० से १८० तक पंवार वंशीय राजाओं की राजधानी रहा। कनक वंश के ३७वें अजयपाल ने अपनी पुरानी राजधानी चांदपुर गढ़ी से यहाँ आकर नगर को नये सिरे से बसाया था।

१८०३ से १८१५ तक यह गोर्खाओं की राजधानी रहा। गो १८०३ में गढ़वाल पर आक्रमण कर इसे विजित कर दिया था। सि की संधि (४ मार्च १८१६ ई०) के बाद आधे गढ़वाल पर अंग्रेजी आधि होने से १८४० ई० तक ब्रिटिश गढ़वाल का मुख्यालय रहा। १८९४ में गौनाताल के टूटने से जो भयंकर बाढ़ अलकनन्दा में आई थी, प्राचीन श्रीनगर, कुछ मन्दिरों को छोड़कर अपने सम्पूर्ण वैभव के स नष्ट हो गया था। जहाँ अब राजकीय पोलिटेकनिक संस्थान है यही प्रा श्रीनगर और अजयपाल का राज प्रासाद था। वर्तमान श्रीनगर १८ ई० के बाद डिप्टी कमीश्नर ए० के० पौ के मास्टर प्लान के अनुर बसाया गया।

आज श्रीनगर अपने पुराने वैभव को फिर से प्राप्त करने में अग्र है। जनान्दोलन के फलस्वरूप सन् १९७३ ई० में यहाँ गढ़वाल विश

---

1. अजयपालो नृपतिः स आसीत, चन्द्रान्वये चन्द्र समान कीर्तिः।
   निर्माण्य यः श्रीनगराभिधान, सरित्तटस्थां निज राजधानीम्॥
   —रामायण प्रदीप, १।

मुख्य द्वार पर जो शिलालेख है, उससे ज्ञात होता है कि इस मन्दि का निर्माण केशोराय नाम के किसी व्यक्ति ने सम्वत १६८२ वि० में किय था। यह केशोराय कौन था, इस सम्बन्ध में अभी खोज करनी शेष है इतिहास वेता कँ० शूरवीर सिंह पंवार के अनुसार रामचन्द्रिका के प्रणेत कवि केशव ही यह केशोराय थे। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिन्द साहित्य के इतिहास में कवि केशव की जो निधन तिथि दी है उसका उक्त शिलालेख से मेल नही बैठता, अत: निश्चित रूप कुछ कहा नहीं जा सकता कि ये केशोराय कौन थे। १८९४ ई० की बाढ़ में मन्दिर जल प्लावित हो गया था किन्तु मजबूत आधारशिला होने के कारण मन्दिर ध्वस्त नहीं हुआ। सन् १९७३ ई० में एस० एस० बी० वाहिनी के सेना नायक श्री गदाधर नारायण सिन्हा के प्रयत्न से वाहिनी के जवानों ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। उसी वर्ष १३ अप्रैल को मन्दिर में लक्ष्मी नारायण की मूर्तियाँ स्थापित कर उनकी प्राण प्रतिष्टा की गई और पूजा विधान प्रारम्भ हुआ। यहाँ से अलकनन्दा का दृश्य बड़ा ही भव्य लगता है।

कंसमर्दिनी का मन्दिर

वर्तमान श्रीनगर में रामलीला मैदान से होकर जो मार्ग नदी तट को जाता है। उसी मार्ग पर दाहिनी ओर नगर के उत्तर में यह प्राचीन मन्दिर है। आरम्भ में यह मन्दिर छोटा था किन्तु गोर्खा शासन में मन्दिर का जीर्णोद्धार किया गया। गोर्खाओं का एक ऐतिहासिक शिलालेख मन्दिर की पूर्वी दीवाल पर है जो सम्वत १८६६ वि० का है। मन्दिर के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारिक कथाएँ प्रचलित हैं। पुन: (१९८० ई० में) मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया गया है जिसमें सेठ अमरलाल समीर कुमार का विशेष आर्थिक सहयोग सत्संग भवन बनाने हेतु रहा है।

सत्यनारायण मन्दिर

यह मन्दिर गोला बाजार में मुनि जी की धर्मशाला के अन्दर प्रवेश करते ही प्रांगण में दिखाई देता है। मन्दिर छोटा है किन्तु बहुत सुन्दर है। यह मन्दिर लाला छज्जूमल दास जी ने १९७० वि० में बनवाया था। मन्दिर के सामने एक छोटे से मन्दिर के अन्दर गरुड़जी की दुर्लभ मूर्ति है।

जैन मन्दिर

श्रीनगर के मन्दिरों में ऋषभ देव दिगम्बर जैन मन्दिर भी वास्तुकला का अति सुन्दर नमूना है। इस मन्दिर का निर्माण ला० प्रतापसिंह व ला० मनोहर लाल के संयुक्त प्रयत्न से सन् १९२५ ई० में पूर्ण हुआ। १९७० ई० में यहाँ के प्रकाण्ड जैन मुनि श्री विद्यानन्द जी पधारे थे। उन्होंने जैन समाज के सहयोग से मन्दिर में कुछ जीर्णोद्धार का कार्य कराया। इस मन्दिर का प्रधान शिल्पी श्रीनगर का धन्तु मिस्त्री था।

श्री नागेश्वर शिव

नये श्रीनगर में ब्राह्मण मोहल्ले के पूर्व में नागेश्वर गली में श्री नागेश्वर शिव का मन्दिर है। श्रीनगर के संस्कृत विद्वान श्री भैरवदत्त शास्त्री ने नागेश्वर शिव को द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से आठवाँ माना है[1] जो भी हो यह शिवलिंग अति प्राचीन माना जाता है।

गुरु गोरखनाथ का मन्दिर

नागेश्वर शिव के दक्षिण में कुछ ही दूर गुरु गोरखनाथ जी का छोटा किन्तु कलात्मक मन्दिर है। मन्दिर के अन्दर गुरु गोरखनाथ की पद्मासन प्रतिमा है। इस मन्दिर में नाथ सम्प्रदाय के लोगों द्वारा पूजा होती है।

गैरोलामठ

श्री नागेश्वर शिव के पास ही पण्डित आत्माराम गैरोला व पण्डित सदानन्द गैरोला का बनवाया हुआ एक विष्णु मन्दिर है जिसे गैरोला मठ कहते हैं। मन्दिर कटवां पत्थर का उत्तराखण्ड शैली पर बना है। इस मन्दिर का निर्माण सन् १९०६ में हुआ था। इस मन्दिर के प्रधान शिल्पी श्रीनगर के कन्हैया मिस्त्री बताए जाते हैं।

कल्याणेश्वर मन्दिर

श्री कल्याणेश्वर मन्दिर श्रीनगर के गोला बाजार में स्थित है। मन्दिर आधुनिक है और श्रीनगर के नये मन्दिरों में सबसे भव्य व दर्शनीय है। मन्दिर में शिव पार्वती की आकर्षक मूर्तियाँ हैं। देवी देवताओं के

1. पुण्यस्थल श्रीनगर पृष्ठ ५२।

सुन्दर चित्र दीवारों पर अंकित हैं। इस मन्दिर में सबसे आकर्षक विर
भगवान की मूर्ति है जिसे देखने के लिए दूर-दूर के गाँवों से नर-नारी य
आते हैं। मन्दिर में एक भव्य सत्संग कक्ष भी है जिसकी सजावट व मूर्ति
दर्शनीय हैं। इस मन्दिर को यहाँ के धनाढ्य श्री अमर लाल समीर कुमा
ने बनवाया है।

बदरीनाथमठ

अलकनन्दा नदी के बायें किनारे पर एक और सुन्दर पुराना मन्दिर है
जो बड़ा ही भव्य है। इसके अन्दर विष्णु भगवान की बहुत ही आकर्षक
मूर्ति है। इस मन्दिर को तिवाड़ियों का मन्दिर भी कहते हैं। भव्य होने पर
भी मन्दिर सुपूजित नहीं है।

गोरखनाथ की गुफा

वर्तमान श्रीनगर से लगभग २ किलोमीटर दक्षिण की ओर भक्त्याना
गाँव के निकट गुरु गोरखनाथ की अत्यन्त प्राचीन गुफा है। जनश्रुति है कि
इस गुफा में गोरखनाथ जी ने तपस्या की थी। गुफा के अन्दर गोरखनाथ
की मूर्ति है। इस गुफा के बाहर प्राचीन शिलालेख है।

किलकिलेश्वर महादेव

श्रीनगर के उत्तर में अलकनन्दा के उस पार नदी के दाहिने तट पर
एक चट्टान के ऊपर किलकेलेश्वर महादेव का अति प्राचीन मन्दिर है। यह
प्राचीन मन्दिर श्रृंगीवाड़ा के निकट इन्द्रकील पर्वत की अधित्यका में है।
केदारखंड में वर्णन है कि किरात और अर्जुन के युद्ध के समय जिस स्थान
पर किरातों ने किलकिल शब्द किया था वहीं शिवलिंग स्थापित कर
अर्जुन ने पूजा की थी। वही किलकेलेश्वर महादेव के नाम से आज तक
प्रसिद्ध है।[1] महाकवि भारवि द्वारा रचित 'किरातार्जुन' से भी यह बात
पुष्ट होती है।

---

1. पुनः पुनः प्रणामाह्नि चक्रे तस्मै महामतिः
ततः किल किला शब्द किरातानां बभूव ह
इन्द्रकीलाधित्य काया मेकल समवस्थितः
अत्रापि शिव लिंगवै किलकिलेश्वरतांगतम्
यस्मात् किल किला शब्द चक्रे यत्र सदा शिवः
आजगाम किरातेशो नाना भिल्ल समन्वितः

—केदारखण्ड अ० १८१।६९-७१

अलकेश्वर महादेव

सन् १९८० ई० में अलकनन्दा के बायें किनारे पर राजकीय पौधालय के निकट जन सहयोग से यह मन्दिर बना। नदी तट पर यह स्थान बड़ा रमणीक है।

अष्टावक्र

श्रीनगर के दक्षिण में खोला गाँव के ऊपर एक पर्वत शिखर पर अष्टावक्र का मन्दिर है। श्रीनगर से मन्दिर तक जाने के लिए पैदल मार्ग से ३ किलोमीटर की सीधी चढ़ाई है। अब खोला गाँव तक मोटर से भी जा सकते हैं। स्थान रमणीक है। श्रीनगर का दृश्य यहाँ से अति सुन्दर लगता है। मन्दिर के निकट ही एक छोटी-सी धर्मशाला भी है।

श्रीनगर में अन्य कई छोटे-मोटे मन्दिर हैं जो या तो उजाड़ हो चुके हैं या दुर्व्यवस्था के शिकार हैं।

श्रीनगर में आवासीय व्यवस्था

यात्रियों व पर्यटकों के लिए श्रीनगर में रात्रि निवास की काफी सुविधा है। वर्तमान समय में यहाँ निम्न आवास स्थल विद्यमान हैं—

१. पर्यटक विश्राम गृह
२. काली कमली धर्मशाला (पुरानी)
३. काली कमली धर्मशाला (नयी)
४. कल्याणेश्वर धर्मशाला
५. स्वर्गाश्रम धर्मशाला
६. डालमियां धर्मशाला
७. सार्वजनिक निर्माण विभाग का डाक बंगला
८. नगर पालिका विश्राम गृह
९. गुरुद्वारा
१०. मेनका होटल
११. देवलोक होटल

इसके अतिरिक्त कुछ होटलों में भी यात्रियों को ठहराने की व्यवस्था है। गढ़वाल विकास निगम के विश्रामगृह का निकट भविष्य में काफी

विस्तार होने की योजना है। तब आवास की और भी सुविधा सुलभ हो जाएगी। ग्रीष्मकाल में तो यात्री गण बस स्टैंड के निकट खुले मैदान में भी रात काट लेते हैं।

श्रीनगर में खाने-पीने की भी अच्छी व्यवस्था है। लगभग सभी किस्म के यात्रियों को निरामिष या सामिष भोजन यहाँ उपलब्ध हो जाता है।

श्रीनगर गढ़वाल से प्रमुख स्थानों की दूरी

स्थान	किलोमीटर	स्थान	किलोमीटर
श्रीनगर	०	बदरीनाथ	१६५
केदारनाथ	१२३	जोशीमठ	१४६
गोपेश्वर	१०७	अल्मोड़ा	२३२
नैनीताल	२६०	ग्वालदम	१३५
हेमकुण्ड	१८३	फूलों की घाटी	१८४
रूपकुण्ड	१५७	रानीखेत	२०५
गंगोत्तरी	२३२	उत्तरकाशी	१३२
यमनोत्तरी	२२१	ऋषिकेश	१०५
हरिद्वार	१२६	देहरादून	१४७
मंसूरी (देहरादून होकर)	१८०	दिल्ली	३३०

श्रीनगर से रुद्रप्रयाग

श्रीनगर से रुद्रप्रयाग ३४ किलोमीटर है। अलनन्दा के किनारे-किनारे मोटर मार्ग आगे बढ़ता है। ज्योंही बस रुद्रप्रयाग की ओर रेंगने लगती है, अलकनन्दा घाटी के अनेक मनोहारी दृश्य दृष्टि को उलझा देते हैं। घाटी व पहाड़ियों पर आबाद छोटे-छोटे गाँव, अलकनन्दा के उस पार की ऊँची-ऊँची पहाड़ियों के वक्ष को चीर कर बनाई गई नागिन-सी बल-खाती सिल्का एवं बडियार मोटर मार्ग और चीड़ के शंखमुखी वृक्षों की पांतें दर्शकों को बरबस आकृष्ट करती हैं। श्रीनगर ३ किलोमीटर की दूरी पर अलकनन्दा सेतु जिसकी लम्बाई ५०४ फीट है और जो भारत का सबसे लम्बा झूलापुल है, बड़ा ही चित्ताकर्षक है। उसके आगे ५ किलो-मीटर की दूरी पर शुक्रताल है। कथा है कि पूर्वकाल में शुक्राचार्य ने यहां

तप करके महाविद्या प्राप्त की थी। इससे कुछ आगे सड़क के नीचे फरासू गाँव है। इस गाँव के नीचे अलकनन्दा के किनारे परशुराम कुण्ड है। जहाँ परशुराम ने तप किया था। बस यात्रियों को इन स्थानों को देखने का अवसर नहीं मिलता। यात्रा का वास्तविक आनन्द तो पद यात्री ही लेते हैं।

श्रीनगर से १५ किलोमीटर पर कलियासौड़ नामक स्थान है। इससे नीचे एक किलोमीटर पैदल चलकर धारी देवी सिद्धपीठ है। वास्तव में यह कालीपीठ है। यहाँ देवी का कोई भव्य मन्दिर नहीं है। एक चबूतरे पर काली की पाषाण प्रतिमा है। किवदन्ती है कि यह प्रस्तर प्रतिमा प्रातः मध्याह्न और सायं—बाला, युवती व वृद्धा का रूप धारण करती है। इसके आस-पास कुछ गुफाएँ हैं, जहाँ साधू-सन्त तपस्या करते हैं। सन् १६७६ में इन पंक्तियों के लेखक ने एक गुजराती साधु को एक गुफा के अन्दर तपस्या में लीन देखा था।

कलियासौंड में बस अधिक देर नहीं रुकती। इसके बाद तो बस सीधे रुद्रप्रयाग जाकर ही रुकती है। श्रीनगर से रुद्रप्रयाग तक की यात्रा लगभग एक घण्टे में तय होती है। कलिया सौड़ के बाद मार्ग में खांकरा, नरकोटा व गुलाबराय चट्टियां मिलती हैं।

रुद्रप्रयाग

मुनीश्वर महाभाग हन्यत्पृच्छामि विस्तरात्
महादेवात्कथं रागान्प्राप्तवा नारदो मुनिः
रुद्रप्रयागे तन्वंगि सर्वतीर्थोत्तमे शुभे ।
महान्तो यत्र नागाश्च शेवाद्यास्तप आचरन ॥

—केदारखंड-बदरीमठ

समुद्र की सतह से २००० फीट की उँचाई पर चारों ओर से ऊँचे पर्वत शिखरों से घिरा रुद्रप्रयाग मन्दाकिनी और अलकनन्दा के संगम पर बसा है। पौड़ी, चमोली और टिहरी जनपदों की सीमाएँ यहाँ पर मिलती हैं। तीनों जनपदों के निकटवर्ती ग्रामीण यहां अपना उत्पादन बेच जाते हैं और अपनी आवश्यकता की वस्तुओं को यहां से खरीद ले जाते हैं।

पहाड़ों की गोद में बसा यह छोटा क़स्बा बदरी-केदार का प्रवेश द्वार है। यहां से एक मार्ग अलकनन्दा के इस पार होता हुआ सीधे बदरीनाथ धाम को गया है और दूसरा मार्ग अलकनन्दा के पुल को पार कर मन्दाकिनी के किनारे-किनारे केदारनाथ को चला गया है। धार्मिक आस्था वाले यात्री पहले केदारनाथ की यात्रा करते हैं।

संगम

रुद्रप्रयाग में सबसे सुन्दर दृश्य संगम का है, जहाँ पर बदरीनाथ से आने वाली अलकनन्दा और केदारनाथ से आने वाली मन्दाकिनी मिलती है। मन्दाकिनी का जल कालापन लिए रहता है। इसी कारण मन्दाकिनी का एक नाम काली नदी भी है। इसके विपरीत अलकनन्दा का जल सफेद सा है। सम्भवतः अलकनन्दा का भी एक अन्य नाम धौली (धवली) इसी कारण हुआ। संगम तक जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। यहाँ स्नान करने का बड़ा महात्म्य है। पंच प्रयागों में यह चौथा प्रयाग है। संगम का दृश्य बड़ा चित्ताकर्षक है।

रुद्रेश्वर महादेव

संगम के ऊपर रुद्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। केदारखंड के अनुसार देवर्षि नारद ने संगीत विद्या की कामना से इस स्थान पर तप किया था। कहते हैं नारद जी की तपस्या से प्रसन्न होकर शिवजी ने उन्हें संगीत शास्त्र का पूरा भेद बता दिया था। साथ ही उन्हें एक पवित्र वीणा भी प्रदान की थी, जिसे लिए हुए तीनों लोकों में घूमा करते थे।

सुरंग

काली कमली धर्मशाला के निकट एक सुरंग देखने लायक है। संस्कृत पाठशाला के नीचे पहाड़ खोदकर मोटरीय यातायात के लिए यह सुरंग गढ़वाल के प्रसिद्ध जूनियर इंजीनियर श्री फतेहसिंह कंडारी के सुझाव पर बनाई गई है। यदि यह सुरंग न बनती तो मोटर मार्ग की लम्बाई काफी बढ़ जाती। यह केदारनाथ जाने वाले मार्ग पर है। इसके निकट ही मन्दाकिनी नदी पर एक झूला पुल है जिसे पार कर टिहरी जनपद की भरदार पट्टी के लिए मार्ग जाता है।

कोटेश्वर महादेव

रुद्रप्रयाग से ४ किलोमीटर की दूरी पर कोटेश्वर महादेव का स्थान है। यह पवित्र स्थान अलकनन्दा के दाहिने तट पर एक चट्टान पर है। गुफा के अन्दर एक मूर्ति है जिस पर निरन्तर स्वयं जल टपकता रहता है। कोटेश्वर से डेढ़ किलोमीटर पर उमरानारायण का मन्दिर है। इन दोनों स्थानों पर यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ हैं।

रुद्रप्रयाग में आवास व्यवस्था

रुद्रप्रयाग में यात्रियों एवं पर्यटकों को आवास सम्बन्धी कोई कठिनाई नहीं है। प्रवेश होते ही बाजार के प्रारम्भ में श्री बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति का विश्राम गृह है। पुल पार संगम के निकट काली कमली की धर्मशाला है। इसी संस्था ने पुल के इस पार एक आधुनिक सुविधाओं वाली नई धर्मशाला भी बना ली है। सार्वजनिक निर्माण विभाग का विश्राम भवन भी है। यहाँ का बाजार भी समृद्ध है। दैनिक उपयोग की सभी वस्तुएँ यहाँ उपलब्ध हो जाती हैं। समाचार-पत्र भी यहाँ प्राप्त हो जाते हैं। डाक, तार टेलीफोन व बैंक की सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। काली कमली धर्मशाला के निकट कई खाने के होटल मौजूद हैं। बाजार में टूरिस्ट होटल में भोजन व आवास की सुविधा है। पुलिस चौकी भी यहाँ मौजूद है। यात्राकाल में पुलिस की विशेष व्यवस्था रहती है। चिकित्सालय की सुविधा भी यहाँ उपलब्ध है। बाजार में प्राइवेट डाक्टर भी उपलब्ध रहते हैं।

रुद्रप्रयाग द्रुतगति से विकसित हो रहा है। राजकीय इण्टर कालेज, भूकम्प वेधशाला व डी० जी० बी० आर० का कार्यालय भी यहाँ है। व्यापार की दृष्टि से यह छोटा नगर काफी उन्नति पर है।

६

केदारनाथ के पथ पर

धर्मशास्त्र के अनुसार यात्रा वामावर्त हुआ करती है। अतः पाठकों कं पहले रुद्रप्रयाग से केदारनाथ की ओर लिए चलते हैं। यात्री भी बहुध पहले केदारनाथ जाना ही पसन्द करते हैं। रुद्रप्रयाग से केदारनाथ केवल ८६ किलोमीटर है। रुद्रप्रयाग से बस जब केदारनाथ के मार्ग पर अभिमुख होकर आगे को सरकने लगती है तो यात्रीगण अपने को एक संकीर्ण घाटी में पाते हैं। यह मन्दाकिनी घाटी है। मोटर मार्ग श्यामवर्णी पतित पावनी मन्दाकिनी के किनारे-किनारे आगे बढ़ता है। यात्री नदी और उसके किनारे छोटे-छोटे सीढ़ीनुमा खेतों एवं उठती हुई ऊँची पर्वत श्रेणियों को निरख कर आनन्दित होता है। प्रकृति प्रेमियों को कुदरत की इस खूबसूरत दुनिया में खो जाने का मन करता है। ज्यों-ज्यों आगे को बढ़ते हैं, मार्ग भी ऊँचाई पकड़ने लगता है। कुछ ही देर में बस ८ किलोमीटर दूर तिलवाड़ा जाकर रुकती है।

तिलवाड़ा

तिलवाड़ा सिन्धु तट से ३००० फीट की ऊँचाई पर है। छोटा-सा बाजार, पुलिस चौकी, डाकखाना और प्राइवेट डाक्टर का क्लीनिक है। यहाँ से मन्दाकिनी को पार कर एक मोटर मार्ग मयाली-चिरबिटिया-घनसाली होते हुए (९९ कि० मी०) टिहरी को चला जाता है। गंगोत्तरी-यमनोत्तरी से बदरी-केदार की ओर जाने वाले यात्री इसी मार्ग से टिहरी होकर इधर आते हैं। यहाँ से एक मोटर मार्ग अब बडियार गढ़ की ओर जा रहा है, जो सौंराखाल होकर बडियार मिलेगा।

तिलवाड़ा से एक पैदल मार्ग टिहरी जनपद के जाखाल नामक स्था को होता हुआ सिद्ध पीठ मैंठाणा को जाता है। ६ हजार फीट की ऊंचा

पर यह एक अत्यन्त रमणीक धार्मिक स्थान है। देवी का भव्य मन्दिर है। केदारनाथ शिखर यहाँ से स्पष्ट दिखाई देता है। यहाँ से कुर्मासिनी देवी का प्राचीन मन्दिर ५ किलोमीटर पड़ता है। जो प्राचीन होने के साथ-साथ दर्शनीय है। यहाँ से सूर्योदय का मनोरम दृश्य दिखाई देता है। इन दोनों क्ति पीठों को यात्रा करने के लिए साहस की आवश्यकता है। तिलवाड़ा खड़ी चढ़ाई है और दूरी ६ किलोमीटर है।

अगस्त्यमुनि

तिलवाड़ा से ११ किलोमीटर की दूरी पर मन्दाकिनी घाटी का प्रसिद्ध कस्बा अगस्त्यमुनि अवस्थित हैं। ऋषि अगस्त्य का प्राचीन मन्दिर है। वही अगस्त्यमुनि जिनके बारे में कथा है कि उन्होंने समुद्र को पी डाला था। समुद्र शोषण के प्रायश्चित से मुक्त होने के लिए उन्होंने यहाँ तप किया था। तभी से यह स्थान प्रसिद्धी में आया। यहाँ अगस्त्वमुनि के मन्दिर में अगस्त्यमुनि की ताम्रमयी मूर्ति के पास कटार और दोनों ओर दो शिष्यों की सुन्दर मूर्तियाँ हैं। यहां एक विशाल मैदान भी है जिसमें हवाई जहाज बैठ सकता है।

यहाँ बाजार, डाक-तारघर, अस्पताल, काली कमली की धर्मशाला, डिग्री कालेज, इण्टर कालेज एवं विकास खण्ड का मुख्यालय है। विपुवत संक्रान्ति को यहां भारी मेला लगता है। जिसमें टिहरी जनपद व चमोली जनपद के नर-नारी सम्मिलित होते हैं।

अगस्त्यमुनि से एक किलोमीटर की दूरी पर नारायण मन्दिर है। मन्दिर में भगवान विष्णु की दिव्य मूर्ति है। कुछ ओर आगे चलकर वेड़ूवगड़ है। यहाँ से नदी पार कर एक रुद्राक्ष का पेड़ है, जो उत्तराखण्ड में अन्यत्र दुर्लभ है। इस पर प्रति वर्ष हजारों की संख्या में रुद्राक्ष लगते हैं। यह वृक्ष गोस्वामी श्री बच्चीराम के आंगन में है, जो उन्हें सालाना खासी आमदनी देता है।

कुण्ड

अगस्त्यमुनि से कुण्ड १६ किलोमीटर है। रास्ता नदी के किनारे-किनारे आगे बढ़ता है। नदी के उस पार सघन वन दिखाई देता है। कई

प्राचीन छोटे-छोटे मन्दिर मार्ग में मिलते हैं। विनोबापुरी, चन्द्रापुरी, भीरी व चटवा पीपल की मामूली बस्तियां मार्ग में पड़ती हैं। भीरी चन्द्रापुरी में छोटे-छोटे बाजार भी हैं। चन्द्रापुरी में चन्द्रा नदी एवं म किनी का संगम है। यहां चन्द्रशेखर शिव एवं दुर्गा के मन्दिर दर्शनीय भीरी में भीमसेन का मन्दिर व प्राचीन मूर्ति है। कुण्ड से एक मार्ग ऊ मठ तथा दूसरा पुल पार कर गुप्तकाशी को गया है। कुण्ड के निकट ऊ मठ मार्ग पर तथा गुप्तकाशी मार्ग पर भी सुन्दर जल प्रपात हैं। आ पास का दृश्य मनोहक है। यहां पुराने समय की धर्मशाला है। मोटरी यातायात की सुविधा होने पर ये धर्मशालाएँ अब खंडहरों में बदलती रही हैं। जब पैदल यात्रा का जमाना था तो कुण्सचट्टी में खूब चहल पहल रहती थी। अब वह रौनक यहां नहीं है।

गुप्तकाशी

कुण्ड से पांच किलोमीटर की दूरी पर एवं समुद्र की सतह से ४८५ फीट की ऊँचाई पर गुप्तकाशी की सुन्दर बस्ती हैं। यहां दुमंजिले-तिमंजिले अच्छे मकान हैं। विश्वनाथ अर्द्धनारीश्वर के मन्दिर दर्शनीय है। विश्वनाथ मन्दिर में भगवान विश्वनाथ का स्वयंभू लिंग है। यहाँ मणिकर्णिका नामक जल कुण्ड है, जिसमें गणेश मुख से गंगा-यमुना नामक दो धाराएँ गिरती हैं। कथा है कि प्राचीन काल में शिव प्राप्ति के लिए यहां ऋषियों ने तप किया था। यह भी कथा है कि पाण्डव भगवान शंकर के दर्शनों के लिए काशी (वाराणसी) गए तो शिवजी वहां दर्शन न देकर यहाँ आकर गुप्तवाश करने लगे। इसीलिए इसका नाम गुप्तकाशी हुआ।

गुप्तकाशी में सुन्दर बाजार बस स्टैंड पर ही है। बस स्टैंड से सामने हिमालय का दृश्य बड़ा मनोहारी लगता है। यहां डाक-तार, अस्पताल, पुलिस स्टेशन व धर्मशाला है। सार्वजनिक निर्माण विभाग व मन्दिर समिति के विश्रामालय मौजूद हैं। गढ़वाल मंडल विकास निगम का २० शैय्याओं वाला पर्यटक आवास गृह भी उपलब्ध है। गुप्तकाशी से नीचे लगभग डेढ़ किलोमीटर की दूरी पर ऊखीमठ जाने के मार्ग पर विद्यापीठ नामक उत्तराखंड की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था है, जहाँ संस्कृत, आयुर्वेद एवं सभी आधुनिक विषयों की माध्यमिक स्तर तक की पढ़ाई होती है।

गुप्तकाशी के निकट वामसू व शोणितपुर गाँव हैं, जहाँ केदारनाथ के तीर्थ पुरोहित रहते हैं। किवदन्ती है कि द्वापर युग में वाणासुर की राजधानी यहीं थी। वाणासुर की पुत्री उषा का श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से प्रणय सम्बन्ध था। ऊषा का स्मारक ऊखपीठ मन्दिर आज भी विद्यमान है, जहाँ ऊषा और अनिरुद्ध की मूर्तियाँ हैं।

नाला

गुप्तकाशी से लगभग तीन किलोमीटर की दूरी पर नाला गाँव है। पैदल यात्रा के समय इस चट्टी (धर्मशाला) में यात्रीगण रात्रि निवास करते थे। अभी तक इस स्थान का नाम नाला चट्टी कहलाता है। कथा है कि पूर्वकाल में इस स्थान पर राजा नल ने देवी की आराधना की थी। भगवती ललिता देवी तथा गरुड़ जी का यहाँ प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर के अनितदूर शिव पार्वती की पाषाण प्रतिमाएँ हैं। यहाँ कत्यूरी राजाओं के समय का प्राचीन मन्दिर है, जिसमें कुछ खंडित मूर्तियाँ हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के कथनानुसार जब रुहेलों ने यहाँ लूटपाट की तो उसी वक्त उन्होंने इन मूर्तियों को खंडित किया। मन्दिर के दरवाजे पर १२४६ ई० का एक शिलालेख है जिससे अनुमान होता है कि यह मन्दिर तेरहवीं शताब्दी का है। सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु यहाँ पत्थर का बना स्तूप है। जो भी पुरातात्त्विक दृष्टि से यह स्थान गवेषणीय है।

नारायणकोटि

नाला से नलेश्वर एवं दमयन्ती के मन्दिर को होते हुए ३ किलोमीटर की दूरी पर नारायणकोटि है। यहाँ भगवान लक्ष्मी नारायण का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में विष्णु की चतुर्भुज गरुड़ारूढ़ मूर्ति भव्य एवं दर्शनीय है। मूर्ति की प्राचीनता एवं शिल्प सौन्दर्य पुरातात्त्विक दृष्टि से रेखांकित करने वाला है। मन्दिर के पार्श्व में शीतल जल के दो झरने व कुण्ड है। यहाँ के निवासी साहित्यकार पं० विशालमणि शर्मा ने इस पुरातात्त्विक सामग्री के संरक्षण का काफी प्रयास किया है।

भद्रेश्वर महादेव

नारायणकोटि से कुछ आगे चलकर दाहिनी ओर दो बड़े मन्दिर हैं,

उनमें के एक मन्दिर को भद्रेश्श्वर महादेव का मन्दिर कहते हैं। मन्दिर के निकट नर्वलिगगढ़ के ध्वंसावशेष हैं। सम्भवत: पूर्वकाल में यह गढ़वाल के किसी सामन्त का गढ़ रहा होगा।

ब्यूंगचट्टी

नारायणकोटि से ढ़ाई किलोमीटर पर ब्यूंगचट्टी है इस स्थान पर महिप मर्दिनी का प्राचीन मन्दिर है। इस मन्दिर में भगवती दुर्गा की आठ भुजाओं वाली मूर्ति है। केदारखंड के अनुसार महिषासुर दैत्य से त्रस्त होकर ब्रह्मा, विष्णु व शिव तीनों देव एक रूप में हो गए, जिससे एक देवी उत्पन्न हो गई थी। इस देवी ने महिषासुर को मारकर देवताओं को भय से मुक्त किया था। इसी कारण देवी का नाम महिष मर्दिनी हुआ।

मैखण्डा

यह स्थान काफी प्रसिद्ध है। ब्यूंगचट्टी से कुदरत के नजारों को देखते हुए जब फाटा की ओर बढ़ते हैं तो ४ किलोमीटर की दूरी पर मैकड़ा पड़ता है। यहाँ पर एक प्राचीन झूला है। कहते हैं महिषासुर की राजधानी भी यहीं थी। महिष मर्दिनी देवी ने महिषासुर के खंड-खंड करके यहीं फेंके थे। इसी कारण यह क्षेत्र मैखण्डा कहलाया।

फाटा

सिन्धु तट से ५२५० फीट की ऊँचाई पर स्थित मैखण्डा से लगभग ढाई किलोमीटर की दूरी पर फाटा एक अच्छी बस्ती है। डाक बंगला, डाकखाना एवं चिकित्सालय की सुविधा है। इसके निकट ही जमदग्नी का आश्रम है, जहाँ शिव का स्वयंभू लिंग है। फाटा में खाने-पीने का सभी सामान मिल जाता है। वैसे तो ऋषिकेश से आगे पूरे मार्ग पर सुषमायुक्त प्राकृतिक दृश्यों का साम्राज्य सर्वत्र व्याप्त है किन्तु केदारनाथ के मार्ग पर फाटा से आगे बढ़ते ही प्रकृति की रचना कौशल का एक विचित्र करिश्मा दृष्टिगोचर होने लगता है। एक ओर पतित पावनी कलकल निनादिनी मन्दाकिनी का प्रवाह और दूसरी ओर द्रुम लता वितानों से मंडित सघन वनों का विस्तार तथा उठते हुए हिमधवल शैल शिखर दर्शक का मन

मोहित कर देते हैं। शंखमुखी देवदार एवं चीड़ के वृक्ष अपनी सुरभि से यात्रियों को आनन्दित करते हैं। मन्द पवन के झोंके पद यात्रियों के मार्ग-जन्य श्रम को हर लेते हैं। प्रकृति के प्रेमियों को गुप्तकाशी से केदारनाथ तक की यात्रा पैदल ही करनी चाहिए।

रामपुर

रामपुर फाटा से ५ किलोमीटर आगे है। काली कमली की धर्मशाला व डाकघर की सुविधा है। रात्रि निवास के लिए उपयुक्त है। रामपुर से दो किलोमीटर की दूरी पर सीतापुर है। यहां से बायीं ओर का मार्ग (६ कि० मी०) त्रियुगी नारायण और दायीं ओर का सोन प्रयाग को गया है। त्रियुगी नारायणी के मार्ग पर शाकम्बरी देवी का मन्दिर है। महाभारत वन पर्व में कथा है कि यहां पर देवी ने मात्र शाक खाकर तप किया था। यहां देवी को चीर चढ़ाने का महात्म्य है।

त्रियुगीनारायण

यह प्रसिद्ध तीर्थ समुद्र की सतह से ६००० फीट की बुलन्दी पर स्थित है। इसके चारों ओर प्राकृतिक दृश्यावली है। कथा है कि शिवजी का पार्वती से यहीं पर विवाह हुआ था। यहां के नारायण मन्दिर में धातु की अनेक मूर्तियां हैं। लक्ष्मी व सरस्वती के सहित भगवान विष्णु सिंहासन पर विराजमान हैं। मन्दिर के सामने एक चतुष्कोण कुण्ड है। कहते हैं इस कुण्ड में तीन युगों से निरन्तर अग्नि जल रही है। इसीलिए इसे त्रियुगी नारायण कहते हैं। यह अग्नि शिव-पार्वती के पाणिग्रहण की साक्षी बताई जाती है। अभी भी यात्री बड़ी श्रद्धा से इसमें लकड़ी डालते हैं तथा हवन करते हैं। यहां छोटे-छोटे चार कुण्ड विष्णुकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, रुद्रकुण्ड व सरस्वती कुण्ड हैं। इन कुण्डों के जल से स्नान व मार्जन किया जाता है। कहते हैं यहां पीले सर्पों का एक जोड़ा निरन्तर वास करता है, जिसका दर्शन शुभ माना जाता है। रात्रि निवास के लिए यहां काली कमली की धर्मशाला है। यहां से एक पैदल मार्ग गंगोत्तरी-यमनोत्तरी को गया है। एक जंगली मार्ग वासुकी-ताल होते हुए केदारनाथ को भी जाता है।

सोनप्रयाग

त्रियुगी नारायण से ५ किलोमीटर की उतराई के बाद सोमद्वा
-सोनप्रयाग आता है। यहाँ पर वासुकी-ताल से निकली हुई वासुकी गं
मन्दाकिनी का संगम है। समीप ही गरुड़जी की मूर्ति है। संगम
-कालीश महादेव के दर्शन होते हैं।

सिरकटा गणेश

सोनप्रयाग से डेढ़ किलोमीटर आगे गणेश जी की मस्तक विहीन
है, जिसे सिरकटा गणेश कहते हैं। इस मूर्ति के दोनों ओर शिव-पार्वती
मूर्तियाँ हैं। स्कन्द पुराण में कथा है कि पार्वती एक दिन स्नान कर
थी। इस अवधि में कोई अन्दर न आवे, इसके लिए पार्वती ने गणेश
को द्वार पर बैठा दिया। अकस्मात शिवजी आए। गणेश जी ने उन्हें अन
जाने से रोका। शिवजी को क्रोध आ गया। उन्होंने गणेश जी का सिर ध
से अलग कर दिया। पार्वती के द्वारा स्वतेज से उत्पन्न नन्दियों औ
शिवजी में युद्ध होने लगा। देवता इससे भयभीत होने लगे। तब उन्हों
पार्वती की आराधना की। पार्वती की आज्ञा से देवताओं ने एक दांत वाले
हाथी का सिर काटकर गणेश जी के धड़ से जोड़ दिया। गणेश जी फि
से जी उठे। तभी से उनका नाम गजानन (हाथी के मुखवाला) व एकदन्
हुआ।

गौरीकुण्ड

६५०० फीट की ऊँचाई पर गौरी कुण्ड एक दर्शनीय व पवित्र स्थान
है। सिरकटा गणेश से ३ कि० मी० चलकर गौरी कुण्ड मिलता है। कहते
हैं यह वही कुण्ड है जहाँ पार्वती अर्थात् गौरी ने सर्वप्रथम ऋतु स्नान किया
था। यहाँ गरम जल तथा शीतल जल के दो कुण्ड हैं। किंवदन्ती है कि
पार्वती का जन्म भी इसी स्थान पर हुआ था। कुछ दक्षिण की ओर उमा-
महेश्वर की शिला है। गौरी, राधाकृष्ण तथा ज्वाला भवानी की मूर्तियाँ
हैं। पार्वती जी का मन्दिर है। रहने के लिए काली कमली की धर्मशाला,
पर्यटकलौज, मन्दिर समिति का अतिथि भवन व सार्वजनिक निर्माण
विभाग का निरीक्षण भवन है। डाकघर की भी सुविधा है। खाने-पीने के

अच्छे होटल हैं, बस की यात्रा आजकल यहीं समाप्त हो जाती है। इससे आगे १३ किलोमीटर का मार्ग पैदल ही तय करना पड़ता है। केदारनाथ जाने के लिए यहाँ से काफी चढ़ाई है। ठण्ड भी अधिक महसूस होने लगती है। किन्तु गौरीकुण्ड से केदारनाथ तक का पैदल मार्ग प्राकृतिक दृश्यों का एक प्रकार अजायबघर है जिससे यात्री इन दृश्यों को देखता हुआ आगे बढ़ता जाता है और किसी प्रकार की थकान अनुभव ही नहीं करता। चारों ओर की सघन वृक्षावली और श्वेत जल प्रपात मन को मोह लेते हैं, पैदल मार्ग पर इतना प्राकृतिक सौंदर्य अन्यत्र दुर्लभ है। गौरी कुण्ड से तीन किलोमीटर पर चीरवासा है। यहाँ भैरव जी का मन्दिर है जो केदारनाथ जी के सुरक्षा अधिकारी कहे जाते हैं। यहाँ पर भैरव जी को चीर चढ़ाने की प्रथा है।

रामबाड़ा

चीरवासा से रामबाड़ा ३ किलोमीटर की दूरी पर है। समुद्रतल से ऊँचाई ९००० फीट है। अधिकांश यात्री रात्रि निवास यहीं करते हैं, क्योंकि केदारनाथ में शीताधिक्य से रात्रि निवास कठिन समझा जाता है। रामबाड़ा से लोग प्रातः आवश्यक सामग्री लेकर ऊपर जाते हैं। वहाँ भगवान केदारनाथ की पूजा-दर्शन करते हैं। चारों ओर के नैसर्गिक दृश्यों का अपने नेत्रों से पान करते हैं और शाम को फिर रामबाड़ा लौट आते हैं। रात्रि निवास के लिए यहाँ काली कमली की धर्मशाला है। यह स्थान विस्तृत भू-भाग में फैला है। यहाँ से नीचे की उपत्यका का दृश्य मनमोहक लगता है। यात्री निर्निमेष प्रकृति के सौन्दर्य को अवलोकते अघाते नहीं। रामबाड़ा से ७ किलोमीटर की चढ़ाई पार करने के बाद यात्री अपने लक्ष्य स्थान भगवान केदारनाथ की पुरी में पदार्पण करते हैं। यात्रियों के कण्ठ से सामूहिक स्वर लहरी फूट पड़ती है—'केदारनाथ भगवान की जय'।

१०

केदारनाथ

महाद्रि पार्श्वे च तटे रमन्तम्,
सम्पूज्य मानं सततं मुनीन्द्रैः ।
सुरासुरैर्यक्ष महोरगा ढ्यैः,
केदारमीशं शिवमेक मीडे ॥

जो महागिरि हिमालय के पास केदारशृंग के तट पर सदा निवास करते हुए मुनिश्वरों द्वारा पूजित होते हैं। तथा देवता, असुर, यक्ष और महान सर्प आदि भी जिनकी पूजा करते हैं, उन एक कल्याण कारक भगवान केदारनाथ का मैं स्तवन करता हूँ।

केदारनाथ की स्थिति

केदारनाथ गढ़वाल मण्डल के चमोली जनपद में पृथ्वी के अक्षांश ३°०.४४'.१५" देशान्तर ७६°.६'.३३" पर सिन्धु तट से ११७५३ फीट की ऊँचाई पर केदार भूमि में अवस्थित है[1] 'केदार' संस्कृत में दलदल को कहते हैं। मन्दिर पहाड़ की जड़ पर महापथ हिमालय की चोटी के नीचे सम धरातल भूमि पर स्थित है। केदारनाथ के तीन ओर आकाशगामी शैल शिखर खड़े हैं जो तीनों ओर से दृष्टिपथ को अवरुद्ध कर देते हैं। यहाँ पहुँच कर लगता है मानों हम धरती के अन्तिम छोर पर पहुँच चुके हैं। अब इससे आगे और कुछ नहीं है। केदारनाथ शिखर २२०४४ फीट तथा इसके दो अन्य शिखर भारत खण्ड २२८४४ फीट और खर्चा खण्ड २१६६५ फीट ऊँचे हैं। इनके दक्षिणी पूर्वी भाग में मन्दाकिनी का उद्गम है। केदारनाथ से भागीरथी उद्गम तक लगातार हिमालय चला गया है उसमें कितने ही शिखर २०००० फीट से अधिक ऊँचे हैं।[2]

---

1. हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृ ६३
2. डा० शिव प्रसाद डबराल—उ० या० द० पृष्ठ २६२

केदारनाथ की प्राचीनता

केदारनाथ की प्राचीनता की सही तिथि सन्-सम्वत आदि वताना कठिन है। प्राचीन ग्रंथों में ग्रंथ कर्त्ताओं ने इन तीर्थों के बारे में 'अनादि' शब्द कहकर अपने को मुक्त कर दिया है। पूरे उत्तराखण्ड या कहना चाहिए कि सारे भारत के तीर्थों के सम्बन्ध में ऐसी ही धारणा वना ली गई है। जब किसी घटना का कोई काल निश्चित न हो सके तो उसे 'अनादि' कहने के अतिरिक्त कह भी क्या सकते हैं। सम्भवतः इस परि-प्रेक्ष्य में 'अनादि' शब्द को इसी अर्थ में लिया गया कि जिसके काल का निश्चय करना कठिन हो।

हमारे यहाँ वेदों को अनादि कहा जाता है। वेदों में हिमालय का वर्णन कई स्थानों पर आया है। ऋगवेद (१०।१२१।४) और अथर्ववेद (१२।१।११) में 'हिमवन्तों' व 'हिमवतः' अब्द आया है। किन्तु हिमालय के इन तीर्थों का वेदों में जिक्र नहीं हुआ है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिमालय का महत्त्व मुख्यतया वदरी और केदार के कारण ही है जो विष्णु और शिव के स्वरूप हैं और वहुत प्राचीन काल से हिन्दू जगत के आस्था के केन्द्र बने हुए हैं।[1]

महाभारत काल में केदारनाथ और वदरिकाश्रम पूर्ण रूप से अस्तित्व में आ चुके थे। महाभारत वन पर्व में उत्तराखण्ड के इन तीर्थों का विशद वर्णन है। स्पष्ट है कि आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व तो यहां यात्रियों का आवागमन था ही। पुराणों में तो इन तीर्थों पर प्रभूत सामग्री विखरी पड़ी है। कोई पुराण ऐसा नहीं जिसमें उत्तराखण्ड के इन तीर्थों के सम्बन्ध में कोई न कोई प्रसंग न हो।

वायु पुराण में लिखा है कि जब परमात्मा ने मानव सृष्टि उत्पन्न की थी, उसी समय नर नारायण को उसकी रक्षा के लिए भेजा। उन्होंने जगत के कल्याण के निमित्त गन्ध मादन पर्वत पर उग्र तप करके भगवान आशुतोष को प्रसन्न किया। शिवजी ने नर-नारायण को दर्शन देकर कहा—"वरंब्रूहि"। (वरदान मांगों!) नर-नारायण ने विनय पूर्वक कहा—

1. एटकिन्सन—हिमालयन डिस्ट्रिक्टस

प्रभो ! हम विश्व के कल्याण के निमित्त आपका स्मरण करते हैं। यदि आप हमारी सेवा से प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिए कि आप सदेह इन पर्वतों पर निवास करें। जिससे संसार के जीव आपके दर्शनों से मुक्ति लाभ करते रहें। भगवान शिव ने नर-नारायण की प्रार्थना स्वीकार करके इस केदार भूमि को अपना स्थायी निवास स्वीकार किया। तब से यह परम पावन तीर्थ केदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में लिखा है—"केदारनाथ भारत के अत्यन्त प्राचीन तीर्थों में है। यद्यपि आजकल बदरीनाथ कहने का बहुत रिवाज हो गया है, लेकिन हिमालय के जो ५ खण्ड अत्यन्त प्राचीन काल से माने जाते हैं, उनमें गंगा और यमुना के बीच हिमालय के भीतर की भूमि को बदरीखण्ड कहा जाता था।"[1]

इसके विपरीत उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध इतिहास वेता डा० शिव प्रसाद डबराल की मान्यता है कि बदरी वन, विशाला या बदरीकाश्रम नाम का ही अधिक उल्लेख महाभारत में हुआ है। उनके अनुसार केदार शब्द ईसा—विक्रम की पहली शताब्दी में प्रचलित हुआ।[2] 'केदार कल्प' ग्रंथ में केदारनाथ की प्रशंसा स्वयं शिवजी करते हैं।

पुरोतिनी यथाहं वै तथा स्थान मिदंकिल।
यदा सृष्टि क्रियायाँच मयावै ब्रह्म मूर्तिना॥
स्थितमत्रैव सतत परब्रह्म जिगीषया।
तदादिकमिदं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥
(केदारखण्ड अ० ४१।५-६)

शिवजी पार्वती से कहते हैं कि जैसे मैं प्राचीन हूँ उसी प्रकार यह स्थान भी प्राचीन है। जब मैं ब्रह्ममूर्ति को धारण करके, सृष्टि की रचना करने में स्थित हुआ था, तब मैंने इसी स्थान में स्थिति की थी। उसी दिन से यह स्थान विद्यमान है। इसकी प्राप्ति देवताओं को भी दुर्लभ है।

केदारनाथ कब स्थापित हुआ, जब इसका कोई प्रामाणिक लेखा-जोखा नहीं मिलता तो उसे अनादि कहने में कोई हानि नहीं। जो भी हो,

1. राहुल—गढ़वाल हिमालय
2. डबराल—उत्तराखंड या० द० पृ० १११

महा पण्डित राहुल के मतानुसार यह भारत के अत्यन्त प्राचीन तीर्थों में तो है ही।

'केदार' शब्द को अब संस्कृत में ग्रहण कर लिया गया है जिसका अर्थ है कीचड़ युक्त या दलदली भूमि। किन्तु एटकिनसन का कहना है कि केदार शब्द की संस्कृत में कोई संतोष जनक व्युत्पत्ति नहीं है। स्टीवेनसन की मान्यता है कि शिव का प्राचीन नाम केदार प्रतीत होता है जो आदि-वासियो में प्रचलित रहा होगा। डा० शिवप्रसाद डबराल का विचार है कि 'किरात' और केदार मूलरूप में दोनों एक ही शब्द है। यही किरात बाद में केदार बन गया।[1]

'केदार' शब्द के बारे में ब्रह्मवैवर्त पुराण में एक यह भी कथा है कि सतयुग में केदार नाम के एक राजा ने यहाँ तप किया। जिसके नाम से यह स्थान केदारनाथ नाम से ख्यात हुआ।

केदारनाथ इतिहास के झरोखे में

प्राप्त ताम्रपत्र । गुजरात के राजा सुधन्वा ने शंकराचार्य को जो ताम्रपत्र लिख कर दिया था और बड़ोदा राज्य के पुस्तकालय में जो प्राचीन कागजात मिले हैं, जिनमें शंकराचार्य का जन्म युधिष्ठिर सम्वत २६६१ लिखा है, इनसे यही प्रतीत होता है कि शंकराचार्य का जन्म विक्रमीय शताब्दी से ३-४ सौ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा । आठवीं शताब्दी तो किसी तरह नहीं हो सकता ।[1]

महा पण्डित राहुल, शंकराचार्य का समय सातवीं सदी से पूर्व का नहीं मानते । बलदेव उपाध्याय शंकराचार्य की मृत्यु ८२० ई० में, ३२ वर्ष की आयु में मानते हैं । जबकि श्री के० एम० मुन्शी सन् ८८७ में शंकराचार्य की बदरीनाथ में सम्भावना बताते हैं ।

इस प्रकार शंकराचार्य के काल को निर्धारण करने में कोई भी इतिहासकार सफल नहीं हुआ है । मुझे तो उनके ३२ वर्ष की आयु में देहावसन होने की बात भी कपोल कल्पित लगती है । क्योंकि उनके द्वारा रचित बताये जाने वाले 'दव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम'[2] में वे स्वयं कहते हैं कि— मैंने अपनी पच्चासी वर्ष से अधिक आयु बीत जाने पर विविध विधियों द्वारा पूजा करने से घबड़ाकर सब देवों को छोड़ दिया है ।

अस्तु, प्रश्न यह नहीं है कि शंकराचार्य का जन्म कब हुआ, प्रश्न है श्री केदारनाथ की प्राचीनता का । श्री हरिकृष्ण रतूड़ी ने अपने गढ़वाल के इतिहास में केदारनाथ के प्रथम रावल भुकुण्ड से लेकर ३१९ रावलों की सूची प्रकाशित की है । उन्हीं के मतानुसार यदि प्रत्येक रावल को रावलचारी की अवधि औसतन १० वर्ष की भी रखी जाय तो प्रथम रावल का समय ईसा से १३२० वर्ष पहले होना निश्चित होता है। रावलों की नियुक्ति होने से पूर्व भी कोई व्यवस्था अवश्य रही होगी । पाण्डवों का केदारनाथ जाना तो सर्व सम्मत है ही । यह महाभारत काल की बात है और महाभारत काल को अब से पांच हजार वर्ष पुराना सभी मानते हैं । इससे यह स्पष्ट है कि महाभारत काल से पूर्व केदारनाथ अस्तित्व में था

1. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी—पूर्वोक्त पृष्ठ २२३
2. 'मया पञ्चाशीतेरधिक मपनीते तु वयसि,' (स्तोत्र रत्नावली पृष्ठ ६८)

क्योंकि जव पाण्डव वहाँ शिवजी के दर्शन करने गए तो उसका यही आश
निकलता है कि वह स्थान पहले से ही प्रसिद्ध शैव स्थल था। मन्दिर व
स्वरूप चाहे उस वक्त जो भी रहा हो।

केदार तीर्थ पाँच हजार वर्ष पुराना हो या इससे अधिक पुराना उसवं
प्रति हिन्दू जनता में जो विश्वास और आस्था बनी हुई है, उसमें को
अन्तर आने वाला वाला नहीं है। यात्रियों की संख्या वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ हं
रही पर घट नहीं रही है।

वर्तमान मन्दिर और उसका निर्माण

केदारनाथ का मन्दिर उत्तराखण्ड के सर्वश्रेष्ठ और विशाल मन्दिरों में से है। विशाल पाषाण शिलाओं से इसका निर्माण किया गया है इन शिलाओं को देखकर आश्चर्य होता है कि उस प्राचीन काल में किस प्रकार इतनी विशाल शिलाओं को ऊपर चढ़ाया होगा और इन शिलाओं को कहाँ से लाया गया होगा। श्री डबराल के अनुसार यह मन्दिर कत्यूरी शिखर शैली का है जो नागर शिखर शैली का ही परिवर्तित रूप है। मंदिर की ऊँचाई ८५ फीट तथा इसकी दीवारें १२ फीट मोटी हैं। परिक्रमा पथ लम्बाई में १८७ फीट तथा चौड़ाई में ८० फीट है। मन्दिर के पार्श्व भाग में पूर्व की ओर ईशानेश्वर का मन्दिर है।

इस मन्दिर का निर्माता कौन था, इसका सही सही पता लगाना मुश्किल है। ऐपिग्राफिका इण्डिका खण्ड १ पृष्ठ २३५-३६ पर एक शिला लेख की प्रतिलिपि छपी है जो ग्वालियर राज्य में मिला है। उसमें मालवा नरेश भोज का यशोगान है। साथ ही भोज द्वारा केदारेश्वर मन्दिर बनाने का भी जिक्र है। भोज ने वि० सं० १०७६ से १०६६ तक राज्य किया। विशेषज्ञों का भी यह अनुमान है कि मन्दिर १२०० वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। सम्वत १४८५ वि० में महाराजा मोकल ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। (ओझा राजपूताने का इतिहास) यह मन्दिर इतनी मजबूती से बना है कि कई बर्फानी तूफानों और अनेक बार के भूचालों से भी यह ध्वस्त न हो सका। एक किंवदन्ती यह भी है कि इस मन्दिर का निर्माण पाँडवों ने किया था।

मन्दिर केदारनाथ का जीर्णोद्धार

श्री नटवर लाल डालमिया के उदार दान से मन्दिर के जीर्णोद्धार की योजना बनाई गई है। मन्दिर में यह जीर्णोद्धार का कार्य २०० वर्ष बाद हो रहा है। श्री डालमिया ने मन्दिर की छतरी के जीर्णोद्धार हेतु ५२ हजार रुपये देने का वचन दिया है। छतरी के लिए ताँबे की शीट जिसकी कीमत ४० हजार है दी है। (सन् १९८५ में) श्री नटवर लाल ने केदारनाथ में कुल ८ लाख रुपये खर्च करने का संकल्प ले रखा है। इस धनराशि से ये छतरी के जीर्णोद्धार के अलावा गर्भग्रह एवं प्रांगण में संगमरमर लगाया जायेगा। २ लाख की लागत से एक धर्मशाला का निर्माण कराया जायेगा। जिसे यात्रियों को निःशुल्क दिया जायेगा। (जीर्णोद्धार सम्बन्धी यह जानकारी दि० ८-६-८५ को श्री महीधर सेमवाल उप-कार्याधिकारी तथा अवर अभियन्ता श्री रमेश चन्द्र नैथानी ने लेखक को केदारनाथ में दी है।)

केदारनाथ का धार्मिक महत्त्व

केदारनाथ के धार्मिक महत्व को इसी से आंका जा सकता है कि हजारों वर्षों में प्रतिवर्ष एक जन-समूद्र केदारनाथ के दर्शन के लिए अनेक कष्टों को झेलते हुए भी उमड़ पड़ता है। अब तो यातायात की सुविधा हो गई है। एक जमाना वह था जब हरिद्वार से ही पैदल चलकर लोग यहाँ पहुँचते थे। केदारनाथ भारतवर्ष के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक है।[1] ये द्वादश ज्योतिर्लिग भारत के विभिन्न भागों में प्रतिष्ठित हैं जिनका धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

---

1. सौराष्ट्रे सोमनाथ च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम ।
   उज्जयिन्यां महाकालमोङ्कारममलेश्वरम् ॥
   परल्यां वैद्यनाथ च डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
   सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥
   वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
   हिमालये तु केदारं घुश्मेशं च शिवालये ॥
   एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायंप्रातः पठेन्नरः ।
   सप्तजन्म कृतं पाप स्मरणेन विनश्यति ॥

केदारनाथ मन्दिर में प्रवेश करने पर सभा मण्डप में पाण्ड मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह के द्वार पर शैव मूर्तियाँ लगी हैं। मन्दिर के शिवजी की कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। जिसे शिवलिंग कहा जाता ग्रेनाइट पाषाण की त्रिभुजाकार एक विशाल शिला है। कहते हैं प्रथम इसका पूजन पाण्डवों ने किया था। यात्री स्वयं इस शिला क करते हैं और अकमाल देते हैं। शिवपुराण के अनुसार जब महाभार युद्ध समाप्त हुआ तो भगवान वेद व्यास ने पाण्डवों को केदार गम आदेश दिया ताकि गोत्र हत्या के पाप से उन्हें मुक्ति मिल सके। प जब केदारनाथ पहुँचे तो शिवजी उन्हें गोत्र हत्या का दोषी समझकर रूप में भूमिगत होने लगे। इतने में भीम ने दौड़कर उनका पिछला पकड़ लिया। पाण्डवों की भक्ति और व्याकुलता को देखकर शिव उन्हें साक्षात दर्शन दिए और गुरु हत्या एवं गोत्र हत्या के पा प्रायश्चित स्वरूप भीम द्वारा पकड़े गए पृष्ठ भाग की पूजा का आदेश दे अन्यर्धान हो गये। कहते हैं उस पृष्ठ भाग ने शिला का रूप धारण कि जो उस दिन से यहाँ सुपूजित हुआ। अग्रभाग नेपाल में जाकर प्रकट हु जो पशुपति नाथ के नाम से विख्यात हुआ।[1] उस शिला के अन्य च खंडित अंश उत्तराखंड के चार अन्य स्थानों पर प्रकट होकर प्रतिष्ठित हु जो इस प्रकार हैं—बाहु तुंगनाथ में, मुखरुद्र नाथ में, नाभि मदमहेश्वर और जटा कल्पेश्वर में केदारनाथ सहित ये स्थान उत्तराखंड में प केदार के नाम से विख्यात हैं।

---

1. यो वै हि पाण्डवान् दृष्ट्वा माहिष रूप मास्थितः
मायामास्थाय तत्रैव पलायन करोऽभवत—१३
धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ मुखतयास्थितेः
पुच्छ चैव धृतं तैस्तु प्रार्थितश्च पुनः पुनः—१४
तद्रूपेण स्थितस्तत्र भक्तवत्सल नामभाक
नयपाले शिरो भागो गतस्त द्रूपतः स्थितः—१५
तत्र नित्यं हरस्साक्षात्क्षेत्रे केदार संज्ञके
भारतीभि प्रजाभिश्च तथैव परिपूज्यते—१८
(शिव पुराण—कोटिरुद्र संहिता अ० १

केदारनाथ की पूजा घृत, चन्दन, विल्वपत्र एवं कमल आदि से की जाती है। सभा मण्डप में जो पाण्डवों की मूर्तियाँ हैं, यही यहाँ की शृंगार मूर्तियां हैं। इन्हें वस्त्राभूषणों से सजाया जाता है और इन्हीं का दर्शन यात्रियों को कराया जाता है। कला की दृष्टि से ये मूर्तियाँ उत्कृष्ट हैं। मन्दिर के द्वार पर शृंगी-भृंगी द्वारपाल है।

केदारनाथ के पुजारी

केदारनाथ के पुजारी दक्षिण भारत मालावार के जंगम गुसाईं (लिंगायत) जाति के ब्राह्मण होते हैं। इन्हें पुजारी न कहकर रावल कहा जाता है। कहते हैं यह उपाधि इन्हें गढ़वाल के राजा ने दी थी। रावलों को विवाह करने की आज्ञा नहीं है। इन्हें एक से अधिक शिष्य रखने का अधिकार है। ये शिष्य भी दक्षिण के जंगम जाति के ही हो सकते हैं। इन्हीं में से उत्तराधिकारी छांटे जाते हैं। रावल स्वयं पूजा नहीं करता। उसके शिष्य और गुरु भाई करते हैं। केदारनाथ के अधीन कई अन्य छोटे बड़े मन्दिर हैं जो इस प्रकार हैं—अगस्त्यमुनि, मदमहेश्वर, त्रियुगीनारायण, गुप्तकाशी, तुंगनाथ, कालीमठ, गोरीदेवी, लक्ष्मीनारायण, रुद्रनाथ, उखीमठ और गोपेश्वर।

कपाटोद्घाटन

केदारनाथ में ऊँचाई के कारण शीत, हिम व वर्षा का प्रकोप रहता है। शीतकाल में शीताधिक्य के कारण यह स्थान अगम्य हो जाता है। अतः ६ मास (नवम्बर से अप्रैल) केदारेश्वर की पूजा ऊखीमठ में होती है। यहाँ भगवान केदारनाथ की उत्सव मूर्ति कपाट बन्द होने के बाद लाई जाती है। केदारनाथ के रावल का गद्दी स्थान ऊखीमठ ही है। केदारनाथ के कपाट प्रतिवर्ष अप्रैल के अन्तिम सप्ताह अथवा मई के प्रथम सप्ताह में खुलते हैं।

मन्दिर केदारनाथ की व्यवस्था

सन् १९३९ ई० तक बदरीनाथ और केदारनाथ के मन्दिरों की व्यवस्था पूर्ण रूपेण रावलों के हाथों में थी लेकिन रावलों के स्वेच्छाचार

ने जब अनेक विवाद खड़े कर दिए तो रावलों को स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध एक आन्दोलन चला जिसका मुख्य संचालन स्वामी वेंकटाचारियर ने किया। स्वामी जी ने १९२८ ई० में यह आन्दोलन शुरू किया था। अन्त में १९३९ ई० में उत्तर प्रदेश सरकार को बदरीनाथ मन्दिर विधेयक पास करना पड़ा। इस अधिनियम में उत्तर प्रदेश सरकार ने १९४१, १९४२, १९४८ और फिर १९५२ में कुछ संशोधन किए। यद्यपि इस अधिनियम का नाम बदरीनाथ मन्दिर अधिनियम रखा गया किन्तु केदार-नाथ मन्दिर और उसके अधीन सभी मन्दिर इसी समिति की व्यवस्था के अन्दर हैं। समिति के विधान और उसके क्रिया कलापों तथा प्रबन्ध समिति के सम्बन्ध में आगे के पृष्ठों में अलग से लिखा जायगा। यहाँ इतना ही लिखना पर्याप्त है कि मन्दिर केदारनाथ का पूर्ण प्रबन्ध अब उक्त समिति के द्वारा ही होता है।

आय के स्रोत

केदारनाथ मन्दिर की आय थाली भेंट, गद्दी भेंट, यात्री भोग, बंधान, मकान किराया, गूंठ गाँवों की माल गुजारी, जीर्णोद्धार दान, सदावर्त फंड एवं आम चढ़ावे से होती हैं। इस आय से कर्मचारियों का वेतन, भत्ता, हकदारों एवं अधीन मन्दिरों के दस्तुरात, नित्यभोग, खाद्यान्न की खरीद एवं दैनिक पूजा के सामान की खरीद, सदावर्त वितरण, छात्रवृत्ति, औष-धालय व मेहमानदारी पर व्यय किया जाता है।

प्रतिवर्ष मन्दिर के आय व्यय की सरकार के लोक फण्ड एकाउण्टस विभाग द्वारा जाँच होती है।

मन्दिर की आय लाखों में है। सन् १९८४ की आय १५ लाख रुपये थी जो कि अब तक कि सर्वाधिक आय थी। इस वर्ष यहाँ १ लाख १३ हजार यात्री आये थे। यह संख्या भी अब तक की अधिकतम है।

केदारनाथ में आवास की व्यवस्था

अधिकांश यात्री केदारनाथ में रात्रि निवास से कतराते हैं। वे बहुधा रामवाड़ा में रात्रिवास करते हैं और प्रातः केदारनाथ जाकर दर्शन पूजन करके फिर रामवाड़ा लौट आते हैं। वैसे केदारनाथ में रात्रि निवास की

पूरी व्यवस्था है। काली कमली धर्मशाला, मंदिर कमेटी की धर्मशाला होटल हिम लोक, ट्रेवलर्स लौज, बिरला अतिथि गृह, सार्वजनिक निर्माण विभाग का निरीक्षण भवन तथा अन्य धर्मशालायें। वहाँ के तीर्थ पुरोहितों के अपने मकान भी वहाँ पर हैं जिनमें वे अपने यजमानों की पूरी व्यवस्था करने में सक्षम होते हैं। आवास के लिए भवनों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि की संभावना है। दानियों के द्वारा भी और मंदिर समिति द्वारा भी।

बाजार

केदारनाथ में एक सुन्दर बाजार है जहाँ दैनिक उपयोग की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं। डाकघर, टेलीफोन, पुलिस स्टेशन व औषधालय की सुविधा भी यहां विद्यमान है।

केदारनाथ का प्राकृतिक वैभव

उत्तराखण्ड के तीर्थ-स्थल जहाँ धार्मिक गाथाओं और भावनाओं से ओत-प्रेत हैं वहाँ प्राकृतिक दृश्यावालियों से भी आवेष्टित हैं। सम्भवतः हमारे पूर्वजों को प्रकृति से अत्यधिक प्रेम था। इसी कारण उत्तराखण्ड के अधिकतर मंदिर बस्तियों से दूर हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर प्रकृति की गोद में स्थित हैं, जहाँ पहुँचकर सांसारिक वस्तुओं से स्वतः ही वैराग्य हो जाता है और ईश्वर की आराधना में चित्तवृत्ति लग जाती है। केदारनाथ का प्राकृतिक वैभव वर्णनातीत है। तीन ओर से गगनचुम्बी हिम धवल शृंग दृष्टि पथ को रोक लेते हैं। इन शिखरों की गोद में केदारपुरी स्वर्ग-लोक की कल्पना को मूर्तरूप देती हुई दिखाई देती है। अब पुरी में विद्युत प्रकाश से और भी आकर्षण पैदा हो गया है। रात के निविड़ अन्धकार में इन हिममण्डित प्रदेश में विद्युत बल्बों की टिमटिमाहट एक अनोखी छटा उत्पन्न कर देती है। इस दृश्य को यदि और ऊँचाइयों से देखा जाये तो आनन्दातिरेक से मनुष्य गद्‌गद् हो जाय।

मन्दिर के निकट ही कलकल निनादिनी मंदाकिनी का उद्‌गम है। इसके अतिरिक्त क्षीरगंगा, मधुगंगा, सरस्वती तथा स्वर्णद्वारी के उद्‌गम स्थान भी मनोरम दृश्य उपस्थित करते हैं। कहा जाता है कि यहाँ पाँच नदियों का संगम होता है।

केदार बदरी के सौन्दर्य का पादरी ओकले ने जो वर्णन किया है वह भी पठनीय है। पादरी ओकले इन पर्वतों की छटा पर मोहित था। अपनी पुस्तक में व लिखता है—'केदारनाथ और बदरीनाथ के युगल शिखर एक दूसरे से केवल १० मील की दूरी पर खड़े हैं। केदारनाथ शिखर २२८५३ फीट और बदरीनाथ शिखर २२९०१ फीट ऊँचा है। धरती पर सम्भवत कहीं भी हिमाच्छादित शिखरों की वह अतुलशोभा नहीं है जो इन दो शिखरों की है। केदारनाथ से थोड़ी ही दूर नीचे मन्दाकिनी की घाटी में एक स्थान से ये दो नुकीले शिखर मानों आकाश को चीरते खड़े प्रतीत होते हैं और इनकी श्वेत पार्श्व जिन पर अनन्त मृदुल और उज्ज्वल हिम फैला है, बड़े विस्मयपूर्ण ढंग से आकाश में स्तम्भ से खड़े हैं। इस दृश्यावली का वर्णन प्रत्येक पर्यटक ने बड़े उत्साह से किया है। यात्री के पैरों के नीचे, जब वह मार्ग में यत्र तत्र हिम पार करता रहता है, हिम के पास ही अत्यन्त मादक सुगन्ध वाले ढेर के ढेर हल्के गुलाबी रंग वाले औरिकुला तथा पीले प्रिमरोज के पुष्प छिटकते मिलते हैं। वह अति प्राचीन एवं घने बांज के वनों से होकर जिनके वृक्षों की शाखाओं पर स्थान स्थान पर मोड़ आये हुए हैं और जिनसे लम्बे श्वेत काई पुंज लटक रहे हैं तथा जिनमें यत्र तत्र बड़े बड़े अखरोट, चेस्टनट, मैपल और हेजल के वृक्ष मिलते हैं। जब वह पर्वतों पर और ऊपर चढ़ता है तो वन कम घने और विरले होने लगते हैं और उसका स्थान गुलाब तथा अत्यन्त तीव्र सुगन्ध वाले सिरंगा पुष्प की झाड़ियाँ ले लेती हैं। अनन्त हिम राशि के पास इन पुष्पों की सुगन्ध इतनी अधिक तीव्र होती है कि कभी कभी पथिक उनके कारण मद विह्वल हो जाते हैं। पुष्पों की इस मादकता के साथ हल्की वायु शरीर में जो दुर्बलता ले आती है अवश्य ही उसके कारण इन स्थानों को जाने वाले यात्री अपने साथ बहुत सी काली मिर्च और लौंग लेकर चलते हैं जिससे फूलों की तीव्र सुगन्ध और हल्की वायु से उनकी रक्षा हो सके।'[1]

'पतले वायुमण्डल में विचित्र ध्वनियाँ भी सुनाई देती हैं जो सम्भवतः अति दूर हिमशिलाओं के टूट कर गिरने से उत्पन्न होती हैं, किन्तु

1. ओकले—होलि हिमालय पृष्ठ १४-४३

जिन्हें श्रद्धालु यात्री क्रीड़ा और मंत्रणा के लिए उपस्थित देवताओं का शब्द मानते हैं। केदार का सारा क्षेत्र मंदिरों और पवित्र स्थानों से भरा पड़ा है, जिनकी स्तुति और महात्म्य के वर्णनों से स्कन्द पुराण भरा है। सचमुच विचित्र बातों के संग्रह (स्कन्द पुराण) के एक विशेष अध्याय या विभाग में केवल इसी प्रदेश का वर्णन है।"[1]

स्वर्गारोहिणी

केदारनाथ मन्दिर के पीछे शिखर पर एक लम्बी सी श्वेत जलधारा दिखाई पड़ती है। यही स्वर्गारोहिणी है। कथा है कि पाण्डव इसी रास्ते से सदेह स्वर्ग गये थे। सुनने में आया है कि अब भी यदा कदा अन्धविश्वासी लोग भृगु पन्थ से सदेह स्वर्ग जाने की चेष्टा करते हैं। केदारनाथ के सर्व-प्रथम यूरोपियन यात्री स्किनर ने लिखा है कि अकेले १८२९ में भृगुपंथ जाकर प्राण उत्सर्ग करने वालों की संख्या १५००० थी। डा० डबराल ने इसे अत्युक्ति कहा है।

गांधी सरोवर

केदारनाथ से ३ किलोमीटर आगे एक ताल है जिसे पहले चोरवाड़ी ताल कहते थे। सन् १९४८ में इस ताल (तालाब) में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की अस्थियां प्रवाहित की गई। तब से इसे गाँधी सरोवर के नाम से जाना जाता है। मन्दाकिनी का उद्गम स्थल यहीं है।

वासुकिताल

पुरी से ८ किलोमीटर की दूरी पर एक बहुत बड़ा सरोवर है जिसे वासुकिताल कहते हैं। इस ताल का सौन्दर्य देखते ही बनता है। इससे आगे ४ किलोमीटर पर मननी देवी का एक मन्दिर है जो भग्न अवस्था में है। पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

शिव पार्वती का प्रतिबिम्ब

केदारनाथ के निकट ही ब्रह्मकूट पर्वत शिखर है, जिसकी ऊँचाई २३०० फीट है। कहते हैं इस शिखर पर शिव पार्वती के प्रतिबिम्ब रूप

1. वही पृष्ठ १४३ (डबराल—उ० या० द० पृष्ठ २६१ पर उद्धृत)

में दर्शन होते हैं। सामने के चित्र को ध्यान से देखने पर बादलों के नी शिवजी की जटायें दृष्टिगोचर होने लगती हैं। उनके नीचे उनका मुख मण्डल दीखता है और पीछे शिवजी की परम शक्ति पार्वती का मुखमंडल दिखाई देता है।

सम्भव है कि भावनावश भक्तगण अपने मस्तिष्क में ऐसी आकृति की कल्पना करके इस प्रकार का प्रतिबिम्ब देखते हों। वैसे जनरवमय वातावरण से दूर प्रकृति की एकान्त गोद में मनुष्य की धार्मिक वृत्तियाँ प्रौढ़तम स्वरूप को प्राप्त कर प्रकृति के तादात्म्य स्थापित कर लेती हैं। प्रकृति ही परमेश्वर है। प्रकृति में कोई परमेश्वर के स्वरूप की झलक पाता है तो इसमें आश्चर्य नहीं है।

केदारनाथ का पूजा विधान व पंडे पुरोहित

केदारनाथ मन्दिर के पूजक को अब रावल कहा जाता है जो कर्नाटक से आते हैं। रावलों के बारे में पूर्व पृष्टों में कहा जा चुका है। यह भी निर्दिष्ट किया जा चुका है कि बदरी-केदार के पूजकों को रावल की उपाधि श्रीनगर दरबार ने प्रदान की थी। राहुल का मत है कि ३-४ शताब्दियों पहले से ही यहाँ दक्षिण के धर्माचार्य रावल आने लगे। प्राचीन काल में यहाँ लकुलीशि शैवों की प्रधानता थी। पहले यहाँ शैवमत के ब्राह्मण ही पूजक थे।

रावल पहले सर्वेसर्वा था किन्तु अब वह मन्दिर समिति के अधीन है। पहले रावल को अन्य पुजारियों को नियुक्त करने और हटाने का अधिकार प्राप्त था। अब यह सारा कार्य मन्दिर समिति करती है। अब ये सभी वेतन भोगी कर्मचारी हैं। मन्दिर की सम्पत्ति में से ये कुछ नहीं ले सकते। ऊपर कहा जा चुका है कि रावल मन्दिर में स्वयं पूजा नहीं करता उसके शिष्य करते हैं। पद के कारण उसका महत्व है। घृत, चन्दन, विल्वपत्र व कमल पुष्पों से यहां पूजा होती है।

पुरोहित

केदारनाथ मन्दिर में रवि गांव के ब्राह्मण पुरोहित का कार्य करते हैं। मन्दिर समिति के आदेश पर ये लोग मन्दिर में यज्ञादि धार्मिक कर्म

करते हैं। दो व्यक्तियों को इनमें से यात्राकाल में हमेशा यहाँ अपनी उपस्थिति देनी पड़ती है।

पंडे

केदारनाथ के पंडे नीचे की उपत्यका में गुप्तकाशी के आस-पास के गांवों में रहते हैं ये पंडे बड़े मधुर भाषी हैं और अपने यजमानों को हर प्रकार की सुविधा देने में तत्पर रहते हैं। ये बड़े सन्तोषी प्रकृति के हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने कभी किसी यात्री को यह कहते नहीं सुना कि केदारनाथ के पंडों ने लूटा है।

पन्नालाल का मत

वदरी-केदार के पंडों के सम्बन्ध में पन्नालाल ने अपनी पुस्तक कस्टमरी लौ में लिखा है कि ये पंडे एक प्रकार के धार्मिक गाइड हैं। उन्होंने लिखा है—'इन लोगों को तीर्थ यात्रियों के गाइड होने का एकाधिकार प्राप्त है और विभिन्न तीर्थों पर यात्रियों के संकल्प लेने का भी एकाधिकार इन्हीं को है किसी भी मंदिर के प्रबन्ध में उनका कोई हाथ नहीं होता। न किसी मंदिर की सम्पत्ति में या चढ़ावे में उनका कोई अधिकार होता है। पंडों में मुख्य देव प्रयागी पंडा है, जिनका सम्बन्ध वदरीनाथ की यात्रा से और वदरीनाथ के निकट तप्त कुण्ड से है। केदारनाथ के पंडा, जिनका सम्वन्ध रुद्रप्रयाग से ऊपर मन्दाकिनी उपत्यका के मंदिरों से है, इसी घाटी के गांवों में रहते हैं।[1]

वास्तव में पंडे लोग एक प्रकार के कुशल पथ प्रदर्शक हैं। ये लोग शीत काल में मैदानों में जाकर अपने यजमानों को यात्रा के लिए प्रेरित करते हैं। उनकी आवास व भोजन की व्यवस्था करते हैं। संगमों व कुंडों में स्नान कराते समय संकल्प कराते हैं। उनकी दक्षिणा इनको अलग से मिलती है। अन्य व्यवस्थाओं का अलग पैसा मिलता है।

मन्दिर को भेंट, चढ़ावा और दक्षिणा

यात्री मंदाकिनी में स्नान करते हैं और अपने पंडे को दक्षिणा देते हैं। यदि यात्री यहाँ श्राद्ध करता है तो भी वह अपने पंडे को ही दक्षिणा देता है।

1. पन्नालाल—कस्टमरी लौ, (डा० डबराल की पुस्तक में उद्धृत)

उसके वाद यात्री मन्दिर में जाता है। उसका पण्डा भी उसके मन्दिर में जाता है और पूजा के कार्य में उसकी सहायता करता है। सं में यात्री से कमल पुष्प, रुद्राभिषेक तथा वृषभ दान के नाम पर अ केवल दान के नाम पर कुछ दक्षिणा लेते हैं। यह दक्षिणा-दान भी पंडों ही मिलता है। यदि यात्री चाहें तो उनका पण्डा उनसे केदार शिला आलिंगन भी करवाता है।[1]

केदारनाथ मन्दिर में वदरीनाथ की भाँति पूजायें नहीं लगती, य मन्दिर को यात्रियों से उतना लाभ नहीं होता जितना बदरीनाथ में हो है। यहाँ थाली भेंट, गद्दी भेंट या केदारनाथ भगवान के नाम पर ज चढ़ावा होता है वही मन्दिर के कोष में जमा होता है। छोटे देवताओं प भी जो कुछ चढ़वा है वह भी मन्दिर के कोष में जमा होता हैं। यात्री उदक कुण्ड में जल पीने का भी पैसा लिया जाता है। वह भी मन्दिर को में जाता है। अन्नपूर्णा व नव दुर्गा के मन्दिरों में चढ़ने वाली भेंट भी पण्ड वर्ग में बांटी जाती है। हँस कुण्ड व रेत कुण्ड में जो भेंट चढ़ती है वह भ पण्डों में बाँटी जाती है या यात्री अपने पण्डे को देता है।

स्वर्गद्वारी, संकटेश्वर, वासुकि ताल और चोराबाड़ी ताल भी यहाँ के तीर्थस्थल हैं। जो पण्डा यात्री के साथ वहाँ जाते हैं उन्हीं को वहाँ की भेंट मिलती है।

यात्रा समाप्त होने पर पण्डा अपने यजमान को अन्तिम आशीर्वाद देता है और उससे अन्तिम दक्षिणा भी लेता है। केदारनाथ के पण्डों की एक विशेषता देखने को मिलती है, ये पण्डे बड़े सन्तोषी हैं। कभी भी वे अपने यजमान को तंग नहीं करते जैसे अन्य तीर्थों में किया जाता है।

केदारनाथ के पंडे नीचे घाटी के गाँवों में रहते हैं। पसालत, वामसू, देवली, किमाणा इनके मुख्य गाँव हैं। सेमवाल, बगवाड़ी, शुक्ला, अवस्थी आदि इनकी जातियाँ हैं।

केदारनाथ के बनिया लोग भैरव के मन्दिर में भेंट चढ़ाते हैं। यहाँ के पशु चारक भी अपने पशुओं की रक्षा की कामना से यहाँ भेंट चढ़ाते हैं।

1. डा० डबराल—उ० या० द० पृष्ठ ४२७

भैरव यहाँ केदारनाथ का रक्षक माना जाता है। आषाढ़ मास में यहां भैरव का भण्डारा होता है। पशुचारकों की सारी भेंट पर पण्डा समाज का अधिकार होता है।

रक्षाबन्धन के दिन केदारनाथ में एक मेला लगता है जिसे भतूज का मेला कहते हैं। इस दिन केदारनाथ के लिंग पर भात लगाने की प्रथा है। इसे अन्नकूट दर्शन भी कहते हैं।

केदारनाथ के सम्बन्ध में अन्य सूचनायें

ऊँचाई—३५८१ मीटर

जलवायु—नवम्बर से अप्रैल तक हिमाच्छादित, मई से नवम्बर तक शीताधिक्य

वर्षा—जुलाई से सितम्बर तक

तापमान—

अधिकतम—१७.९° से० (अगस्त में)

न्यूनतम — ५.६° से० (अक्टूबर में)

कपड़े—हर ऋतु में ऊनी वस्त्र आवश्यक

यात्रा के लिए उत्तम काल—मई से जून और सितम्बर से अक्टूबर

प्रयुक्त भाषायें—हिन्दी, अंग्रेजी व गढ़वाली

प्रमुख स्थानों की दूरी

मसूरी—२५१ कि० मी०

ऋषिकेश—२२८ कि० मी०

बदरीनाथ—१६८ कि० मी० (पुराना मार्ग)

श्रीनगर—१०७ कि० मी०

कोटद्वार—२४२ कि० मी०

दिल्ली—४७४ कि० मी०

निकटतम हवाई अड्डा—जौलीग्रांट ऋषिकेश से १८ कि० दूरी पर

११

केदारनाथ से बदरीनाथ की ओर

केदारनाथ से बदरीनाथ जाने के लिए दो मार्ग हैं। एक ऊखीमठ-चोपता, मंडल, गोपेश्वर, चमोली होकर और दूसरा वापिस रुद्रप्रय आकर कर्णप्रयाग—नन्द प्रयाग होकर। पुराने समय में यात्री केदारन से नाला तक उसी रास्ते वापिस आकर ऊखीमठ के रास्ते चमोली (ला सांगा) होकर बदरीनाथ चले जाते थे। बहुत पहले सारा मार्ग पैदल था किन्तु बाद में जब मोटरीय यातायात चालू हो गया तो ऊखीमठ चमोली तक फिर भी यात्री पैदल ही यात्रा करते रहे। जो यात्री मोटर यात्रा करना चाहते थे उन्हें रुद्र प्रयाग तक उसी मार्ग पर वापिस आन पड़ता था और फिर रुद्रप्रयाग से सीधे बदरीनाथ। अब ऊखीमठ से सी चमोली तक मोटर मार्ग बन गया है। मार्ग बहुत ही सुहावना है। सघ वनों के बीच से होकर मोटर मार्ग गया है। मार्ग में चाय आदि की दुका हैं। चोपता नामक पड़ाव पर बढ़िया दूध भी मिलता है। चोपता से एक पैदल मार्ग (७ कि० मी०) तुंगनाथ को गया है। उत्तराखंड के मन्दिरों मे तुंगनाथ सबसे ऊँचाई पर अवस्थित विशाल मन्दिर है। इसका वर्णन 'पञ्च-केदार' में अलग से किया जाएगा।

ऊखीमठ से चमोली वाले मोटर मार्ग में जब मार्ग अवरुद्ध की सूचना मिले तो यात्रियों को रुद्रप्रयाग लौटकर बदरीनाथ की ओर मुड़ना चाहिए विशेषकर वर्षा ऋतु में ऊखीमठ-चमोली मोटर मार्ग के अवरुद्ध होने की सम्भावना बनी रहती है। निजी वाहन वाले यात्रियों को केदारनाथ से गुप्तकाशी से कुण्ड होकर ऊखीमठ के लिए मोटर मार्ग सुलभ है। अतः ऊखीमठ तक यात्रियों को अवश्य जाना चाहिए। अब इस मोटर मार्ग के सम्बन्ध में पूरी सूचना गौरी कुंड में मिल जाती है। यहाँ से बदरीनाथ के लिए सीधी बस मिल जाती है।

ऊखीमठ

केदारनाथ से लौटकर पैदल यात्री नाला तक उसी रास्ते पर लौटते हैं। नाला से उखीमठ के लिए नीचे उतरना पड़ता है। मन्दाकिनी को पार कर ५ किलोमीटर पर ऊखीमठ का प्राचीन मन्दिर है। ऊखीमठ की ऊँचाई समुद्र तट से ४५०० फीट है, यह केदारेश्वर भगवान का गद्दी स्थान है। शीताधिक्य के कारण जब ६ मास के लिए केदार अगम्य हो जाता है तो केदारेश्वर की उत्सव मूर्ति (चल प्रतिमा) का पूजन यहीं होता है। ६ मास तक केदारनाथ का रावल यहीं रहता है। ऊखीमठ का मन्दिर एक पत्थरों के चबूतरे पर बना है। मन्दिर गढ़ी हुई पाषाण शिलाओं से बना है। मन्दिर का शिखर कत्यूरी शैली का है। संभवतः ऊँचाई में यह मन्दिर उत्तराखंड के सभी मन्दिरों में ऊँचा है।

केदारेश्वर की गद्दी के पास ही स्वर्णमयी पंचमुखी महादेव की मूर्ति निकट ही वस्त्राभूषणों से सुसज्जित पार्वती की मूर्ति है। दूसरे कमरे में कुन्ती और द्रौपदी सहित पाँचों पाण्डवों की मूर्तियाँ हैं। बदरीनाथ तुंगनाथ ओंकारेश्वर महादेव, सम्राट मान्धाता और ऊषा-अनिरुद्ध की मूर्तियाँ भी मन्दिर के अन्दर हैं। मदमहेश्वर की चल प्रतिमा तथा तीन सिंहासनों पर आदि बदरी व केदार पार्वती की मूर्तियां हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार पूर्वकाल में यहाँ बाणासुर रहता था, उसकी एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम ऊषा था। श्री कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से ऊषा का प्रणय हो गया था। कहते हैं इसी ऊखीमठ में अनिरुद्ध और ऊषा का विवाह हुआ था। मन्दिर में ऊषा-अनिरुद्ध की मूर्तियों के अलावा चित्रलेखा, काली, अर्द्धनारीश्वर तथा विष्णु भगवान आदि की मूर्तियां हैं।

ऊखीमठ में पुलिस स्टेशन, अस्पताल, डाकखाना, तहसील, स्टेट बैंक और एक सुन्दर-सा बाजार मौजूद है जहाँ दैनिक उपयोग की वस्तुएं मिल जाती हैं। ऊखीमठ के निकट नदी के उस पार उत्तराखंड विद्यापीठ है। जहाँ संस्कृत, ज्योतिष व आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती है। ऊखीमठ तक यातायात की सुविधा भी उपलब्ध है। गौरीकुंड से सीधे बदरीनाथ की

बस पकड़ने वाले यात्रियों को ऊखीमठ देखने का अवसर नहीं मिलता चोपता होकर सीधे चमोली निकल जाते हैं।

कालीमठ

कालीमठ के लिए नाला चट्टी से पैदल मार्ग जाता है। अब कालीमठ उत्तराखंड की एक प्रसिद्ध सिद्ध पीठ है। यहाँ महाकाली, महालक्ष्मी और महा सरस्वती के मन्दिर है। यह क्षेत्र पुराणों में कालीक्षेत्र के नाम से पुकारा गया है। स्कन्द पुराण-केदारखण्ड में इसका महात्म्य वर्णित है। काली मन्दिर में भगवती काली की शव-वाहिनी मूर्ति तथा पास ही एक कुण्डी है जिसमें कालरात्रि को काली को बलि पूजा देने की प्रथा है। कथा है कि इस स्थान पर इन्द्रादि देवताओं ने रक्तवीज दैत्य के वध की कामना से भगवती काली की तपस्या की थी। भगवती ने उन्हें काली रूप में दर्शन देकर अभय दान दिया था। तव से इस स्थान का नाम कालीमठ विख्यात है।[1]

एक किंवदन्ती के अनुसार कवि कालीदास का सम्बन्ध भी इस सिद्ध पीठ से जोड़ा जाता है। कहते हैं कालीदास ने यहीं देवी की आराधना कर विद्या की सिद्धि प्राप्त की थी। कुछ विद्वानों ने कालीदास की जन्म भूमि भी यहीं बतलाई है। उनके अनुसार कालीदास का जन्म यहाँ के कबीठा गाँव में हुआ था। संस्कृत भाषा की विदुषी श्रीमती कमला रत्नम का भी यही कहना है कि महाकवि कालीदास यहीं जन्मे थे। श्रीमती रत्नम् ने इसी दृष्टि से सन् १९८४ में कबीठा गाँव की यात्रा भी की थी। वह कई वर्षो से अन्तः साक्ष्य और बाह्य साक्ष्यों को एकत्र कर इस धारणा को पुष्ट करना चाहती हैं।

यहां कुछ खंडित मूर्तियाँ, शिवलिंग, गणेश तथा मयूरारूढ़ कार्तिकेय की मूर्ति है। यहाँ दो वस्तुएँ बड़ी दुर्लभ एवं पुरातात्विक दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण है, एक शिलालेख और दूसरी हरगौरी की मूर्ति।

शिलालेख के सम्बन्ध में महापंडित राहुल का विवरण इस प्रकार है—लक्ष्मी मन्दिर के साथ एक लम्बा-सा मंडप है जिसकी बाहरी दीवार

1. महीधर शर्मा—तपोभूमि उत्तराखंड पृष्ठ ११५ :

के सामने एक बड़ा शिलालेख है। लेख २० इन्च लम्बा और १० इन्च चौड़ा है। इसमें कुल १८ पंक्तियाँ हैं। लिपि कत्यूरी ताम्र लेखों की है, जो दसवीं व बारहवीं शताब्दियों के आसपास की हो सकती है। लेख से मालूम होता है कि गिरिपति मन्दिर के संरक्षक को रुद्रनाम के सामन्त के पुत्र (रुद्रसेन) सर्व संग्रामाजित बालपन ही हो गए थे। उन्होंने इस मन्दिर को बनवाया था।[1]

हरगौरी की मूर्ति के सम्बन्ध में भी राहुल का वर्णन महत्त्वपूर्ण है।

'मैं इसे अतिशयोक्ति नहीं समझता, यदि कहूँ कि आज सारे भारत में इतनी सुन्दर अखंड हरगौरी की मूर्ति कहीं भी नहीं। युगल मूर्ति ४० इन्च लम्बी तथा २४ इन्च चौड़ी एक शिला से बनाई गई है। मैं मैंखड़ा की खंडित हरगौरी की मूर्ति से ही बहुत प्रभावित था, किन्तु यहाँ मैंने शोभा और सौन्दर्य में अद्वितीय इस हरगौरी की मूर्ति को देखा। इसकी कोमल वंकिम रेखाओं में वही सौन्दर्य भरा था जो कि अजन्ता के चित्रों में दिखाई पड़ता है, वल्कि पत्थर ऐसा तत्वंग उत्कीर्ण करना सम्भव हो सकता है, इस पर आंखें विश्वास नहीं करती थीं, ललितासनस्थ हर के वामांक में अनुपम सौन्दर्य राशि की मूर्ति वनकर भूधर सुता विराजमान हैं, शिव चतुर्भुज हैं किन्तु गौरी साधारण मावनी की तरह द्विभुज, नीचे गणेश और मयूरारुढ़ कार्तिकेय की मूर्तियाँ हैं। वहीं उस कला प्रेम भक्त की भी मूर्ति है जिसने इस सुन्दर मूर्ति के निर्माण करने का व्यय वहन किया था। मेरा मन तो कहने लगा कि वह शायद रुद्रसुत ही हो। तब यह मूर्ति यहाँ की प्रधान मूर्ति रही होगी। आश्चर्य और अत्यन्त प्रसन्नता भी मुझे यह देखकर हो रही थी कि यह कलाराशि रुहेलों के प्रहार से कैसे बच गई।'[2]

नवरात्रि में यहां काफी भीड़ रहती है। दूर-दूर से लोग इस सिद्धपीठ के दर्शनार्थ आज भी बड़ी संख्या में यहां आते हैं। पशुबलि की घृणित प्रथा यहाँ अभी तक चालू है, जिसे आज का सभ्य समाज अच्छा नहीं समझता।

1. राहुल—गढ़वाल पृष्ठ ४४० ।
2. राहुल—गढ़वाल पृष्ठ ४४२ ।

कालीमठ से कुछ ही दूरी पर कालशिला है। यहाँ ६४ यंत्र विभि: देवियों के बताए जाते हैं। कहते हैं कि रक्तबीज से युद्ध के समय इन्हें यंत्रों से शक्तियों का प्राकट्य हुआ था। कालीमठ से सात मील की दूर पर रांसी में राकेश्वरी देवी का मन्दिर व छोटी-सी धर्मशाला है। इससे : मील और आगे कोटि माहेश्वरी का मन्दिर है। यही मार्ग आगे मदमहेश्व: को चला जाता है जिसका वर्णन आगे किया जाएगा। कालीमठ घाटी की प्राकृतिक सुषमा भी मनमोहक है। कालीमठ में पहले देव दासियाँ हुआ करती थीं। अब यह प्रथा बन्द हो गई है। अब कालीमठ जाने के लिए मोटर यातायात की सुविधा हो गई है।

१८

पञ्चकेदार

उत्तराखण्ड के पञ्चकेदार प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रथम श्री केदारनाथ जी, दूसरा मदमहेश्वर, तीसरा तुङ्गनाथ, चौथा रुद्रनाथ और पाँचवाँ कल्पेश्वर है। श्री केदारनाथ के सम्बन्ध में पिछले अध्याय में विस्तार से लिखा गया है।

मदमहेश्वर या मध्यमेश्वर

उत्तराखण्ड के इन तीर्थों के सम्बन्ध में एटकिनसन, मि० ट्रेल, बेटन, राहुल, पन्नालाल, गैरोला, हरिकृष्ण रतूड़ी, पातीराम, ओकले, डा० डबराल, के० एम० मुन्शी आदि विद्वानों ने काफी प्रकाश डाला है किन्तु 'मदमहेश्वर' या 'मध्यमेश्वर' नामकरण के सम्बन्ध में किसी ने भी चर्चा नहीं की कि यह नाम क्यों पड़ा ?

पंच केदारों में मदमहेश्वर दूसरा है जहां शिवजी की नाभि प्रतिष्ठित हुई थी। नाभि की आकृति का शिवलिंग यहाँ स्थापित है। यह स्थान ऊखीमठ से कालीमठ के रास्ते २९ किलोमीटर है। रास्ता दुर्गम तथा चढ़ाई का है। मदमहेश्वर भगवान का प्राचीन मन्दिर है। यात्री यहाँ बहुत कम जाते हैं। यहां के पुजारी की नियुक्ति केदारनाथ का रावल करता है। उसी को पुजारी की सेवा समाप्त करने का भी अधिकार है। यहाँ वंश परम्परा से कोई कर्मचारी नहीं होता। किसी पंडे का भी यहाँ कोई अधिकार नहीं।

पूजा के अलावा अन्य कार्य यहाँ गौंडार गाँव के पंवार लोग करते हैं। इन पंवारों के चार परिवार हैं। जो बारी-बारी से यहां भोग पकाने व चन्दन घोटने आदि का कार्य करते हैं। मन्दिर में जो चढ़ावा चढ़ता है, उसका कुछ भाग केदारनाथ मन्दिर कोष में जमा हो जाता है और कुछ

भाग पंवार लोगों में बांटा जाता है। इस स्थान की ऊँचाई ९७०० फी है, स्थान रमणीक है। ग्रीष्म ऋतु में यहाँ गूजर लोग अपने पशुओं क चराते हैं। यहाँ ब्रह्मकमल बहुतायत से खिलता है।

तुङ्गनाथ

पंचकेदारों में यह तीसरा है। तुंगनाथ जाने के लिए ऊखीमठ से रास्ता जाता है। पैदल मार्ग से २३ किलोमीटर पड़ता है। अब चोपता तक मोटर मार्ग की सुविधा हो गई है। चोपता से ७ किलोमीटर पैदल चलकर उत्तराखण्ड के सबसे ऊँचाई पर बसे मन्दिर में यात्री पहुँचता है। रास्ता एकदम चढ़ाई का है। किन्तु प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों को देख कर थकान विस्मृत हो जाती है।

सिन्धुतट से तुंगनाथ की ऊँचाई १२०७० फीट है। मन्दिर तराशे हुए पाषाणों से बना है। मन्दिर में महादेव के अलावा अन्य कई छोटी मूर्तियाँ हैं। शिवजी की बाहु आकृति वाला स्वयं-भू लिंग है। शंकारार्य की मूर्ति भी यहाँ स्थापित है। कहते हैं इस मन्दिर को शंकराचार्य जी ने बनवाया था। इस मन्दिर की पूजा व्यवस्था के लिए टिहरी दरबार की ओर से गूँठ गाँव लगे हैं। इस मन्दिर के पुजारी मक्कू गाँव के मैठाणी ब्राह्मण हैं। इनका अधिकार वंश परम्परागत है तथा प्रतिनिधि भी नियुक्त कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें नौ रुपये भूमिकर वाली भूमि दी गई है।

मन्दिर में ग्रीष्म ऋतु में केवल ६ मास ही पूजा हो पाती है। शेष दिनों तुंगनाथ भगवान की चल प्रतिमा की पूजा मक्कूमठ में होती है।

तुंगनाथ शिखर के पास पापनाशिनी आकाश गंगा नामक जलधार निकलती है। मन्दिर के कुछ ऊपर चलकर रावण शिला है। कहते हैं रावण ने यहाँ तपस्या की थी। आवास के लिए यहाँ काली कमली की धर्मशाला और पुजारी लोगों के मकान हैं। होटलों में चाय और सामान्य भोजन मिल जाता है, गढ़वाल विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग ने पौधों के अध्ययन के लिए एक प्रयोगशाला स्थापित की है।

सौन्दर्य का आगार तुङ्गनाथ

प्रकृति की रचना कौशल का करिश्मा यदि किसी को देखना हो तो वह तुंगनाथ जाकर देखे। हिमालय की हिमधवल चोटियों का जो विस्मय-कारी दृश्य यहाँ दिखाई देता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। पूर्व की ओर दृष्टि डालने पर नन्दा देवी, पंचचूली और द्रोणाचल शिखरों की श्रृंखला का अनन्त सिलसिला दिखाई देता है। उत्तर की ओर रुद्रनाथ, वदरीनाथ चतुः स्तंभ, केदारनाथ, गंगोत्तरी-यमनोत्तरी के गगनचुम्बी शृंग दृष्टिपथ को रोके खड़े हैं। दक्षिण में पौड़ी का कंडोलिया पर्वत व पश्चिम में चन्द्रवदनी गुरु माणिक नाथ आदि शिखर दृष्टिगोचर होते हैं।

पर्वतों के वक्ष को फोड़कर निकलने वाले विभिन्न जल प्रपात अपने फेनिल प्रवाह से प्रकृति के आंगन में अनोखा दृश्य उपस्थित कर देते हैं। तुंगनाथ से नीचे ढलान पर दृष्टि डाले तो प्रकृति का सजा सजाया पुष्पोद्यान (अगस्त-सितम्बर में) नेत्रों को वर्णनातीत सुख प्रदान करता है।

बैटन का तुङ्गनाथ वर्णन

"जिन्हें तुंगनाथ के वनों में भ्रमण करने का अवसर मिला है अथवा जिन्हें देवरिया ताल के तट पर एक दिन भी व्यतीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे गढ़वाल नागपुर की उपत्यका को कभी नहीं भूल पाएँगे। सारी ऊपरली पट्टियों में इतनी सुन्दर दृश्यावलियां मिलती रहती हैं जिनके समान सुन्दर और महान अन्यत्र नहीं मिल सकती और साधारण यात्री भी सरलता से उन तक पहुंच सकता है। इतने अद्भुत सौन्दर्य का भण्डार कहां मिलेगा ?" (एटकिनसन की पुस्तकें-हिमायन डिस्ट्रिक्टस खण्ड ३ से डा० डबराल द्वारा उद्धृत)

तुंगनाथ प्रदेश का सौन्दर्य देखने के लिए प्रकृति प्रेमियों को अगस्त-सितम्बर में यहाँ की यात्रा करनी चाहिए। उन दिनों की हरितिमा और भांति के पुष्प सौन्दर्य की जो सृष्टि रचते हैं वह देखने लायक है।

रुद्रनाथ

सिन्धु तट से ११६७० फीट ऊँचा रुद्रनाथ चतुर्थ केदार है। यहाँ पहुंचने के लिए दो मार्ग हैं। यदि यात्री उखीमठ से तुंगनाथ की यात्रा पर

जावें तो उन्हें वापिस चोपता आकर मंडल गोपेश्वर मार्ग पर आगे बढ़
चाहिए जो मोटर मार्ग भी है जंगल चट्टी और पांगरवासा होकर मण्ड
पहुँचा जाता है। यहीं से अनुसूया देवी (अत्रि आश्रम) होकर रुद्रनाथ ज
का मार्ग है। जो यात्री रुद्रप्रयाग से वदरीनाथ मार्ग पर आगे बढ़ते हैं उ
चमोली में पुल पारकर जनपद चमोली के मुख्यालय गोपेश्वर से मण्ड
होकर ही रुद्रनाथ जाना पड़ता है।

रुद्रनाथ में भगवान पंचानन की एकानन मूर्ति की पूजा होती है
सम्भवत: यह भारत में अकेला तीर्थ है जहां शिवजी के शीश की पूज
होती है। स्कन्द पुराण के अनुसार भगवान शंकर अंधकासुर का वध कर
रुद्रनाथ में निवास करने लगे थे। इस क्षेत्र में पितरों को तारने वाली
वैतरणी गंगा वहती हैं, जिसमें पिण्डदान का बड़ा महात्म्य है। रुद्रेश्वर
महादेव का यहाँ प्राचीन मन्दिर है। कहते हैं शिवजी की जो एकानन मूर्ति
यहाँ है वह स्यंभू (अपने आप प्रकट) है। यहाँ अन्य छोटे मन्दिर और
मूर्तियाँ भी हैं।

रुद्रनाथ में भगवान शिव की पूजा केवल ६ मास होती है। शीतकाल
में वह पूजा गोपेश्वर में होती है जहाँ रुद्रनाथ का गद्दी स्थान है। यह मंदिर
गोपेश्वर के रावल के अधीन ही रहता है। वही रावल यहाँ का भी पुजारी
होता है। वह किसी लिंगायत या गोपेश्वर के किसी भट्ट को यहाँ पूजा
कार्य के लिए नियुक्त कर सकता है। यहाँ का चढ़ावा गोपेश्वर कोष में
जमा होता है।

रुद्रनाथ में अनेक प्रकार के प्राकृतिक दृश्य दर्शक को मुग्ध करते हैं।
यहाँ की फूलों की घाटियाँ प्रसिद्ध हैं।

कल्पेश्वर

कल्पेश्वर पंचकेदारों में पांचवां केदार है। यहां शिवजी की जटायें
प्रतिष्ठित हुई थीं, कल्पेश्वर जाने के लिए वदरीनाथ मार्ग पर पीपल कोटी
से आगे हेलंग (कुमारचट्टी) तक मोटर मार्ग सुलभ है। हेलंग से अलकनंदा
को पारकर १० किलोमीटर पर एक गाँव मिलता है, जिसका नाम उर्गम
(अर्जम) है। कहते हैं पूर्व काल में यहाँ अर्जमुनि ने तपस्या की थी। तभी
से इसका नाम उर्गम पड़ा।

केदारखण्ड के अनुसार इस स्थान पर इन्द्र ने दुर्वासा मुनि के श्राप से मुक्ति पाने के लिए शंकर भगवान की आराधना कर कल्पतरु प्राप्त किया था और पुन: श्रीयुक्त हुए थे। तब से शिवजी यहाँ कल्पेश्वर के नाम से विख्यात हुए। यहाँ शंकर का जटा आकृति वाला स्वयं-भू लिंग है। यहाँ से होकर कर्मनाशा नदी बहती है। कल्पेश्वर की प्राकृतिक छटा देखने योग्य है। यहाँ ध्यान बदरी (पंच बदरियों में से एक) का भी मन्दिर है।

१३

रुद्र प्रयाग से बदरीनाथ

रुद्र प्रयाग से बदरीनाथ के लिए अलकनन्दा के दाहिने किनारे जो मोटर मार्ग आगे को बढ़ रहा है, यही सीधा गौचर, कर्ण प्रयाग, नन्द-प्रयाग, चमोली, पीपलकोटी और जोशीमठ होते हुए बदरीनाथ को चला गया है। ऊखीमठ-गोपेश्वर मार्ग अवरुद्ध होने की दशा में केदारनाथ से यात्री को रुद्रप्रयाग वापिस आकर ही बदरीनाथ की ओर जाना होता है। जो यात्री केवल बदरीनाथ की ही यात्रा करते हैं, उन्हें ऋषिकेश से सीधे बदरीनाथ का टिकट लेना पड़ता है। ऋषिकेश से प्रातः चलने वाली यात्री बस बहुधा उस दिन शाम को जोशीमठ रुकती है। निजी वाहन वाले यात्री सीधे बदरीनाथ तक जा सकते हैं। आइये, रुद्र प्रयाग से बदरीनाथ की ओर बढ़ें।

रुद्र प्रयाग से बदरीनाथ तक की दूरी बस से १५६ किलोमीटर है। पैदल यात्री भी मोटर मार्ग पर ही चलते हैं। अतः पैदल यात्रियों की सुविधा के लिए मार्ग के कुछ छोटे स्थानों का वर्णन भी किया जा रहा है।

सुमेरपुर

रुद्र प्रयाग से ४ किलोमीटर पर सुमेर पुर है। सुमेर पुर से लगभग ७ किलोमीटर की दूरी पर शिवानन्दी है। यहाँ चाय आदि की दुकानें हैं। डाकघर, धर्मशाला व एक विष्णु मन्दिर है, कहते हैं गढ़वाल नरेश के एक मन्त्री शिवानन्द नाम के थे। उन्होंने यहाँ विष्णु मन्दिर बनवाया था। उन्हीं के नाम से इस स्थान का नाम शिवानन्दी पड़ा।

शिवानन्दी से ३ किलोमीटर नगरासू। यहाँ सरकारी डाक बंगला है। स्थान रमणीक है, यहाँ से ८ किलोमीटर पर गौचर है।

गौचर

गौचर चारों ओर से ऊँची-ऊँची पर्वत श्रेणियों से घिरा बहुत ही रम-णीक स्थान है। एक मील लम्बा व चौड़ा मैदान है। मई सन् १९३८ ई० में भारत रत्न पण्डित जवाहर लाल नेहरू अपनी बहिन श्रीमती विजय क्ष्मी पंडित सहित हवाई जहाज से यहाँ उतरे थे। उससे पूर्व १९३५ में ारत के तत्कालीन वायसराय की धर्म पत्नी लेडी विलिंगडन भी हवाई जहाज से गौचर उतरी थी, तब से गौचर का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ने लगा।

गौचर की प्रसिद्धी का सबसे बड़ा कारण है उसमें हर साल नवम्बर मास में लगने वाला सप्तदिवसीय औद्योगिक मेला। यह औद्योगिक मेला सर्वप्रथम १९४३ में लगा था। आज गौचर का मेला उत्तर प्रदेश के प्रसिद्ध मेलों में गिना जाता है। आरम्भ में गौचर मेला सीमान्त क्षेत्र के भोटिया लोगों के ऊनी उत्पादन की बिक्री और उनकी आवश्यकताओं की खरीद के लिए आयोजित होता था किन्तु बाद में यह औद्योगिक एवं विकास मेला के नाम से विख्यात हो गया। अब इसका आयोजन सरकारी तौर पर होता है। मेले का उद्घाटन प्रतिवर्ष पं० नेहरू के जन्म दिवस १४ नवम्बर को किसी विशिष्ट व्यक्ति के द्वारा होता है।

यहाँ सुन्दर बाजार, डाक-तार घर, पुलिस स्टेशन, टेलीफोन, बालक-बालिकाओं के विद्यालय और काली कमली की धर्मशाला है। गढ़वाल मंडल विकास निगम ने यहाँ एक पर्यटक आवास गृह भी बनाया है। अब यह स्थान सामाजिक गतिविधियों का भी केन्द्र बनता जा रहा है। यहाँ जन-जागरण के लिए श्री सतेश्वर आजाद और पत्रकार श्री रमेश गैरोला की सेवाओं को हमेशा याद किया जाएगा। श्री रमेश गैरोला ने गौचर में प्रेस स्थापित कर यहाँ से अनिकेत नाम के अखबार को निकालकर जन जागृति का शंखनाद किया है। इसी प्रकार श्री सतेश्वर आजाद ने यह वनिता समाज की उन्नति के लिए ग्राम स्वराज्य संस्था स्थापित क महिलाओं में जागृति लाने के लिए श्लाघनीय कार्य किया है।

गौचर की प्राकृतिक सुषमा वर्णनीय है, चारों ओर पहाड़ियों पर व छोटे-छोटे गांव व सीढ़ी नुमा खेत देखने में आकर्षक लगते हैं।

चटवापीपल

गौचर से ३ किलोमीटर की दूरी पर चटवापीपल नामक स्थान है छोटा-सा बाजार है, समीप ही अलकनन्दा नदी बहती है यहाँ पर ॐ सम्प्रदाय का एक मन्दिर है। बाजार के निकट ही नदी तट पर शान्ति सदन नामक एक संस्था है जिसके संस्थापक पण्डित शालिगराम वैष्णव थे। श्री वैष्णव ने यहाँ पर अपने एकमात्र होनहार पुत्र गोविन्द प्रसाद जिसकी युवावस्था में ही मृत्यु हो गई थी, की स्मृति में एक संस्कृत पाठशाला भी, "गोविन्द पाठशाला" के नाम से प्रारम्भ की थी। चटवापीपल से ७ किलोमीटर की दूरी पर कर्णप्रयाग है।

कर्णप्रयाग

अजेयत्वं महावीरः क्षेत्रनाम तथा ददौ ।
कर्णप्रयाग नाम्ना वै क्षेत्रं तदवधि स्मृतम् ॥

—केदार खण्ड—बदरी म०

उत्तराखण्ड के पञ्चप्रयागों में से कर्ण प्रयाग तृतीय प्रयाग है। यह पिंडारीबांक से निकलती हुई पिंडरनदी और अलकनन्दा के संगम पर बसा हुआ है। सुन्दर आधुनिक बाजार है। जीवनोपयोगी सभी आवश्यक वस्तुएँ यहाँ मिल जाती हैं।

पिंडर के पुल को पारकर थोड़ा ऊपर उमादेवी का प्राचीन मन्दिर है, जो कत्यूरीशैली के मन्दिरों में गिना जाता है। मन्दिर भव्य है। पिंडर के दाहिने किनारे पर कर्ण का मन्दिर है। संगम पर कर्णशिला व कर्ण कुण्ड होना भी बताया जाता है। यहाँ एक शिव मंदिर भी हैं। केदार खण्ड अध्याय ८१ में इस स्थान को कर्णाश्रम लिखा है। कहते हैं इस स्थान पर भगवती उमा का आश्रय लेकर महादानी कर्ण ने सूर्यदेव की आराधना की थी। जिससे प्रसन्न होकर सूर्यदेव ने कर्ण को अभेद्य कवच और अक्षय तूणीर दिए थे। तभी से इस स्थान का नाम कर्ण प्रयाग पड़ा। कहते हैं शिवजी यहाँ कर्णेश्वर के नाम से निवास करते हैं।

कर्ण प्रयाग में पुलिस स्टेशन, डाक, तार व टेलीफोन की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। राजकीय इण्टर कालेज और औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान

नन्दप्रयाग से पूर्व की ओर एक मार्ग गया है। इसी मार्ग पर लगभ
१० किलोमीटर की दूरी पर वैरासकुण्ड नामक एक स्थान है। कहते
लंकापति रावण ने इसी स्थान पर शंकर की आराधना कर अपने बल कं
परीक्षा के लिए कैलाश पर्वत को उठाया था। तब से यहाँ पर शिवशंकर
का एक मन्दिर मौजूद है और तभी से इस क्षेत्र का नाम दशमौली
(दशौली) भी हुआ यहाँ से एक मार्ग अल्मोड़ा के लिए भी जाता है।

नन्दप्रयाग कस्बा आज धीरे-धीरे विकसित होता जा रहा है। यह स्थान अनेक विद्वानों की साधना स्थली है। अनेक पत्रकारों का भी यह कर्मस्थल है। राष्ट्रीयपत्र "हिन्दुस्तान" दैनिक के सम्वाददाता श्री राधा-कृष्ण वैष्णव, कई अंग्रेजी पत्रों के सम्वाददाता श्री गोविन्द प्रसाद नौटियाल व चमोली जनपद के प्रसिद्ध साप्ताहिक "देवभूमि" के सम्पादक श्री राम प्रसाद बहुगुणा इसी नन्दप्रयाग से पत्रकारिता के माध्यम से अपने जनपद, प्रदेश व देश की सेवा में जुटे हैं। देश-विदेश में ख्याति प्राप्त प्रसिद्ध चिकित्सक डा० हरिवैष्णव यहीं के रहने वाले थे।

नन्द प्रयाग से १० किलोमीटर बदरीनाथ की ओर बढ़ने पर चमोली आता है।

चमोली

नन्द प्रयाग से आगे बढ़ते ही सुन्दर-सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं। ५ किलोमीटर की दूरी पर मैठाणा चट्टी है। यही मैठाणा गढ़वाल के मैठाणी ब्राह्मणों का आदि गाँव बताया जाता है। ५ किलोमीटर और मार्ग तय करने पर चमोली आ जाता है। यहां अलकनन्दा पर जो पुल बना है वह पहले लाल रंग से पुता रहता था। इस कारण चमोली को पहले लाल सांगा भी कहते थे। बड़े-बूढ़े अभी भी चमोली को लालसांगा कहते हैं। केदारनाथ से ऊखीमठ-मण्डल होकर आने वाले यात्री इसी स्थान पर आकर मिलते हैं।

चमोली कस्बा अलकनन्दा के बाएं तट पर बसा है। पुराना शहर सन् १८९४ ई० की भयंकर बाढ़ से बह गया था। वर्तमान चमोली शहर नये सिरे से बसाया गया है। यहां परगनाधीश का कार्यालय, तहसील,

अस्पताल, थाना, डाक-तार घर टेलीफोन, सरकारी खजाना व अन्य कई कार्यालय हैं। आवास के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग का बंगला व काली कमली धर्मशाला है, बाजार में दैनिक उपयोग की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं।

सन् १९६० ई० तक चमोली पौढ़ीगढ़वाल की एक तहसील मात्र थी १९६० ई० से चमोली अलग जिले के रूप में अस्तित्व में आया। अब चमोली गढ़वाल मण्डल के एक जनपद का भी नाम है, जिसका मुख्यालय गोपेश्वर में है, गोपेश्वर चमोली से पुल पार कर १० किलोमीटर की दूरी पर है। जिले के अनेक कार्यालय व शिक्षण संस्थाएँ यहाँ पर हैं। जिला चिकित्सालय व राजकीय महाविद्यालय भी यहाँ विद्यमान है। गोपेश्वर में एक अत्यन्त प्राचीन शिव मन्दिर है जो केदारनाथ को छोड़कर उत्तरा खण्ड के सबसे विशाल व प्राचीन मन्दिरों में गिना जाता है। इस मन्दिर के प्रांगण में एक १६ फीट ऊँचा लौह त्रिशूल है जिस पर प्राचीन लिपि में एक अभिलेख है। यह अभिलेख ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

पीपलकोटी

चमोली से पीपलकोटी १७ किलोमीटर की दूरी पर है। मार्ग में ३ किलोमीटर दूरी पर मठ चट्टी है। मठ से २ किलोमीटर छिनका है। यहां उद्योग विभाग का कताई बुनाई केन्द्र है। अधिकतर भोटिया बस्ती है। छिनका से सियासैण व हाट होते हुए ४३०० फीट की ऊँचाई पर बसे पीपलकोटी कस्बा खूब सजा धजा रहता है। चारों ओर प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य देखने को मिलते हैं। जोशीमठ मार्ग पर बढ़ने से अलकनन्दा गहरी घाटी में बहती दिखाई देती है। ऊपर ढलान पर भेड़ अनुसन्धान शाला है। इस अनुसन्धानशाला में देश-विदेश की अनेक नस्लों की कीमती भेड़ें हैं। पीपलकोटी में पुलिस स्टेशन, डाक-तारघर, टेलीफोन आदि की सुविधाएँ उपलब्ध हैं, बाजार में दैनिक उपयोग की वस्तुएँ आसानी से मिल जाती है। रात्रि विश्राम के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग का विश्रामगृह, बाबा काली कमली की धर्मशाला व मन्दिरें बदरीनाथ का

विश्रामगृह विद्यमान है। मन्दिर के विश्रामगृह में मन्दिर बदरीनाथ की पूजाओं के सम्बन्ध में सूचनाएँ अंकित हैं।

गरुड़गंगा

पीपलकोठी से आगे अलकनन्दा की दाहिनी ओर पैदल मार्ग और बाईं ओर मोटर मार्ग है। अब बहुधा पैदल यात्री भी मोटर मार्ग पर ही आगे बढ़ते हैं क्योंकि पैदल मार्ग संकीर्ण व सुनसान है। पीपलकोटी से ६ किलोमीटर की दूरी पर गरुड़ गंगा है। यहाँ गरुड़ जी का प्राचीन मन्दिर है। दूसरे मन्दिर में गणेश व विष्णु की मूर्तियां हैं। कथा है कि इस स्थान पर गरुड़ जी ने भगवान विष्णु का वाहन बनने की कामना से तप किया था। सामने एक छोटी-सी नदी बहती है। यही गरुड़ गंगा कहलाती है जो यहां अलकनन्दा में मिलती है यहां पर स्नान करने से और यहाँ का पत्थर ले जाने से सर्प का विष दूर हो जाता है। गरुड़ गंगा की बायीं ओर पाखी गाँव में भगवान नृसिंह का प्राचीन मन्दिर है। जिसकी पूजा के लिए मन्दिर बदरीनाथ की ओर दस्तूरात मिलते हैं। गरुड़ गंगा में रात्रिनिवास के लिए काली कमली की धर्मशाला है। वैसे इससे आगे ३ किलोमीटर पर टंगनी चट्टी है यहाँ पर स्वामी नर्वदानन्द की धर्मशाला है। दुकानें भी हैं डाकघर व गणेश कुण्ड है।

पातालगंगा

टंगनी से ३ किलोमीटर की दूरी पर पाताल गंगा है। यहां पर पदल वाला मार्ग बहुत खतरनाक है। नीचे देखने पर भय लगता है। सचमुच बहुत गहराई में पाताल गंगा दिखाई देती है। यहाँ पाताल गंगा अलकन में मिल जाती है। १९७० ई० में बेलाकूची में जो भयंकर बाढ़ आई उस समय पाताल गंगा ने बड़ा भयानक रूप धारण किया था। यहां ग जी का एक पुराना मन्दिर है। गणेश जी की मूर्ति बड़ी भव्य है।

गुलाबकोटी

पाताल गंगा से ३ किलोमीटर की दूरी पर गुलाबकोटी है। क जाता है कि टिहरी राजवंश के किसी गुलाब सिंह नामक व्यक्ति ने बस्ती बसाई थी। गुलाब सिंह इस क्षेत्र के मांडलीक थे। यहाँ गांव

मुरली मनोहर का सुन्दर मन्दिर है, यह मन्दिर भी गुलाब सिंह का बनवाया बताया जाता है। मन्दिर की मूर्ति बड़ी भव्य चित्ताकर्षक है।

हेलंग

गुलाबकोटी से ३ किलोमीटर की दूरी पर हेलंग है। इसे कुमारचट्टी के नाम से भी पुकारा जाता है। यहाँ बाबा काली कमली की धर्मशाला सदावर्त, डाकखाना, मन्दिर बदरीनाथ की धर्मशाला व औषधालय है। एक छोटा बाजार भी है। यहाँ से एक मार्ग पंचम केदार कल्पेश्वर को गया है, जिसका वर्णन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है।

वृद्ध बदरी

हेलंग से डेढ़ किलोमीटर पर पैनीचट्टी है। इससे कुछ आगे खनोटी है। यहाँ से मुख्य मार्ग छोड़ कर आधा मील नीचे अणिमठ नामक स्थान में वृद्धबदरी का मन्दिर है, जो पंच बदरियों में से एक है। यहाँ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति है। इस मन्दिर की व्यवस्था बदरीनाथ मन्दिर की ओर से होती है, खनोटी से झड़कुला सिंहधारा होते हुए जोशीमठ पहुँचा जाता है।

जोशीमठ

जोशीमठ, ज्योतिर्मठ का अपभ्रंश है। इसे ज्योतिष्पीठ भी कहा जाता रहा है। इस ज्योतिर्मठ या ज्योतिष्पीठ जगद्गुरु आदि शंकराचार्य जी ने स्थापित किया था। अब बोलचाल में ओर अभिलेखों में इसे जोशीमठ ही कहा जाता है। यहाँ एक शहतूत के पेड़ के नीचे शंकराचार्य जी ने ज्ञान-ज्योति प्राप्त की थी। यहीं पर उन्होंने शंकर भाष्य की रचना की थी।

उत्तुंग पर्वत मालाओं के मध्य बसा आज का जोशीमठ अत्यन्त प्रचीन स्थान है। प्राचीनकाल में यह कत्यूरी राजाओं की राजधानी रहा है। तब इसे कार्तिकेयपुर के नाम से पुकारा जाता था। कत्यूरी नरेश ललित शूर का पाण्डुकेश्वर में जो ताम्रपत्रशिला है, उससे उक्तमत की पुष्टि होती है। भगवान नृसिंह तथा वासुदेव के यहाँ प्राचिन मन्दिर हैं। नृसिंह मन्दिर में श्रीराम, लक्ष्मण, जानकी, कुबेर, गरुड़ और श्री बदरीनाथ जी की मूर्तियाँ है। वासुदेव मन्दिर में वासुदेव की पुरुष प्रमाण मूर्ति है। कहते हैं इसको

स्थापना भी शंकराचार्य ने की थी। यहाँ नव दुर्गा व शिव-पार्वती की मूर्तियाँ हैं। गणेश की आठ भुजा वाली मूर्ति भी यहाँ विद्यमान है। नृ मन्दिर के सामने दो जल धारायें हैं जो दण्ड धारा तथा नृसिंह धार नाम से विख्यात हैं।

नृसिंह मन्दिर में जो भगवान नृसिंह की मूर्ति है, इसके सम्बन्ध कहा जाता है कि उनकी एक बाँह पतली पड़ती जा रही है। जिस दिन बाँह टूटकर अलग हो जावेगी उस दिन श्री बदरीनाथ की पूजा यहाँ १५ किलोमीटर दूर तपोवन में होगी, जिसे भविष्य बदरी भी कहते हैं।

जोशीमठ बाजार से एक किलोमीटर ऊपर ज्योतेश्वर महादेव मन्दिर है। यहीं अनन्त विभूषित आदि गुरु शंकराचार्य का गद्दी स्थान है प्राचीन परम्परा के क्रम में आज भी शंकराचार्य नामक उपाधिकारी व्यक्ति इस गद्दी स्था को सुशोभित करता है।

आज जोशी मठ नगर सीमांत जनपद चमोली का एक विकासशी शहर हैं आधुनिक ढंग का सुन्दर बाजार है दैनिक उपयोग की सभ वस्तुएं यहाँ उपलब्ध हो जाती हैं। यात्रियों व पर्यटकों के लिए आवास की सुन्दर व्यवस्था है। सार्वजनिक निर्माण विभाग का बंगला, वनविश्रामगृह पर्यटक विश्रामगृह, मन्दिर समिति का अतिथिगृह, नीलकंठ होटल व धर्मशालायें यहाँ विद्यमान हैं। पुलिस स्टेशन, डाक, तार, दूरभाष, चिकित्सालय व बैंक की सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। वेद वेदांग संस्कृत पाठशाला व राज- कीय इण्टर कालेज जैसी शिक्षण संस्थायें यहाँ विद्यमान हैं। शीतकाल में बदरीनाथ की चल प्रतिमा यहीं रहती है। बदरीनाथ के अन्य अधिकारी, सेवक व रावल जी भी शीतकाल के ६ महीने यहीं रहते हैं। मन्दिर का कार्यालय भी यहाँ रहता है।

जोशीमठ का प्राकृतिक वैभव

१८७५ मीटर की ऊँचाई पर बसा जोशीमठ प्राकृतिक सौंदर्य की दृष्टि से काफी समृद्ध है। जोशीमठ के सामने अलकनन्दा के उस पार हाथी पर्वत की शोभा दर्शनीय है। पर्वत की आकृति दूर से ऐसी दिखाई देती है मानो हाथी की पीठ पर कोई व्यक्ति सवार हो। ऊपर पर्वत शिखरों पर बुग्यालों

(घास के मैदान) के मनोहारी दृश्य दर्शकों को विभोर कर देते हैं। ढलानों पर सेब आदि के बगीचों की शोभा भी निराली है। नीचे विष्णु प्रयाग में धौली व अलकनन्दा का संगम-दृश्य भी आह्लादिक है।

औलीबुग्याल

जोशीमठ से एक पैदल मार्ग औली बुग्याल को चला गया है। जोशी-मठ से पैदल मार्ग द्वारा यह बुग्याल ८ किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ की प्राकृतिक छटा अद्भुत है। प्रकृति प्रेमी पर्यटकों को यहाँ अवश्य जाना चाहिए।

औली जाने के लिए अब एक रज्जुमार्ग बन रहा है। इस रज्जुमार्ग का शिलान्यास भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व० इन्दिरा गाँधी ने जुलाई १९८३ में किया था। इस रज्जुमार्ग की लम्बाई ३.८ किलोमीटर होगी जोकि भारत में सबसे लम्बा रज्जुमार्ग होगा। इसके साथ ही औली बुग्याल अब दुनिया के सबसे बड़े हिम क्रीड़ा केन्द्र के रूप में विकसित होने जा रहा है गढ़वाल मंडल विकास निगम ने यहाँ बर्फ पर फिसलने का खेल (स्की-इंग) आरम्भ कर दिया है। यह खेल प्रथम बार मार्च १९८७ में 'औली युवा महोत्सव के रूप में मनाया गया था। वैसे निगम ने औली में सन् १९८४ से ५, १० और २१ दिन का प्रशिक्षण भी आरम्भ किया है। मोटर मार्ग से यह जोशीमठ से १६ किलोमीटर है।

जोशीमठ से तपोवन

जोशीमठ से मुख्य यात्रा मार्ग छोड़कर कैलाश मानसरोवर की ओर जाने वाले मार्ग पर १० किलोमीटर की दूरी पर तपोवन नामक स्थान है। महाभारत शान्तिपर्व में कई स्थानों पर इस तपोवन का वर्णन मिलता है। इस पर्व के अध्याय ३२७ में व्यास जी द्वारा हिमालय के जिस स्थान पर अपने शिष्यों को पढ़ाने का वर्णन आया है, वह सम्भवतः यही तपोवन है।

इस तपोवन के सम्बन्ध में पादरी ओकले का कथन भी पठनीय है। ओकले लिखता है—"तपोवन का अर्थ है, तपस्वियों का वन। एक अल्मोड़ा के ब्राह्मण ने मुझे बताया है कि गढ़वाल के 'तपोवन' नामक स्थान में मैं जब गया था उस समय वहां लगभग २०० व्यक्ति तपस्या कर रहे थे।

इनके अतिरिक्त अनेक तीर्थ यात्री भी वहाँ पहुंचते थे। इनके लिए वा भोजन क्षेत्र भी बने हुए थे।"[1]

यद्यपि अब तपोवन में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, फिर भी किस समय वहां उपरोक्त स्थिति अवश्य रही होगी। तपोवन में एक स्थान प मूर्ति विहीन अति प्राचीन ३ मन्दिर विद्यमान हैं, जिनका वास्तु विधा महत्त्वपूर्ण है। एक और विशाल मंदिर यहां पर है, जिसमें हर गौरी की दर्शनीय मूर्ति है। द्वार पर कला पूर्ण आदि नाथ की मूर्ति भी है।

भविष्य बदरी

तपोवन से लगभग ५ किलोमीटर की दूरी पर सुभाई गांव है। यहाँ पर जो विष्णु भगवान का मन्दिर है, यही भविष्य बदरी है। प्राचीन काल में इस स्थान पर महर्षि अगस्त्य ने भगवान विष्णु की तपस्या की थी। तभी से भगवान बदरी रूप में यहां निवास करते हैं। कहते हैं जब विष्णु प्रयाग में दोनों पर्वत आपस में मिल जायेंगे और बदरीनाथ धाम अगम्य हो जाएगा तब भगवान बदरी विशाल की पूजा यहीं भविष्य बदरी में हुआ करेगी।

भविष्य बदरी से आगे लाता ग्राम है, जहाँ नन्दा भगवती का प्राचीन मन्दिर है। इससे आगे द्रोणगिरी पर्वत है, जहाँ से हनुमान जी लक्ष्मण शक्ति के समय संजीवनी लाए थे। इस क्षेत्र का अन्तिम सीमान्त ग्राम नीती है। इस कारण इस घाटी को नीती घाटी कहते हैं। इस घाटी में अधिकतर भोटिया लोग रहते हैं। नीती तक मोटर मार्ग बन चुका है।

विष्णु प्रयाग

विष्णु प्रयागके स्नात्वा विष्णुलोके महीयते।
यत्र ब्रह्मादयो देवाः परां सिद्धिमवाप्नुयुः ॥

—केदारखंड— बदरी महात्म्य

आइये! जोशीमठ से बदरीनाथ की ओर बढ़ें। पैदल यात्री जोशीमठ से केवल ३ किलोमीटर की उतराई तय कर विष्णु प्रयाग पहुँच जाते हैं।

---

1. ओकले—होलि हिमालय

किन्तु बस यात्रियों को लगभग १२ किलोमीटर का मार्ग तय करना पड़ता है।

धौली (धवल) गंगा और अलकनन्दा के संगम पर बसा विष्णु प्रयाग उत्तराखंड के पाँच प्रयागों में से प्रथम प्रयाग है। संगम तक पहुँचने के लिए सीढ़ियों से नीचे उतरना पड़ता है। नदी का प्रवाह यहाँ अत्यन्त तीव्र है। विष्णु प्रयाग में भगवान विष्णु का प्राचीन मन्दिर और विष्णु कुण्ड है। कुण्ड में स्नान का बड़ा महात्म्य है। कथा है कि देवर्षि नारद ने अष्टाक्षर मंत्र से इस स्थान पर भगवान विष्णु की पूजा की थी।

विष्णु प्रयाग से जब आगे बढ़ते हैं तो यात्रा मार्ग अत्यन्त संकीर्ण घाटी में से गुजरता है। चारों ओर के लता-पादपों के झुरमुट मन को आनन्दित करते हैं। पैदल यात्री को एकाकी चलने में डर लगता है। विष्णु प्रयाग से २ किलोमीटर पर बालदौड़ नामक चट्टी है। रात्रि निवास के लिए यहाँ कालीकमली की धर्मशाला है। इससे आगे लगभग ५ किलोमीटर की दूरी पर घाट चट्टी है। यहाँ कुछ दुकानें हैं। पुरानी बस्ती बाढ़ से बह गई थी। अब नई बस्ती बनी है। यहाँ से ३ किलोमीटर आगे पाण्डुकेश्वर है। पाण्डुकेश्वर से पूर्व गोविन्द घाट नामक स्थान है, जहाँ सिक्खों का गुरुद्वारा है। यहाँ से अलकनन्दा के पुल को पारकर एक मार्ग हेमकुण्ट लोकपाल को चला गया है। फूलों की घाटी को भी इसी मार्ग से जाया जाता है। हेमकुण्ट और फूलों की घाटी का वर्णन आगे के पृष्ठों में पृथक से किया जाएगा।

पाण्डुकेश्वर

सिन्धु तट से ६४५० फीट की ऊँचाई पर बसा पाण्डुकेश्वर बहुत प्राचीन स्थान है। कहते हैं हस्तिनापुर के राजा पाण्डु अपनी पत्नी कुन्ती व माद्री के साथ यहाँ रहे थे। यहीं पर पाण्डवों का जन्म हुआ बताते हैं। यहाँ योगध्यानि बदरी जो पंच बदरियों में से एक है, का मन्दिर व भगवान वासुदेव का मन्दिर है। वासुदेव की मूर्ति बड़ी भव्य है। योगध्यानि की मूर्ति धातु की बनी है।

पाण्डुकेश्वर के मन्दिर का पुजारी दक्षिण भारतीय भट्ट जाति का होता है। श्री बदरीनाथ जी की उत्सव मूर्ति की पूजा शीतकाल के ६

महीनों यहीं होती है। इन दिनों मन्दिर बदरीनाथ के कुछ कर्मचारी भी यहीं रहते हैं। यहां कालीकमली व मन्दिर बदरीनाथ की धर्मशाला है। डाकघर की सुविधा भी है।

पाण्डुकेश्वर के ऐतिहासिक ताम्रपत्र

पाण्डुकेश्वर के मन्दिर में गढ़वाल के प्राचीन कत्यूरी राजाओं के ४ ताम्रपत्र मिले हैं। इनमें २ ताम्रपत्र ललित सूर के, एक पद्मट का और एक सुभिक्षराज का है। पुराने समय में मन्दिर के पुजारी इन ताम्रपतों की लिपि न समझने के कारण इन्हें "पाण्डवों की पाटी" कहकर दिखाते थे। ये ताम्रपत्र ब्राह्मी लिपि और शुद्ध संस्कृत भाषा में लिखे हैं। जब विद्वानों द्वारा पढ़ा गया तो गढ़वाल के इतिहास के अनेक अधखुले पृष्ठ प्रकाश में आ गए। अनेक ऐतिहासिक स्थानों और जातियों के सम्बन्ध में इनसे पता चला। इन ताम्रपत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि हजारों वर्ष पूर्व गढ़वाल में कितने विद्वान ब्राह्मण रहते थे।

ये ताम्रपत्र पहले पाण्डुकेश्वर में थे। बाद में इन्हें बदरीनाथ मन्दिर में रखा गया। अब ये मन्दिर कार्यालय जोशीमठ में सुरक्षित हैं। बताया जाता है कि इनमें से एक ताम्रपत्र अग्रेजी शासन काल में खो गया था। किन्तु उसकी नकल पहले हो चुकी थी। कत्यूरी शासन केदारखण्ड (गढ़वाल) और मानसखण्ड (कुमायूँ) में श्री बदरी दत्त पाण्डे (कुमायूँ का इतिहास(के अनुसार ई० पू० २५०० से ७०० ई० तक तथा डा० शिवप्रसाद डबराल[1] के अनुसार ७४० ई० से १००० ई० तक रहा। अतः ये ताम्रपत्रों के मजमून से ज्ञात होता है कि कत्यूरी नरेश परम धार्मिक थे और उन्होंने अपने यश की वृद्धि के लिए अनेक गाँवों की भूमि को मंदिरों की पूजा व्यवस्था, मरम्मत और अन्य धार्मिक कार्यों के लिए मन्दिरों को समर्पित किया था। पद्मट देव का ताम्रपत्र इस पुस्तक में अन्यत्र प्रकाशित है।

इन ताम्रपत्रों के अक्षरों की बनावट को देखने से पता चलता है कि उस जमाने में कितने सुन्दर कारीगर गढ़वाल में विद्यमान थे। अक्ष

1. केदारखंड-गढ़वाल मंडल पृष्ठ ४१

कीर्ण करने वाले कारीगरों का भी ताम्रपत्र में नामोल्लेख है। ललितशूर
ले ताम्रपत्रों को गंगभद्र नामक कारीगर ने और पद्मट देव तथा सुभिक्ष-
ज वाले ताम्रपत्रों को नन्दभद्र नामक कारीगर ने उत्कीर्ण किया है।
भिलेख में राजाओं को परमब्रह्मण्य (ब्राह्मण भक्त) परम माहेश्वर और
रम भट्टारक लिखा है। इससे उस काल के राजाओं की निष्ठा का पता
लता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि उस काल में इस केदारखण्ड
ं माहेश्वर (शैव) मत का काफी प्रचार था। राजा विद्वान और धर्म कर्म
ं रुचि रखने वाले होते थे।

शेषधारा

पाण्डुकेश्वर से लगभग २ किलोमीटर आगे शेषधारा तीर्थ है। यहाँ पहले शेष जी का मन्दिर व रामानुज कोट की एक धर्मशाला तथा सुन्दर पुष्प वाटिका थी। किन्तु सम्वत् १६६८ की बाढ़ से सब बह गया। अब सड़क के निकट रामानुज सम्प्रदाय के महात्मा स्वामी पुरुषोत्तमचारी का मकान व पुष्पवाटिका है। इस वाटिका से रामानुज सम्प्रदाय के साधुओं द्वारा श्री बदरीनाथ की पूजा के लिए पुष्प पहुँचाए जाते हैं। कथा है कि पूर्वकाल में भगवान शेष ने इस स्थान पर तप किया था। शेषधारा से कुछ आगे विनायक चट्टी है जो अब लगभग सुनसान रहती है।

लामबगड़

शेषधारा से लगभग ४ किलोमीटर की दूरी पर लामबगड़ है। यहाँ की पुरानी बस्ती भी सम्वत् १६६८ की बाढ़ से नष्ट प्रायः हो गई थी। अब नई बस्ती तथा कालीकमली धर्मशाला का पुनर्निर्माण हुआ है। थोड़ा आगे मन्दिर बदरीनाथ की धर्मशाला है जहाँ रात्रि निवास की पूरी सुविधा है। किन्तु अब बहुधा यात्री पाण्डुकेश्वर के बाद सीधे बदरीनाथ ही जाते हैं। कुछ साधु सन्त यहाँ विश्राम कर लेते हैं।

हनुमानचट्टी

लामबगड़ से ५ किलोमीटर की दूरी पर व सिन्धुतट से ८००० फीट की ऊँचाई पर हनुमान चट्टी है। यहाँ पर घृतगंगा का अलकनन्दा में समागम होता है। इससे कुछ आगे उस पार से आकर क्षीरगंगा भी

अलकनन्दा में मिलती है। पुराणों के अनुसार इस तीर्थ को वैखानस की संज्ञा दी गई है। यहां वैखानस मुनि द्वारा पूर्वकाल में तपस्या की थी। महाभारत अश्वमेध पर्व में कथा है कि इक्ष्वाकु वंशज राजा मरु इस स्थान पर यज्ञ किया था।[1] कहते हैं इस यज्ञ स्थल को खोदने पर अ तक यज्ञकुण्ड में जला हुआ चरु व कोयले आदि मिलते हैं। राजा मरुत मेरु पर्वत के निकट जिस स्थान पर यज्ञ किया था उसकी ठीक ठ स्थिति कहां पर है, अब यह बताना कठिन है किन्तु हिमाल में मेरु पर्वत के निकट जिस स्वर्णमय पर्वत का वर्णन महाभार आदि ग्रन्थों में है वह यहीं लोकपाल के निकट नर पर्वत पर बता जाता है।

हनुमान चट्टी में काली कमली की धर्मशाला तथा पवन पुत्र हनुमा जी का मन्दिर है। महाभारत के अनुसार जब पांडव वनवास काल में गंध मादन पार्वत की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें एक दुबला पतल वन्दर मिला जिसने अपनी पूँछ रास्ते में फैला रखी थी। भीम ने अपने बल के घमण्ड में, मद में आकर वन्दर से पूँछ हटाने को कहा। बन्दर ने वृद्धावस्था के कारण असमर्थता प्रकट करते हुए भीम से कहा कि तुम्हीं पूँछ उठाकर अलग कर दो। किन्तु महाबली भीम ने जब पूँछ उठानी चाही तो वह हिली भी नहीं। अन्त में भेद खुल गया और दोनों पवन पुत्र आपस में गले मिले। तब हनुमान जी अपना असली रूप दिखाकर अंतर्धान हो गए। तब से यह स्थान हनुमान चट्टी के नाम से प्रसिद्ध है।

1. मेरुं पर्वतमासाद्य हिमवत पार्श्वउत्तरे।
काञ्चनः सुमहान् पादस्तत्र कर्म चकार सः
ततः कुण्डानि पात्रीश्च पिठराण्यासनानि च
चक्रुः सुवर्ण कर्तारो येषां संख्या न विद्यते
तस्यैव च समीपे तु यज्ञवाटो बभूव ह
ईजे तत्र स धर्मात्मा विधिवत् पृथ्वी पतिः
मरुतः सहितैः सर्वे प्रजापालैर्नराधिपः
—महाभारत अश्वमेधपर्व अ० ४ श्लोक २५-२८

हनुमान चट्टी से बदरीनाथ

हनुमान चट्टी से बदरीनाथ मोटर मार्ग द्वारा ११ किलोमीटर और
ल मार्ग से ८ किलोमीटर है। पैदल मार्ग एकदम चढ़ाई का है। पद-
ी बड़े उत्साह से इस चढ़ाई को चढ़ते हैं। कारण कि अब उनका
तव्य अति निकट है। चढ़ाई चढ़ते समय हिमराजि शृंगों की छटा
। को आनन्दित कर जाती है। बस यात्री भी बड़ी उत्सुकता से आगे
ढ़ते हैं। ५ किलोमीटर पर कंचन गंगा पड़ती है। यहाँ चाय का होटल
। पद यात्री यहां चाय पीकर थकान दूर करते हैं। एक किलोमीटर और
लकर देव देखनी या देव दर्शनी नामक स्थान पर पहुँचते हैं। देव-दर्शन
र पहुँचते ही समूची बदरीनाथ घाटी "बदरी विशाल की जय" से गुंजा-
यमान हो जाती है। जैसे कि नाम से ही जाहिर होता है, यहाँ से भगवान
बदरी विशाल की पुरी के दर्शन होते हैं। देवदर्शनी में विघ्न विनायक
गजानन गणपति के दर्शन होते हैं। यहाँ से पुरी तक पहुँचने के लिए मार्ग
सीधा है। चढ़ाई समाप्त हो जाती है। अब यात्रीगण भगवान बदरी
विशाल के दर्शनों के लिए आतुर हो उठते हैं। ज्यों-ज्यों यात्री आगे बढ़ते
जाते हैं बदरी विशाल का स्वर्ण शिखर स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगता है।
बदरी विशाल की जय की ध्वनि-प्रतिध्वनि से हिम प्रदेश की सम्पूर्ण
अधित्यका बार-बार गूंजती है। यात्री सारी थकान विस्मृत कर अपने को
प्रसन्नचित्त एवं बहुत हल्का महसूस करता है। अलकनन्दा के उस पार
हिमप्रान्त की ओट से झांकता हुआ २१६४० फीट ऊँचा हिमावृत नीलकंठ
पर्वत बरबस दर्शकों को आकृष्ट करता है। क्षण भर के लिए यात्री अपलक
प्रकृति के उस सौन्दर्य का पान करने लगता है। पंजाबी क्षेत्र, राजकीय
चिकित्सालय, अद्वैत प्रचारक संघ की धर्मशाला तथा पुलिस थाना होते हुए
यात्री आगे बढ़ते हैं। पुराने समय में यहां थाने के निकट यात्रियों की
गिनती होती थी किन्तु अब यह प्रथा नहीं है।

१४

श्री बदरीनाथ

बहूनि सन्ति तीर्थानि दिविभूमौ रसासु च।
बदरी सदृशं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥

(स्कन्द पुर

पृथ्वी, स्वर्ग तथा पाताल में अनेक तीर्थ हैं किन्तु श्री बदरीधाम समान तीर्थ न हुआ और न होगा।

श्री बदरीनाथ पुरी की स्थिति

लोक विश्रुत श्री बदरीनाथ पुरी गढ़वाल मण्डल के अन्तर्गत चमो जनपद में सिन्धुतट से १०,२५० फीट की ऊँचाई पर नर-नाराय पर्वतों के मध्य पृथ्वी की अक्षांश रेखा ३०° ४४' ५६" और देशान्त रेखा ७९° ३२' २०" पर अवस्थित है। वर्तमान में घाटी लगभग ३ मी लम्बी और एक मील चौड़ी है।[1] पौराणिक मत से बदरीवन का विस्त १२ योजन लम्बा और ३ योजन चौड़ा माना जाता है। यथा—

योजनत्रय विस्तीर्णा दीर्घं द्वादश योजनं
अगम्य पापिनां तद्वै महदैश्वर्यदायकं॥

(केदार खण्ड ५७।१८

कण्वाश्रम से लेकर नन्दागिरी पर्वत तक फैला यह बदरीवन भोग और मोक्ष को देने वाला बताया गया है। इसके अन्तर्गत गन्धमादन पर्वत बदरीवन, नर-नारायण आश्रम और अनेक तीर्थों से सज्जित कुबेर शिला है। यथा—

कण्वाश्रमं समारभ्य यावन्नन्दा गिरीभवेत्।
तावत् क्षेत्रं परं पुण्यं भुक्ति मुक्ति प्रदायकम्॥

---

1. रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृ० ४१

गन्धमादन बदरीवन नर-नारायण श्रमः ।
कुबेरादि शिला रम्यो नानातीर्थ विराजिता ॥
(केदारखण्ड अ० ५७)

उस युग का एक योजन आज के कितने मील के बराबर था, यह हना कठिन है। क्योंकि केदार खण्ड के उक्त विवरण के अनुसार बदरीन कण्वाश्रम से नन्दागिरी तक फैला बताया गया है। कोटद्वार के निकट ालिनी के तट पर कण्वाश्रम की स्थिति आज जिस स्थान पर है वहाँ से ो श्री बदरीनाथ और नन्दागिरी बहुत दूर हैं। यह भी सम्भव है कि कण्वाश्रम की स्थिति तब किसी अन्य स्थान पर रही हो। कहा जाता है कि जहां आज नन्द प्रयाग है, वहीं कभी कण्वाश्रम था और अब इसका नाम विगड़ कर कनासू हो गया है। यह भी धारणा है कि इस नन्दप्रयाग वाले कण्वाश्रम में ही शकुन्तला के साथ राजा दुष्यन्त का पाणिग्रहण हुआ था। प्राचीन ऋषि अति दीर्घजीवी थे। अतः उनके आश्रमों का एकाधिक स्थानों में होना सहज सम्भव है। कल्पभेद से भी एक ही तीर्थ की दो स्थानों पर स्थिति हो सकती है।

आदि सिद्ध तीर्थ बदरीनाथ

हिमालय का परमपावन तीर्थ श्री बदरीनाथ जो कि आज असंख्य आस्थावान भारतीय नर नारियों की आत्मा का केन्द्र बना हुआ है, एक अनादि सिद्ध तीर्थ कहा गया है। इस तीर्थ की उत्पत्ति के काल निर्धारण के लिए कोई भी पुष्ट प्रमाण लिखित या मौखिक उपलब्ध नहीं है। अतः पुराणों ने इसे अनादि कहकर पुकारा है। स्कन्द पुराण के अनुसार जब स्कन्द ने शिव जी से बदरीनाथ की उत्पत्ति के विषय में पूछा तो शिव जी ने भी यही कहा कि यह क्षेत्र अनादि सिद्ध है। जैसे वेद भगवान के शरीर हैं वैसे यह भी है। इस क्षेत्र के अधिपति साक्षात् भगवान नारायण हैं। नारद आदि श्रेष्ठ ऋषियों ने इसका सेवन किया है। जब भगवान अनादि हैं तो उनके नाम, रूप, लीला और धाम भी अनादि हैं। इसी हिसाब से श्री बदरीनाथ धाम भी अनादि है। पूजा पद्धति और आचार-व्यवहार में समय समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। इन्हीं परिवर्तनों का वर्णन [illegible]

ने भिन्न-भिन्न ढंग से किया है। विभिन्न युगों में भगवान के चरित्र और लीलाओं के अनुसार उनके तथा श्री बदरीनाथ धाम के विभिन्न नामों का पुराणों ने उल्लेख किया है।

स्कन्द पुराण के वैष्णव खण्ड में वर्णन मिलता है कि सत्ययुग में भगवान यहां मूर्तिमान होकर तपस्या में निरत रहते थे। त्रेता में योगाभ्यासी ऋषियों को दर्शन देते थे और द्वापर आने पर ज्ञान निष्ट मुनियों को भी भगवान के दर्शन दुर्लभ हो गए।[1]

स्कन्द पुराण में ही श्री बदरीनाथ धाम के चार युगों में चार पृथक-पृथक नामों का उल्लेख मिलता है—यथा

कृते मुक्ति प्रदा प्रोक्ता, त्रेतायाँ योग सिद्धिदा।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता, कलौ बदरिकाश्रमः॥

अर्थात् सतयुग में मुक्तिप्रदा, त्रेता में योग सिद्धिदा, द्वापर में विशाला और कलियुग में बदरिकाश्रम। इससे ज्ञात होता है कि हिमालय का यह परमपावन तीर्थ युग युगों से चला आ रहा है, और युग युगों से ही संपूर्ण आर्यावत के नर-नारियों की आस्था इसमें बनी हुई है। भारत का हर आस्तिक हिन्दू अपने जीवन में एक बार बदरीनाथ का दर्शन अवश्य करना चाहता है।

भगवान बदरीनाथ का श्री विग्रह

श्री बदरीनाथ भगवान का विग्रह (स्वरूप) एक शालिग्राम शिला द्वारा प्रकट हुआ है। इसका ठीक ठीक प्रमाण नहीं मिलता कि भगवान बदरीनाथ के इस स्वरूप को अर्थात इस मूर्ति की स्थापना सर्वप्रथम किसने और कब की। यह पता नहीं चलता कि मन्दिर कब बना और कब से इसकी विधिवत पूजा प्रारंभ हुई। गदरीनाथ के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त

---

1. पुराकृतयुगस्यादो सर्वभूत हिताय च।
मूर्तिमान्भगवांस्तत्र तपोयोग समाश्रितः॥
त्रेता युगेहिऋषिगणै योगाभ्यासैक तत्परः।
द्वापरे समनुप्राप्ते ज्ञान निष्ठोहि दुर्लभः॥
—स्कान्द० वै० बदरी० म०

करने के लिए हमारे पास पुराणों के अलावा कोई साधन नहीं है। लगभग सभी पुराणों में न्यूनाधिक रूप में वदरिकाश्रम के सम्बन्ध में विवरण मिलता है।

पुराणों के अनुसार आरंभ में वदरीनाथ में भगवान वदरीश की कोई मूर्ति नहीं थी। भगवान अपने प्रत्यक्ष स्वरूप से वहाँ तपस्या करते थे। भगवान को तपस्या में निरत देखकर एक दिन नारद जी ने भगवान से पूछा – भगवान ! आप तो त्रिलोकी के नाथ हैं। आप किसके ध्यान में मग्न हैं। भगवान ने हँसकर कहा, नारद ! अपने में जो आत्मस्वरूप है, हम उसी के ध्यान में मग्न हैं। भगवान की मनोहर वाणी सुनकर नारद जी गद्‌गद् हो गए और भगवान की स्तुति करने लगे। श्री वदरीनारायण के प्रधान अर्चक नारद जी ही कहे जाते हैं और इस क्षेत्र को नारदीय क्षेत्र के नाम से पुराणों में सम्बोधित किया है। नारदीय पुराण के उत्तर भाग में वदरीनाथ का विशद विवरण दिया है।

देवर्षि नारद का तो वदरिकाश्रम से वहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। वे नर-नारायण आश्रम में हमेशा हरिकथा सुनते थे और भगवान का दर्शन भी करते थे। इसी क्षेत्र में उनका अपना भी आश्रम था जिसका वर्णन महाभारत में मिलता है। शान्ति पर्व में लिखा है कि नर-नारायण आश्रम में हरिकथा सुनते और भगवान के दर्शन करते जव नारदजी के एक हजार दिव्य वर्ष पूरे हो गए तो वे शीघ्र ही हिमालय पर्वत के उस भाग में चले गए जहाँ उनका अपना आश्रम था।[1]

द्वापर आने पर जव भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन का अवतार धारण करने जाने लगे तो ऋषि मुनि भगवान से वोले—'प्रभो ! आप ही हमारे एक मात्र सहायक हैं। आप हमें छोड़कर न जायें। आप इस क्षेत्र को न त्यागें। उनकी प्रार्थना पर भगवान वोले—ऋषिगणो ! अत्र कुछ काल

1. प्रोष्य वर्षं सहस्रं तु नर नारायणाश्रमे
श्रुत्वा भगवदाख्यानं दृष्ट्वा च हरिमव्ययम्
हिमवन्तं जगामाशु यत्रास्य स्वक आश्रमः

(महा० शान्ति पर्व अ० ३४६)

पश्चात् कलियुग का प्रवेश हो जायगा। तब सभी प्राणी धर्महीन होक पापी हो जायेंगे। इससे उनके समक्ष मेरा साक्षात् रूप नहीं रह सकता यहाँ अलकनन्दा नदी में मेरी दिव्यमूर्ति है। मेरे अन्तर्धान होने के बाद तुम उस मूर्ति को निकाल कर उसे स्थापित करना। उसके दर्शन मात्र से हीं प्राणियों को मेरे साक्षात् दर्शन का फल प्राप्त होगा। भगवान की आज्ञानुसार देवता व ऋषियों ने नारद कुण्ड से भगवान की मूर्ति निकाली, जो शालिग्राम शिला पर ध्यानावस्थित चतुर्भुज रूप में बड़ी दिव्य दिखाई दे रही थी। विश्वकर्मा ने मन्दिर बनाकर मूर्ति की स्थापना कर दी और मन्दिर के अर्चक के रूप में नारद जी की नियुक्ति कर दी गई। तब से छः मास (वैशाख से मार्गशीर्ष तक) मनुष्य और छः महीने (मार्गशीर्ष से वैशाख तक) देवताओं द्वारा भगवान के श्री विग्रह की अर्चना होती है। क्योंकि शीतकाल के छः मासों में बदरिकाश्रम हिमाच्छादित होने से मनुष्यों के लिए अगम्य हो जाता है।

वैशाखे मासि वै देवाः गच्छन्ति निज मन्दिरम्।
कार्तिकेतु समागत्य पुनरर्चा चरन्ति च॥
ततो वैशाखमारभ्य मानवा हिम संक्षपात्।
अतः षण्मासं देवतैः पूज्या षण्मासं मानवैस्तथा॥

(वृ० नारदीय पुराण अ० ६७)

एक वर्णन ऐसा भी मिलता है कि ब्रह्मादि देवताओं ने मन्दिर पहले ही बनवा दिया था बाद में राजा पुरुरवा ने उसका जीर्णोद्धार करवाया। अधिक पुष्ट धारणा अब यही है कि भगवान शंकराचार्य ने ही वर्तमान मूर्ति को नारद कुंड से निकालकर स्थापित किया था। भविष्य पुराण में भगवान शंकराचार्य को शंकर का अवतार माना गया है। इसी भविष्य पुराण में शंकराचार्य द्वारा श्री बदरीनाथ की शिलारूप मूर्ति को स्थापित करने का जिक्र है। बदरीनाथ से श्री शंकराचार्य के सम्बन्ध के बारे में आगे के पृष्ठों में विस्तृत रूप से लिखा जायगा।

विशालपुरी तथा बदरीविशाल

पुराणों ने श्री बदरीनाथ को विशाला पुरी के नाम से भी पुकारा है, वेशाला के पुराणों में अनेक अर्थ बताये गए हैं, स्कन्द पुराण में लिखा है के यहाँ देवताओं, ऋषियों, व तीर्थों का निवास स्थान है इसलिए इसे वेशाला कहा गया है ।[1]

स्कन्द पुराण में ही इसका निरुपण एक और ढंग से भी किया गया है। लिखा है कि जीव के रहने का स्थान स्थूल व सूक्ष्म दो प्रकार का है। उन दो प्रकार के शरीरों को यह ज्ञान से नष्ट करती है इसे विशाला कहते हैं ।[2]

वाराह पुराण में कल्कि द्वादशी के व्रत के प्रसंग में सूर्यवंश के राजा विशाल की कथा है। उसमें लिखा है कि राजा विशाल युद्ध में शत्रुओं से पराजित होने पर बड़े दुखी हुए और हिमालय के गंधमादन पर्वत पर जाकर श्री बदरीनाथ में तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवान नर-नारायण राजा के सामने प्रकट होकर बोले—राजन ! हम तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हैं। तुम कोई वर मांगो। यह वचन सुनकर राजा बोला—भगवान ! पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि मुझे वर देने वाले आप दोनों कौन हैं। नर बोले—तुम अपनी तपस्या से जिनको प्रसन्न करना चाहते हो हम वे ही विष्णु के पृथक पृथक अवतार हैं।

इसके पश्चात् राजा ने उनकी पूजा प्रार्थना कर विनीत भाव से कहा कि यदि आप मुझ पर सचमुच प्रसन्न हैं तो मेरा छिना हुआ राज्य मुझे वापिस मिल जाय। भगवान ने पहले तो उसे समझाया कि यहाँ तपस्या करने के बाद राज्य प्राप्ति की कामना करना ही व्यर्थ है किन्तु उसके

---

1. तीर्थानां वसतिर्यत्र देवनां वसतिस्तथा ।
   ऋषीनां वसतिर्यत्र विशाल तेन कथ्यते ॥
   (स्कन्द० बदरी० १)

2. स्थूल सूक्ष्म शरीरं तु जीवस्य वसतिरयन्तम् ।
   तद् विनाशयेत् ज्ञाना विशाला तेन कथ्यते ॥
   (स्कन्द० वै० बदरी० म० १)

आग्रह पर भगवान ने उसका राज्य तो उसको लौटा दिया और साथ में उससे यह भी कहा कि अब से तुम्हारा नाम भी हमारे नाम से जुड़ा रहेगा और यह पुरी तुम्हारे नाम पर विशालापुरी के नाम से ख्यात होगी। तभी से इसका नाम विशालापुरी पड़ा। साथ ही राजा विशाल का नाम भगवान बदरीनाथ से सम्बन्धित होकर उनका नाम बदरी विशाल भी हुआ।

भगवान नर-नारायण

कृते युगे महाराज पुरा स्वायंम्भुवेऽन्तरे।
नरो नारायणश्चैव हरि:कृष्ण: स्वयंभुव: ॥
तेषाँ नारायणनरौ तपस्तेप तुर व्ययौ।
बदर्याश्रममासाद्य शकटे कनकामये ॥
(महाभारत शान्तिपर्व अ० ३३४।९-१०)

स्वायंभुव मन्वन्तर के सतयुग में भगवान वासुदेव के चार अवतार हुए थे जिनके नाम नर, नारायण, हरि और कृष्ण हैं। इन चारों में से अविनाशी नारायण और नर बदरिकाश्रम में जाकर एक सुवर्णमय रथ पर स्थित होकर घोर तपस्या करने लगे। श्रीमद्भागवत में कई स्थानों पर नर-नरायण का उल्लेख है। देवी भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में तो नर-नारायण की लम्बी कथा है, वहाँ नर-नारायण, हरि और कृष्ण चार भाई बताये गये है।[1] हरि और कृष्ण के सम्बन्ध में बताया गया है कि वे पहले ही तपस्या करने चल दिए थे। नर-नारायण अपनी माता मूर्ति देवी की आज्ञा से तपस्या में निरत हुए थे।

दक्ष प्रजापति की १६ पुत्रियों में से १३ का विवाह धर्म से हुआ था। इनमें सबसे छोटी कन्या मूर्ति देवी थी। मूर्ति देवी के गर्भ से ही नर-नारायण

1. हरि कृष्ण नर चैव तथा नारायणं नृप:।
योगाभ्यास रतो नित्यं हरि कृष्णो बभूवस।
नर नारायणो चैव चरेतुस्तप उत्तमम्।
प्रालेयाद्रि समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ॥
(देवी भाग० ४।५।१२-१३)

का जन्म हुआ था[1]। नर-नारायण ने अपनी माता मूर्ति देवी की अत्यन्त श्रद्ध
और भक्ति से सेवा की थी। उनकी सेवा से प्रसन्न होकर माता ने उन
वर माँगने को कहा तो नर-नारायण ने कहा—माँ ! यदि आप हम प
सचमुच प्रसन्न हैं तो हमें घरवार छोड़कर तपस्या में लीन रहने का वरदा
दीजिए, जिससे इस संसार का कल्याण हो। मूर्तिदेवी यद्यपि अपने पुत्र
को जंगल की राह पर नहीं भटकने देना चाहती थी किन्तु वचनवद्ध थी
उसने उन दोनों को तथास्तु कहकर वरदान दे दिया। वरदान पाकर
वदरिकाश्रम चले गए और वहीं घोर तपस्या में संलग्न हो गए। नाराय
की इस घोर तपस्या का वर्णन महाभारत के वन पर्व में हुआ है। उस
कहा गया है कि नारायण ने विशालपुरी के वदरिकाश्रम में दोनों भुजा
ऊपर उठाए केवल वायु का आहार करते हुए एक सौ वर्ष तक एक पैर
खड़े रहे हैं।[2]

इसी प्रकार उद्योग पर्व में भी नर-नारायण की घोर तपस्या का वण
किया गया है।[3]

इसीं प्रकार नर की घोर तपस्या को देखकर भगवान नारायण ने
से वर माँगने को कहा। नर वोले—भगवान ! मेरे लिए इससे बढ़
वरदान क्या होगा कि आप मुझ पर प्रसन्न हैं। फिर भी यदि आप
कोई वरदान देना ही चाहते हैं तो आप मेरा सारथीत्व स्वीकार क
भगवान नारायण वोले—नर ! इस जन्म में तो मैं तपस्वी हूँ। इसलि
इस वेश में मैं सारथी नहीं वन सकता किन्तु अगले जन्म में मैं तुम्हारे

---

1. आवामपि च धर्मस्य गृहे जातौ द्विजोत्तम।
रम्यां विशालामाश्रित्य तप उग्रं समास्थितौ॥

(महाभारत शान्ति० ३४४

2. ऊर्ध्ववाहुर्विशालायां वदर्यां मधुसूदन।
अतिष्ठ एकपादेन वायुभक्षः शतं समाः॥

(महा० वन० अ०

3. श्रूयेते तौ महात्मानौ नर नारायणा भुवौ।
तपोघोर मनिर्देश्यं तप्येते गंधमादने॥

(महा. उद्योग पर्व ६६

को पूर्ण करने के लिए तुम्हारा सारथीत्व अवश्य ग्रहण करूँगा। इसी वरदान को पूर्ण करने के लिए द्वापर में नारायण ने कृष्ण और नर अर्जुन का रूप धारण किया तथा कृष्ण भगवान ने अपने वचन के अनुसा महाभारत के युद्ध में अर्जुन का सारथीत्व ग्रहण किया।

बदरिकाश्रम में नर-नारायण की तपस्या के दौरान अनेक चमत्कारि घटनाएँ घटीं, जिनकी बड़ी विस्तृत कहानियाँ हैं। एक कथा के अनुसा नर-नारायण की घोर तपस्या देखकर देवराज इन्द्र घबड़ा गए कि कहीं ये मेरा इन्द्रासन न छीन लें। अत: इन्द्र ने वहाँ जाकर कहा—तपस्वियो ! मै तुम पर प्रसन्न हूँ। कोई वर माँगो। नर-नारायण ने उस ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। तब इन्द्र और भी परेशान हुआ। उसने उनके तप में विघ्न डालने के लिए देव लोक की अप्सराओं को भेजा। अप्सराएँ भगवान को मोहित करने के लिए कामोद्दीपक हाव-भाव दिखाने लगीं। भगवान ने आँखें खोल कर क्रोधमय दृष्टि से उनकी ओर देखा। इससे अप्सराएँ अत्यंत भयभीत हो गई कि कहीं ये अपने तपोबल से हमें भस्म न कर दें।

अप्सराओं को भयभीत देखकर भगवान बोले—देवियों ! डरो नहीं, आओ, मेरा आतिथ्य स्वीकार करो। उनको अपमानित करने के लिए भगवान ने तपोबल से अपनी जंघा से सहस्रों अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं, जो कि देवलोक की अप्सराओं से भी कई गुना सुन्दर थीं। भगगान की सामर्थ्य देखकर इन्द्र की अप्सराएँ लज्जित हो गईं भगवान नर-नारायण बोले—अप्सराओ ! तुम इनमें से उर्वशी अप्सरा को लेकर जाओ और देवराज इन्द्र को हमारी ओर से उपहार स्वरूप प्रदान करो। तदनन्तर भगवान ने प्रसन्न मुद्रा में कहा कि तुम भी कोई वरदान मांगो। अप्सराओं ने कहा—यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो हमें वर दे कि हम आपकी दासी बनें। भगवान ने कहा—देवियो ! यह अवतार तो मेरा केवल तपश्चर्या के लिए है, किन्तु मैं कृष्णावतार लेकर तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगा। भगवान का यह वचन सुनकर अप्सराएँ भगवान की जंघा से उत्पन्न उर्वशी को लेकर इन्द्रलोक को चली गई। कृष्णावतार के समय ये ही अप्सराएँ गोपियां हुई।

बदरिकाश्रम में नर-नारायण द्वारा तपस्या करने से इसे नर-नारायण

आश्रम भी कहा गया है। नर और नारायण के प्रतीक स्वरूप आज वहाँ नर-नारायण पर्वत मौजूद है। जहाँ आज मन्दिर है, उसके ऊपर नारायण पर्वत और सामने नर पर्वत खड़ा है। बदरीनाथ से कुछ आगे चलकर नर-नारायण की माता मूर्ति देवी का मन्दिर भी उक्त पौराणिक कथा की पुष्टि के लिए आज तक विद्यमान है। भाद्रपद की पावन द्वादशी को प्रति वर्ष यहाँ मेला लगता है। इस अवसर पर मूर्ति देवी के मन्दिर में रावल द्वारा पूजा की जाती है।

बदरीनाथ या बद्रिकाश्रम नाम क्यों पड़ा ?

संस्कृत में बदरी बेर को कहते हैं। आज भारत के भाल हिमालय की गोद में जहाँ भगवान बदरीनाथ का मन्दिर है, पौराणिक कथानक के अनुसार यहीं कलियुग के प्राणियों को न दीखने वाला एक विशाल बदरी (बेर) वृक्ष है, जिस प्रकार प्रयागराज में अक्षय वट-वृक्ष है। इस बदरी वृक्ष में सदैव लक्ष्मी का निवास रहता है। इसी कारण भगवान लक्ष्मीपति नारायण को यह बदरीवृक्ष अतिप्रिय है। इस बदरीवृक्ष की शीतल छाया में भगवान निरन्तर तपस्या में लीन रहते हैं। इस बदरी वृक्ष के नाम से ही इस क्षेत्र का नाम बदरीनाथ या बदरिकाश्रम हुआ।[1]

आज यहाँ बदरीवृक्ष हो या न हो किन्तु यह संभव है कि कभी यहाँ बदरी वृक्ष रहे होंगे। पुराणों में अनेक स्थानों पर इस क्षेत्र के लिए बदरी वन कहा गया है। अतः निश्चय ही यहाँ बेर के वृक्ष रहे होंगे, जिनकी शीतल छाया में तपोधन ऋषियों के आश्रम थे। महाभारत वन पर्व अध्याय १४५ में नर-नाराण आश्रम और बदरी वृक्ष का वर्णन हुआ है। पाण्डव जब गंध मादन पर्वत शिखर की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें भगवान नर-नारायण का आश्रम दिखाई दिया। जो नित्य फल फूल देने वाले दिव्य वृक्षों से अलंकृत था। वहाँ उन्होंने गोल तने वाली विशाल और मनोरम

1. यत्रास्ते बदरीवृक्षो बहुगंध फलान्वितः।
तस्मिन स्थाने महाभाग आकल्पादास्थितो तपः॥

(बृ० नारदीय पू. २।३७।५)

मनोरम वदरी भी देखी, जो स्निग्ध घनी छाया से युक्त, उत्तम शोभा से सम्पन्न तथा सघन कोमल और स्निग्ध पत्रों से युक्त थी।

श्रीबदरीनाथ धाम के अन्य तीर्थ

इसके अन्तर्गत उन तीर्थों का वर्णन किया जा रहा है जो मन्दिर बदरीनाथ के परिसर में हैं या उसके इर्द-गिर्द हैं। बदरीनाथ के दर्शन करने वाला तीर्थ यात्री भगवान के श्री विग्रह के दर्शन के अलावा आस-पास के अन्य छोटे-बड़े तीर्थों में भी अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करता है। अतः उनकी जानकारी और मान्यता के सम्बन्ध में तीर्थ यात्री को अवगत कराना नितान्त आवश्यक है। मुख्य-मुख्य तीर्थों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जा रहा है—

घण्टाकरण

भगवान बदरी विशाल के मन्दिर के दाहिनी ओर परिक्रमा में तथा मंडप के निकट ही एक बिना धड़ वाली मूर्ति दृष्टिगोचर होती है। यही घण्टाकर्ण की मूर्ति है। ये घण्टाकर्ण इस क्षेत्र के द्वारपाल या कोतवाल हैं हरिवंश पुराण में घण्टाकर्ण की कथा विस्तार से वर्णन की गई है।

घण्टाकर्ण को आज भी गढ़वाल में यत्र-तत्र पूजा जाता है। कहीं-कहीं तो इस देवता को बड़ी जात दी जाती है। प्रश्न उठता है कि आखिर यह घण्टाकर्ण कौन था और यह भगवान बदरीनाथ (विष्णु) का कोतवाल कैसे बना ?

हरिवंश पुराण के अनुसार घण्टाकर्ण एक पिशाच था। वह शिव जी का अनन्य भक्त था। वह दूसरे किसी देवता को नहीं मानता था। विष्णु का तो वह सख्त विरोधी था। वह अपने कानों में बड़े-बड़े घण्टे बाँधे रहता था ताकि उसे कहीं से विष्णु का नाम सुनाई न दे। हजारों वर्ष तक उसने शिव जी की घोर आराधना की। शिवजी ने उस पर प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिए और वरदान माँगने को कहा। उसने भगवान से प्रार्थना की कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुक्ति प्रदान कीजिए। शिव जी ने सोचा कि अभी इसके मन में भगवान विष्णु तथा मेरे प्रति भेद बुद्धि है। इसलिए शिवजी ने उससे कहा—मैं मुक्ति नहीं दे सकता। इसके दाता तो भगवान

नामक लिंग प्रतिष्ठित है। जो भी उस केदार लिंग के भक्ति भाव से दर्श स्पर्श तथा पूजन करते हैं, उनके करोड़ों जन्म के पाप तत्क्षण नष्ट हो जा हैं। मैं उस क्षेत्र में विशेषकर कलामात्र से ही रहता हूँ।

श्री बदरीनाथ के सिंह द्वार से नीचे तप्तकुण्ड की ओर उतरने प दाईं ओर भगवान शंकराचार्य का मन्दिर है। कुछ और सीढ़ियाँ उतर पर तप्तकुण्ड के पास बाईं ओर भगवान आदिकेदारेश्वर का मन्दिर है इस क्षेत्र में शिवजी के बसने की पुराणों में एक कथा है। प्राचीन काल मे ब्रह्माजी जब अपनी रूप यौवना कन्या सरस्वती पर मुग्ध हुए तो शिवजी ने क्रोधित होकर ब्रह्माजी का सिर काट डाला। वह सिर शिवजी के हाथ में ही चिपट गया। शिवजी अनेक तीर्थों में घूमे किन्तु न तो ब्रह्महत्या के पाप से उन्हें मुक्ति मिली और न सिर उनके हाथ से छूटा। घूमते-घूमते जब शिवजी श्री बदरिकाश्रम पहुँचे तो ब्रह्महत्या भी भाग गई और वह सिर भी हाथ से छूटकर अलकनन्दा के किनारे जा गिरा। कपालमोचन होने पर भगवान शिव बदरीनाथ में ही रहने लगे। यही कारण है कि बदरीनाथ दर्शन से पूर्व केदारेश्वर के दर्शन का महात्म्य है। कहते हैं जो लोग भगवान केदारेश्वर के दर्शन नहीं करते, भगवान बदरीनाथ उन पर प्रसन्न नहीं होते।

अन्य पुराणों में एक और कथा है। उत्तराखंड का यह पूरा क्षेत्र केदारखण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन काल में हिमालय के पाँचों खंडों (नेपाल, कुमायूँ, जालंधर, केदारखण्ड और कश्मीर) पर शिवजी का एकाधिपत्य था। आज भी गढ़वाल के हर क्षेत्र में शिव लिंग या शिव मंदिर स्थापित मिलेगा यह उक्ति भी प्रचलित है कि गढ़वाल में जितने कंकर उतने शंकर हैं।

कहते हैं भगवान विष्णु जब तप करने बदरिकाश्रम आए तो उन्हें यह क्षेत्र बहुत पसन्द आया। वे इस क्षेत्र पर अपना अधिकार जमाने का उपाय ढूँढने लगे। वे एक दिन शिशु का रूप धारण कर भगवान शिव के द्वार पर रोने लगे। उस समय शिव-पार्वती गंगा स्नान को जा रहे थे। भगवान शिव तो उस मायावी शिशु की हरकत को समझ गए और उपेक्षा

कर आगे बढ़ गए किन्तु माता पार्वती का मातृ सुलभ हृदय पिघल गया और वह शिवजी से बालक को आश्रय देने की प्रार्थना करने लगी। शिवजी ने तो पहले मना किया किन्तु पार्वती के अधिक आग्रह करने पर कहा—अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो बालक को आश्रय दे दो किन्तु बाद में तुम्हें पछताना पड़ेगा। पार्वती जी बालक को उठाकर अपने शिवालय में ले गईं और उसे सुलाकर गंगा-स्नान को चली गईं। शिव पार्वती जब गंगा-स्नान से लौटे तो देखते क्या हैं कि बालक रूपधारी भगवान विष्णु शिवजी के स्थान पर आधिपत्य जमाये हुए हैं। शिव पार्वती भगवान विष्णु की इस अद्भुत माया को देखकर दंग रह गए और उन्होंने वह स्थान छोड़कर पास के दूसरे पर्वत पर अपना डेरा डाल दिया जो आज केदारनाथ के नाम से प्रसिद्ध है।

कहते हैं कि प्राचीन काल में उत्तराखण्ड के चारों धामों—बदरी केदार, गंगोत्तरी और जमनोत्तरी का एक ही पुजारी होता था। देखा जाए तो वास्तव में ये चारों शृंग पास-पास ही हैं। बाद में जब पुजारी के मन में लोभ भर गया तो उसकी शक्ति नष्ट हो गई और वह चारों धामों की एक ही दिन में पूजा करने में असमर्थ हो गया। तब से चारों धामों के पृथक्-पृथक् पुजारी नियुक्त किए गए। परन्तु शिवजी, श्री [illegible] में आज भी अंश रूप से निवास करते हैं।

अग्नितीर्थ (तप्तकुण्ड)

भगवान केदारेश्वर के दर्शन करके कुछ पैड़ियाँ [illegible] तप्तकुण्ड या अग्नितीर्थ के दर्शन होते हैं। इस तप्तकुण्ड में [illegible] का पुराणों में बड़ा भारी महात्म्य लिखा है। [illegible] में लिखा है कि हजारों चान्द्रायण व्रतों से तथा करोड़ों कृच्छ [illegible] फल मिलता है वही फल अग्नितीर्थ में स्नान करने से मिलता है। यथा—

चान्द्रायण सहस्रैस्तु कृच्छैः कोटिभिरेव च।।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तत् स्नानात् वन्हितीर्थतः।।

(ना० पु० २।६७।१०)

पुराणों की बात में चाहे जितनी भी सच्चाई हो प्रत्यक्ष रूप से भी देखा जाय तो हजारों फुट ऊँचे बदरी क्षेत्र में जहां हिमगिरी ने अपने बहु-पाश में सबको जकड़ रखा हो और जहाँ हड्डीतोड़ ठण्ड में खून जमने लग जाता हो वहाँ अगर उबलते हुए जल की मुक्त धारा कुदरत की ओर से सब के लिए प्रस्तुत की जाए तो थके-मांदे यात्रियों के लिए यह एक अयाचित वरदान ही है। जब पृथ्वी के अन्दर से जल की धारा फूटती दिखाई देती है तो जान पड़ता है कि इसमें अँगुली डालने से जल उठेगी किन्तु जब यात्री निडर होकर तप्तकुण्ड में गोता लगाता है तो उसे अपार आनन्द की अनुभूति होती है। इस कुण्ड में स्नान करने से शरीर में एकदम स्फूर्ति आ जाती है। उस शीत में यह तप्तोदक एक प्रकार का जीवन रक्षक है। अतः यदि पुराणों ने इसकी महिमा गाई है तो कोई अत्युक्ति नहीं है। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि तत्काल फल देने वाला यह सबसे बड़ा तीर्थ है जिसमें स्नान करने से मुरझाया हुआ मन प्रफुल्ल हो जाता है। मूर्ति दर्शन का महात्म्य तो आस्था व श्रद्धा पर आधारित है।

हर तीर्थ के साथ कोई न कोई कहानी अवश्य जुड़ी है। इस तीर्थ में अग्नि का वास कैसे हुआ। इसकी पुराणों में एक कथा है। भृगु ऋषि की पत्नी पर कुमारावस्था से कोई राक्षस आसक्त था। एक दिन भृगु की अनुपस्थिति में और अग्नि की उपस्थिति में वह राक्षस भृगु की गर्भवती पत्नी को आश्रम से उड़ा ले गया। अग्नि इसकी साक्षी थी। रास्ते में प्रसव हो जाने से महर्षि च्यवन का जन्म हो गया। च्यवन के ब्रह्मतेज से राक्षस भस्म हो गया। महर्षि भृगु जब आश्रम में आए तो पत्नी को न पाकर चिन्तित हुए। बाद में अग्निदेव से पूरा वृतान्त मालूम हो गया। इस पर महर्षि भृगु अग्निदेव पर क्रोधित होकर श्राप दे दिया कि तुम सर्वभक्षी हो जाओ। अग्नि का कसूर यह था कि उसने ऋषि के परोक्ष मे उनकी पत्नी के साथ राक्षस की सगाई का समर्थन किया था। अग्निदेव महर्षि का शाप सुनकर दुःखी हुए और मुक्ति का उपाय सोचने लगे।

एक बार तीर्थराज प्रयाग में व्यास जी की अध्यक्षता में ऋषियों की गोष्ठी हुई। अग्निदेव ने वहाँ जाकर ऋषियों से श्राप की मुक्ति का उपाय

पञ्चशिला

उत्तराखण्ड में पाँच का बड़ा भारी महत्त्व है, जैसे—पंच प्रयाग, पंच केदार, पंचबदरी और पंचशिला। शिला के अर्थ पत्थर से हैं। किन्तु इन शिलाओं के साथ भी पौराणिक कहानियाँ जुड़ी हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार पाँच शिलाएँ इस प्रकार हैं—

नारदी नारसिंहीं च वाराही गारुड़ी तथा।
मार्कण्डेयीति विख्याताः शिला सर्वार्थ सिद्धिदाः॥

(स्कन्दपुराण ३।२०)

अर्थात् नारदशिला, नृसिंहशिला, वाराहीशिला, गरुड़शिला और मार्कण्डेयशिला ये पाँच सिद्धिदायक शिलाएँ हैं।

नारदशिला

नारदो भगवांस्तेपे तपः परम दारुणम्।
दर्शनार्थं महाविष्णोः शिलायां वायु भोजनः॥

नारद शिला तप्त कुण्ड के निकट अलकनन्दा की ओर वाली शिला को कहते हैं। इसी शिला के नीचे नारद कुण्ड है जहाँ से भगवान बदरीनाथ

की मूर्ति निकाल कर ऊपर मन्दिर में स्थापित की गई थी। जैसे ऊपर के श्लोक से ज्ञात होता है नारद जी ने भगवान विष्णु के दर्श के लिए इस शिला पर बैठकर वायु का आहार करते हुए दा तप किया था। तब भगवान ने प्रसन्न होकर नारद को तीन दिए थे।

१—नारद शिला व कुण्ड के दर्शन मात्र से प्राणी पाप मुक्त जाएंगे। २—नारद शिला के निकट भगवान स्थिर रहेंगे। ३—भगवा पर नारद जी की अटल भक्ति बनी रहेगी। प्राचीन काल में जब त मन्दिर की सुव्यवस्था नहीं हुई थी, भगवान की मूर्ति की पूजा नारद शिल के पास ही हुआ करती थी। उसी समय से यह शिला अब तक नारदशिल के नाम से प्रसिद्ध है।

नरसिंहशिला

नृसिंहोऽपि शिलारूपी जल क्रीड़ा परोऽभवत

तप्त कुण्ड के निकट अलकनन्दा के दायें तट पर जहाँ वर्तमान में पुल है उसके नीचे एक शिला है यही नरसिंह शिला के नाम के विख्यात है। इसकी आकृति भी कुछ सिंह जैसी है।

पुराणों के अनुसार जब भगवान ने प्रह्लाद की रक्षार्थ हिरण्यकश्यप को मारा और उसके सिंहासन पर बैठे तो देवता उनके विकराल रूप को देख कर कांपने लगे। देवताओं को भयातंकित देखकर भगवान ने उन्हें वरदान मांगने को कहा। देवताओं ने भगवान से अपना चतुर्भुज रूप दिखाने की प्रार्थना की। तब भगवान अपना क्रोध शान्त करने के लिए बदरिकाश्रम चले गए। वहाँ पुण्य सलिला अलकनन्दा में स्नान करके भगवान नृसिंह का रूप पूर्ववत सुन्दर व सौम्य हो गया। भगवान के चतुर्भुज रूप के दर्शन कर देवतागण अपने अपने स्थान को चले गए और ऋषि मुनियों के आग्रह पर भगवान ने बदरिकाश्रम में रहना स्वीकार कर लिया। तब से यह शिला नरसिंह शिला के नाम से ख्यात है।

वाराहीशिला

रसातलात समुद्धृत्य महीं दैवतवैरिणम्
हिरण्याक्षं रणे हत्वा बदरी समुपागतः

अलकनन्दा में एक ऊँची शिला है। यदि उसको देर तक ध्यानपूर्वक देखते रहें तो उसमें सूकराकृति का आभास होता है। कथा है कि भगवान वाराह रसातल से पृथ्वी को लाकर तथा युद्ध में हिरण्याक्ष को मारकर बदरीवन में चले आए थे और यहाँ शिला रूप में रहने लगे। तभी से यह वाराही शिला प्रसिद्ध हो गई।

गरुड़शिला

बदर्याःदक्षिणे भागे गंधमादन श्रृंगके।
गरुड़स्तप आतेपे हरिवाहन काम्यया॥

अर्थात् बदरिकाश्रम के दक्षिण भाग में गंधमादन पर्वत के श्रृंग पर गरुड़ जी ने भगवान का वाहन बनने की इच्छा से तप किया था।

आदि केदारेश्वर मन्दिर के पास अलकनन्दा की तरफ से एक खड़ी शिला दिखाई पड़ती है। यही गरुड़ शिला है। जैसा कि उपरोक्त श्लोक में व्यक्त है। गरुड़ जी ने भगवान का वाहन बनने के लिए एक हजार वर्ष तक तपस्या की थी। भगवान जब गरुड़ जी पर प्रसन्न हुए तो उन्हें उनकी इच्छानुसार वर दिया। उसके बाद गरुड़ जी ने बदरिकाश्रम में जाकर अग्नितीर्थ के समीप एक शिला पर बैठकर व्रत-उपवास किया और भगवान का दर्शन कर अपने स्थान को चले गए। तभी से यह शिला गरुड़ शिला कहलायी।

मार्कण्डेय शिला

मार्कण्डेय शिला भी तप्त कुण्ड की धारा के समीप ही है। मार्कण्डेय जी पर तो एक पूरा पुराण ही रचा गया है। अन्य पुराणों में भी इनका विस्तार से वर्णन है। कहते हैं मुनि मार्कण्डेय पहले अल्पायु थे। भगवान की घोर तपस्या करने पर उन्हें ७ कल्प की आयु मिली। वे प्रलय में भी बने रहते हैं।

कथा है कि एक बार मार्कण्डेय ऋषि तीर्थाटन करते हुए मथुरापुरी में पहुँचे। वहाँ उनकी बदरिकाश्रम से आए हुए देवर्षि नारद से भेंट हो गई। नारद जी ने मार्कण्डेय जी से कहा कि यूँ अनेक स्थानों पर भटकते रहने से क्या लाभ है। आप मूल को ही क्यों नहीं पकड़ लेते।

आप सीधे बदरिकाश्रम जाकर भगवान के दर्शन करें जहाँ वे नित्य निवास करते हैं। मार्कण्डेय जी ने नारद जी से बदरिकाश्रम का महात्म्य सुना तो उनके मन में बड़ी श्रद्धा उपजी। अतः वे अब सीधे बदरिकाश्रम को चले गए। वहाँ अलकनन्दा के समीप वे एक शिला पर बैठकर तपस्या करने लगे। भगवान प्रसन्न हुए। वर माँगने को कहा। मार्कण्डेय जी बोले—मेरी शिला के समीप सदा आपकी स्थिति बनी रहे। भगवान "तथास्तु" कह कर अन्तर्धान हो गये। तब से यह शिला मार्कण्डेय शिला के नाम से विख्यात है।

ब्रह्मकपाल (कपालमोचन)

तप्तकुण्ड से ऊपर सड़क पर आकर अलकनन्दा के उद्गम की ओर लगभग ३०० मीटर चलने पर अलकनन्दा के किनारे एक शिला दृष्टिगोचर होती है। यह शिला ब्रह्मकपाल के नाम से प्रसिद्ध है। कपालमोचन तीर्थ भी इसी को कहते हैं। इस स्थान पर पिण्डदान और तर्पण करने पर पितरों का नरक से तारण हो जाता है। इसी कारण इनको पितृ तीर्थ भी कहते हैं।

बृह्मकपाल तीर्थ की पुराणों में भिन्न भिन्न कथायें हैं किन्तु सबसे प्रसिद्ध और मान्य कथा यही है कि यहाँ पर शिव जी के हाथ से ब्रह्मा जी के कपाल याने सिर का मोचन हुआ था। स्कन्द पुराण के दूसरे अध्याय में शिव जी स्वयं स्कन्द से कहते हैं कि ब्रह्मा जी जब अपनी पुत्री पर मोहित हो गए तो मैंने उनका सिर काट डाला। वह सिर मेरे हाथ पर चिपक गया और मुझ पर ब्रह्म हत्या का पाप भी लग गया। मैं सारे तीर्थों में घूमा पर ब्रह्महत्या से मुक्ति नहीं मिली और ना ही मेरे हाथ से ब्रह्मा जी का सिर छूटा अन्त में मैं बदरिकाश्रम गया जहाँ कपाल मोचन भी हुआ और मुझे ब्रह्महत्या से मुक्ति भी मिली।

आज भी यात्रीगण इस स्थान पर मुण्डन करके अपने पितरों को पिण्डदान करते हैं क्योंकि इस स्थान पर पिण्डदान का आठगुना फल मिलता है। जैसा कि पुराणों में लिखा है—

पिण्डं विधाय विधिवत् नरकात् तारयेत पितृन।
पितृतीर्थमिदं प्रोक्तं गयातोष्टगुणा फलम ॥
—(स्कन्द पुराण)

ब्रह्मकपाल के नीचे अलकनन्दा में एक कुण्ड है जिसे ब्रह्मकुण्ड के नाम से जाना जाता है। भगवान के अंग से प्रकट मधु कैटभ जब ब्रह्मा जी को वेद विहीन कर भाग गए तो ब्रह्मा जी की तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु जी इस कुण्ड से हयग्रीव अवतार लेकर दोनों दैत्यों का वध कर वेद छीन लाए। भगवान ने हयग्रीय अवतार लेकर वेदोद्धार किया। तभी से यह ब्रह्मकुण्ड प्रसिद्ध हुआ।

१५

बदरीनाथ से आगे

श्री बदरीनाथ धाम से आगे अनेक तीर्थ स्थान हैं। जिनका वर्ण नारदपुराण, वामन पुराण व स्कन्द पुराण में किया गया है। बदरीनाथ से आगे सत्यपथ या सतोपंथ तक ही आमतौर पर साहसी यात्री-गण जा पाते हैं। सतोपंथ से पाँच किलोमीटर की दूरी पर स्वर्गारोहण है। यहाँ नर नारायण पर्वत आपस में मिल जाते हैं। इसे लांघने का साहस सामान्य यात्री या पर्यटक नहीं कर सकता। बदरीनाथ से यहाँ तक की दूरी लगभग २५ किलोमीटर है यह यात्रा काफी कष्ट साध्य है। बहुधा लोग बदरीनाथ से आगे नहीं जाते।

बदरीनाथ से आगे अलकनन्दा के दोनों ओर तीर्थ हैं। जाते समय इस पार के तीर्थों के दर्शन हो जाते हैं। अब तो माणा गाँव के आगे बढ़ने के लिए परगनाधीश जोशीमठ से पार पत्र लेना पड़ता है।

पाठकों की जानकारी के लिए बदरीनाथ के सत्यपथ तक के तीर्थों का संक्षिप्त वर्णन आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है। मातामूर्ति से आगे साहसी यात्रियों को ही कदम बढ़ाने चाहिए।

इन्द्रधारा

बदरीनाथ से एक मार्ग अलकनन्दा के दाहिने किनारे माणागाँव की ओर जाता है। इसी मार्ग पर एक मील चलने पर पारे की तरह सफेद एक धारा वेग से गिरती हुई दृष्टिगोचर होती है। उत्तुंग हिम मंडित शिखरों से गिरती हुई यह जलधारा कोलाहल करती हुई ऐसी दिखाई देती है मानो पिघली हुई चांदी बह रही हो यही इन्द्रधारा है। आसपास खूब चौरस मैदान है। अब यहां कुछ मार्छा लोगों ने मकान बना लिए हैं। यहां ये लोग
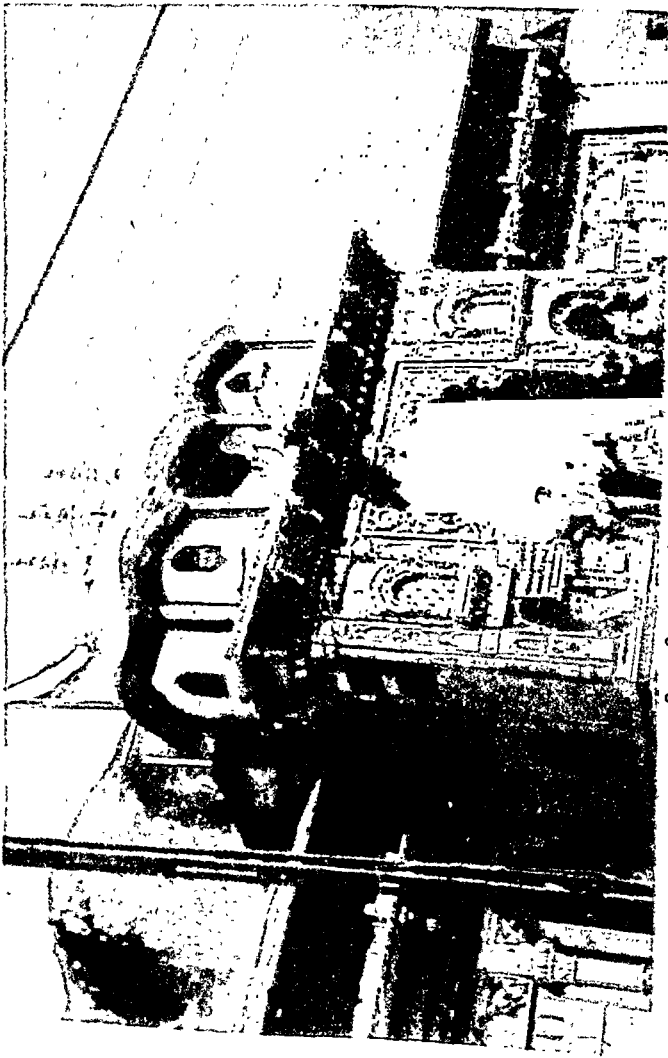
श्री बद्रीनाथ मंदिर
SHREE BADRINATH TEMPLE
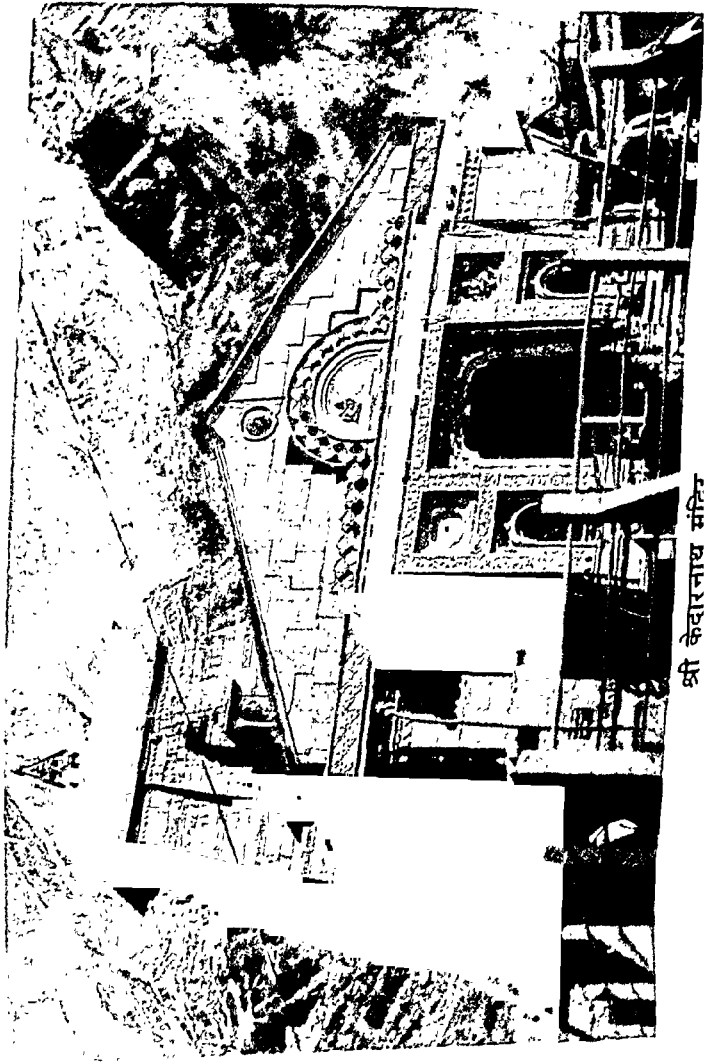
श्री केदारनाथ मंदिर
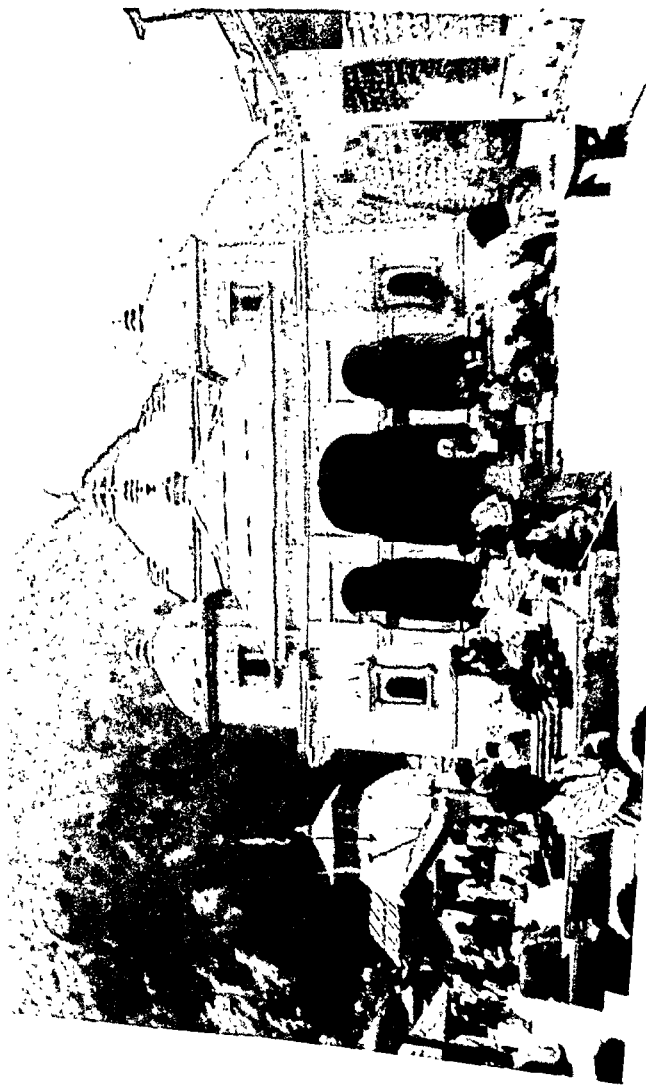
श्री गंगोत्री मन्दिर
Sri Gangotri Temple
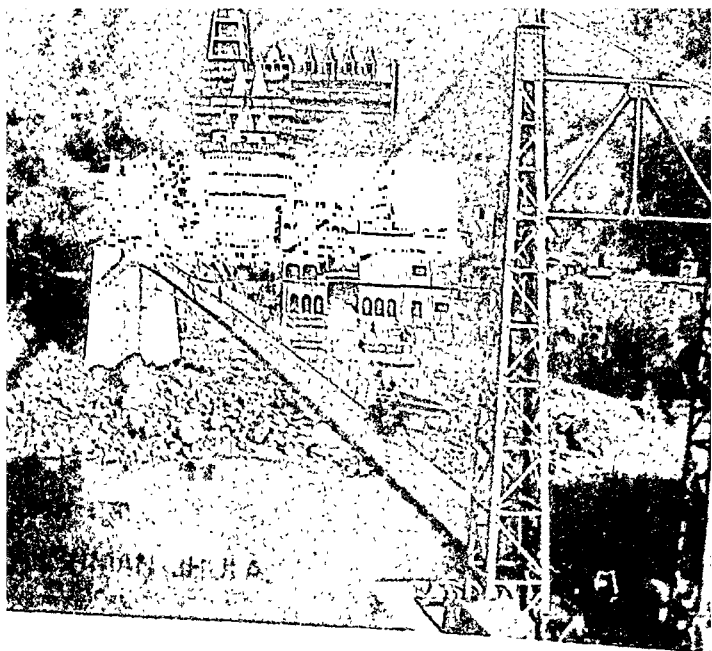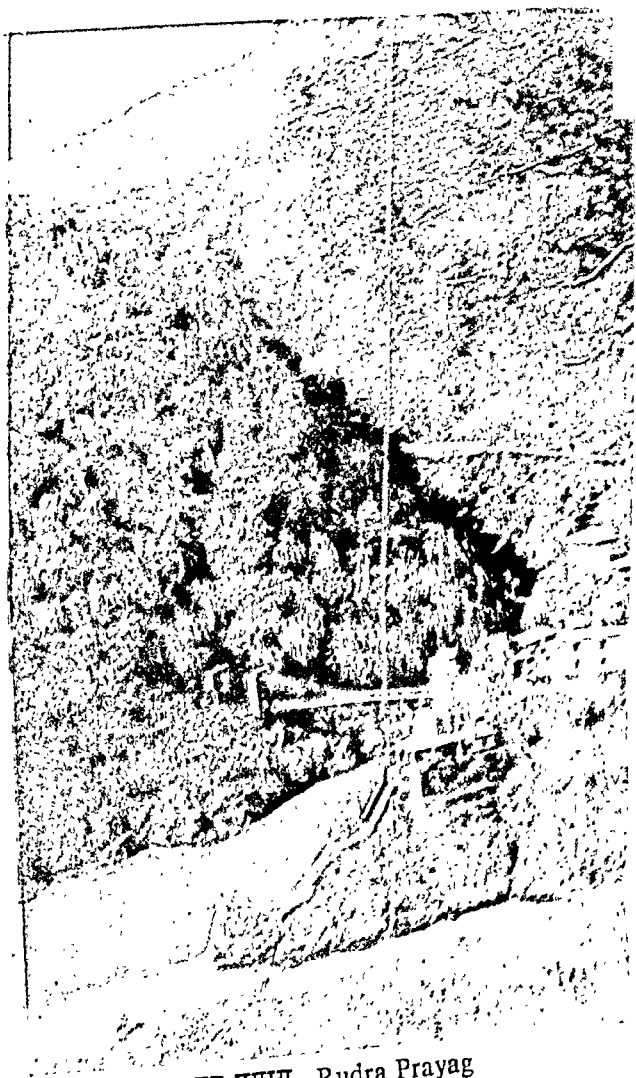
रुद्र प्रयाग Rudra Prayag

फाफर और आलू की खेती करते हैं। गेहूँ जौ भी यहाँ पैदा होते हैं किन्तु ये फसलें यहाँ आषाढ़ व सावन में कटती हैं।

वर्षा ऋतु में यहाँ की शोभा देखते ही बनती है। चारों ओर रंग-बिरंगे पुष्प खिले हुए नजर आते हैं।

पौराणिक पुरावृत्त के अनुसार इन्द्र ब्रह्म हत्या के कारण पश्चाताप की अग्नि में जलते भटकते बदरिकाश्रम पहुँचे और इस स्थान में तपस्या में निरत हो गए। जब ब्रह्महत्या से मुक्ति मिल गई तब उन्होंने फिर से इन्द्रासन प्राप्त किया। किसी भी मास की शुक्ला त्रयोदशी को यहाँ स्नान करने से उत्तम फल की प्राप्ति बताई गई है।

माता मूर्ति

संगमात दक्षिणे भागे धर्मक्षेत्रं प्रकीर्तितम्
यत्रमूर्त्यां श्रुतौजातौ नरनारायण वृषी ॥

—स्कन्द पु०

पूर्व पृष्ठों में भगवान नर-नारायण की कथा का विस्तार से वर्णन किया जा चुका है। जिसमें दक्ष दुहिता धर्म की पत्नी मूर्ति देवी का भी प्रसंग है। इन्द्रधारा से कुछ और आगे बढ़ने पर उत्तर प्रदेश की उत्तरी सीमा का आखिरी गाँव मणिभद्रपुर (माणा) दिखाई देता है। उस गाँव में प्रवेश करने से पूर्व अलकनन्दा और सरस्वती के संगम पर एक झूला पुल पार करना पड़ता है। इस पुल को पार न करें और बाईं ओर निगाह डालें तो खेतों में एक पगडंडी दिखाई देती है जो सीधे एक श्वेत मन्दिर में ले जाती है यही माता मूर्ति का पवित्र मन्दिर है।

यह मन्दिर कब, कैसे और क्यों बना? इसकी एक कथा है। जैसा पिछले पृष्ठों में कहा गया है कि मूर्तिदेवी ने नर और नारायण नामक अपने दोनों पुत्रों को तप करने की आज्ञा दे डाली। परन्तु विदा करते समय मातृ हृदय पसीज गया। आँखें नम करते हुए माता ने कहा—बेटा! तप करते करते ऐसा निर्मोही भी न बन जाना कि माँ को ही भूल जाओ। कभी-कभी दर्शन देते रहना। नर-नारायण चले गए और तपस्या में इतने लीन हुए कि माता को भूल गए।

जब बहुत दिनों तक नर-नारायण की कोई सुध न मिली तो एक दिन मूर्ति देवी ने अपने पति धर्म से बदरिकाश्रम की ओर जाने की इच्छा प्रकट की। बात तय हो गई। वे दोनों पति-पत्नी और साथ में लक्ष्मी जी भी बदरिकाश्रम की ओर प्रस्थित हो गए। नर-नारायण ने उनके आने पर भरपूर स्वागत किया। अपने सुकोमल बालकों को घोर तपस्या का कष्ट सहन करते देख माता पिता की आँखें भर आईं। माता मूर्ति देवी की इच्छा अब लौटने की नहीं अपितु वहीं तपोवन में तप करने की हुई। माता के इस विचार से नर-नारायण को कुछ परेशानी हुई। उन्होंने सोचा माता के निकट रहने से तप में विघ्न पड़ेगा। उन्होने माता से साल भर में एक बार दर्शन देने का वादा किया और उन्हें अपने आश्रम से विदा कर दिया। अब वे दोनों पुनः तपस्या में लीन हो गए। धर्म, मूर्तिदेवी और लक्ष्मी जी भी उनसे विदा लेकर कहीं तपस्या का स्थान ढूँढ़ने लगे। काफी खोजबीन के बाद उन तीनों ने अपने अपने तपस्या के स्थान नियत कर दिए। माता मूर्ति तो माँ अलकनन्दा की स्वीकृति से संगम के दक्षिण भाग में रहने लगीं और लक्ष्मी जी भी गंगा जी की स्वीकृति लेकर दो कोस आगे भोजपत्र के सुन्दर वन में रहने लगीं। ये दोनों स्थान आज "मातामूर्ति" और "लक्ष्मीवन" के नाम से ख्यात है। धर्म ने भी वसुधारा के निकट अपना आवास बना लिया। आज इस क्षेत्र को "धर्म क्षेत्र" कहते हैं।

माता को दिए गए कथन के अनुसार नर-नारायण साल में एक बार माता के दर्शन करते थे। आज भी यह प्रथा जारी है। भगवान की उत्सव मूर्ति प्रतिवर्ष भाद्रपद की पावन द्वादशी को मूर्तिदेवी के मन्दिर में ले जाई जाती। मन्दिर का रावल विधिवत पूजा करता है। माता को भोग लगाया जाता है। इस दिन माता मूर्ति में एक बड़ा मेला लगता है। काफी लोग माता के दर्शनों के लिए वहाँ जाते हैं। कहते हैं माता के दर्शनों के बगैर बदरीनाथ की यात्रा अपूर्ण रहती है। यह स्थान मन्दिर बदरीनाथ से ३ कि० मीटर की दूरी है' माता मूर्ति का भव्य मन्दिर व मूर्ति दर्शनीय हैं।

लक्ष्मीवन

माता मूर्ति से लगभग ७ किलोमीटर की दूरी पर लक्ष्मीवन है। लक्ष्मी जी की यहाँ कोई मूर्ति अब देखने को नहीं मिलती। लक्ष्मी जी यहाँ प्रकृति के रूप में ही वास करती हैं। जैसा कि पूर्व लिखा गया है, लक्ष्मी जी ने इस स्थान पर तप किया था। इस स्थान पर बड़े बड़े भोजपत्र के वृक्ष विद्यमान हैं। जबकि इतनी ऊँचाई पर आमतौर पर वृक्षों का अभाव ही रहता है। इस वन में सुन्दर सुन्दर पुष्प भी खिलते हैं। प्राकृतिक दृश्य मन को मोह लेता है। सत्यपथ जाने वाले यात्री यहाँ एक दिन निवास करते हैं।

सहस्रधारा

लक्ष्मीवन से लगभग ३ किलोमीटर पर सहस्रधारा तीर्थ है। पहाड़ से निकलकर यहाँ अनेक धारायें प्रवाहित होती हैं। पुराणों में यह स्थान पंच धारा से भी विख्यात है। कथा है कि भगवान की आज्ञानुसार प्रयाग, पुष्कर, नैमिष, गया और कुरुक्षेत्र ने यहाँ तप कर तेज प्राप्त किया था। तभी से यह तीर्थ प्रसिद्ध है।

चक्रतीर्थ

चक्रतीर्थ का वर्णन मुझे किसी भी पुराण में नहीं मिला। केवल केदार खंड ग्रंथ में इसका वर्णन है। वैसे यह स्थान बड़ा मनोहर है। केदारखंड के अनुसार यहाँ अर्जुन ने तपस्या करके अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। यहाँ चक्र के आकार का एक मैदान है जो तालाब जैसा है। किन्तु प्रकृति नटी ने यहाँ जो सौन्दर्य बखेरा है वह वर्णनातीत है। चक्रतीर्थ की ऊँचाई १२३०० फीट है।

सत्यपथ

त्रिकोण मंडितं तीर्थ नाम्ना सत्यपद प्रदम्।
दर्शनीयं प्रयत्नेन सर्वैं पापमुमुक्षुभिः॥

—(स्कन्द पुराण)

जो त्रिकोण मंडित तीर्थ है, जिसका नाम सत्यपद है और जो सत्यपद

देने वाला भी है, अपने पापों से छूटने की इच्छा रखने वालों को इस
नाशक तीर्थ को प्रयत्न पूर्वक देखना चाहिए।

चक्रतीर्थ से लगभग साढ़े तीन किलोमीटर की दूरी पर यह सत्य
नामक तीर्थ है। मार्ग कठिन है एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर कूद कूद
चलना पड़ता है। पत्थरों के नीचे से कल कल का शब्द करता हुआ ज
वहता रहता है।

जैसा कि उक्त श्लोक में लिखा है यह एक त्रिकोण सरोवर है। स्क
पुराण के अनुसार यहाँ एकादशी के दिन स्वयं विष्णु भगवान स्नान कर
आते हैं। इस सरोवर में स्नान करने का बड़ा भारी महात्म्य वताया गय
है। कहते हैं इसके तीनों कोणों पर तीनों देवता स्थिर रहते हैं। इस हि
प्रदेश में विधाता के इस रचना कौशल को देखकर आश्चर्य होता है। यह
से स्वर्गारोहण के भी दर्शन होते हैं। हिम पर सीढ़ियों का आकार स्पष्
दिखाई देता है। सत्यपथ की ऊँचाई सिन्धुतट से १४,४०० फीट है।

सोमकुण्ड

सत्यपथ से लगभग ढाई किलोमीटर आगे सोमकुण्ड है। कहते हैं इस
कुण्ड का पानी चन्द्रमा की कला के साथ घटता बढ़ता है और अमावस को
बिलकुल सूख जाता है। इस स्थान पर चन्द्रमा ने स्वर्ग की प्राप्ति के लिए
तप किया था। भगवान ने चन्द्रमा को ग्रह नक्षत्रों का अधिपति बना कर
सम्मानित किया था। तभी से यह कुण्ड प्रसिद्ध है।

सूर्यकुण्ड

चन्द्रकुण्ड से डेढ़ किलोमीटर आगे स्वच्छ जल का यह कुण्ड है जिसे
सूर्यकुण्ड के नाम से जाना जाता है। इसमें से स्वच्छ जल की धारा निरन्तर
बहती रहती है जिसकी शोभा वर्णनातीत है। सूर्यकुण्ड से दाहिनी ओर
विष्णुकुण्ड तथा सामने स्वर्गारोहण पर्वत की सीढ़ियां दिखाई देती हैं। इसी
स्थान पर नर-नारायण पर्वत आपस में मिल गए हैं। महाभारत के अनु-
सार पाण्डव इसी पर्वत से सुमेरु पर्वत पर गये थे।

इस स्थान की शोभा का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं हो सकता। इसका ानन्द तो प्रत्यक्ष द्रष्टा को ही मिल सकता है। यह स्थान पृथ्वी पर स्वर्ग क समान है। जिन यात्रियों ने यहाँ की यात्रा की है उनका कहना है कि यहाँ से लौटने की इच्छा नहीं करती।

ऊपर जिन तीर्थों का वर्णन किया हुआ है ये सब नारायण-पर्वत है। अब उस पार के तीर्थों का भी संक्षिप्त वर्णन किया जाएगा जो कि नर पर्वत पर स्थित हैं।

रामगुफा

सत्यपथ से जब लौटते हैं तो नर पर्वत पर एक गुफा मिलती है जिसे रामगुफा कहते हैं। आनन्द रामायण में रामचन्द्र जी का सत्यपथ गमन का स्पष्ट वर्णन है :—

गत्वा देवप्रयागंचालकनन्दा तटेन वै।
नर नरायणौ गत्वा दर्शनान्मुक्तिदौ नृणाम्॥
बदरिकाश्रमे रामः केदारेश विलोक्य सः।
महापथं ततो गत्वा ययो तन्मानसं सरः॥

(आनन्द रामायण)

अलकापुरी

अलकापुरी की ऊँचाई समुद्र की सतह से १२८३० फीट है। यक्षाधिपति कुबेर की राजधानी अलकापुरी का नाम प्रायः पुराणों और अन्य संस्कृत ग्रंथों में सुना जाता है। कुछ लोग कुबेर की अलकापुरी सुमेरु पर्वत पर मानते हैं। यहाँ से जल की एक वेगवती धारा बहती है। लोगों का विश्वास है कि यही अलकनन्दा का मूल स्रोत है। इस स्थान पर सत्यपद तथा गंगोथी ग्लेशियर मिलते हैं। पुराणों में अलकनन्दा को ही विष्णुपदी तथा गंगा मानते हैं। यही आदि गंगा हैं। वैसे भागीरथी भी इसी पहाड़ की दूसरी ओर से निकलती है। अतः यह भी मान्यता है कि भागीरथी और

अलकनन्दा का उद्गम एक ही है। उसकी दो धारायें हैं। एक का ना
अलकनन्दा और दूसरी का नाम भागीरथी है।

अलकनन्दा के सम्बन्ध में यह भी किंवदन्ति प्रचलित है कि यहाँ
और गंधर्व अदृश्य रूप में वास करते हैं।

वसुधारा

वसुधारा अलकनन्दा के उस पार है। समुद्रतट से इसकी ऊँच
३६४८ मीटर है। वसुधारा ४०० फीट ऊँचा एक जल प्रपात है। फेनि
जल धारायें ऊँचाई से गिरती हुई ऐसी लगती हैं जैसे श्वेत मोतियों
झड़ी लगी हो। स्कन्द पुराण में लिखा है कि पापियों के शरीर पर उस
बूँदे नहीं गिरती। इसमें कितनी सच्चाई है, कहा नहीं जा सकता। हवा
झोंकों के साथ जल की फुहार कभी इधर कभी उधर गिरती रहती है
दूर से यह चित्ताकर्षक लगती है। कथा है कि अष्ट वसुओं ने यहाँ त
किया था।

केशव प्रयाग

वसुधारा से लौटते समय माणा ग्राम के निकट पत्थर का एक प्राकृ
तिक पुल है। यह सरस्वती गंगा पर है। इसे भीम पुल कहते हैं। पुल
नदी कुछ आगे बढ़कर अलकनन्दा में विलीन हो जाती है। जहाँ दोन
नदियाँ परस्पर मिलती हैं, इसी जगह का नाम केशव प्रयाग है। पुराण
के अनुसार जो केशव प्रयाग में सरस्वती का दर्शन, स्नान व मार्जन कर
है उनके वंश पर माता सरस्वती की बड़ी कृपा रहती है। उनमें स
विद्वान होते हैं।

माणाग्राम (मणिभद्रपुर)

माणा ग्राम की दूरी बदरीनाथ से ५ किलोमीटर है। सिन्धुतट
इसकी ऊँचाई ३१८६ मीटर है। इस गाँव में भोटिया (मार्छा) जाति
लोग रहते हैं। ये यक्ष किन्नर मूल के माने जाते हैं। पहले इनका तिब्बत
से व्यापार होता था किन्तु अब यह व्यापार बन्द हो गया है। उत्तर दिशा

में भारतवर्ष का यह अन्तिम गांव है। इससे आगे कोई बस्ती नहीं है। भारत-तिब्बत सीमा मानाधुरा (१८४०२ फीट) यहाँ से ४० किलोमीटर है। मानाधुरा होकर एक मार्ग कैलास-मानसरोवर को गया है।

माणा गांव से आगे जाने की अब इजाजत नहीं है। सन् १९७२ में इन पंक्तियों के लेखक को माणा से आगे भीमशिला जाने पर सुरक्षा कर्मचारियों ने कुछ देर के लिए नजर कैद कर दिया था। बाद में जब उनको यह विश्वास हो गया कि सुरक्षा की दृष्टि से यह व्यक्ति खतरनाक नहीं है, तब छोड़ दिया।

व्यास गुफा व गणेश गुफा

सम्याप्रास से भीमशिला के ऊपर होते हुए माणाग्राम के ऊपर व्यास गुफा तक जाने का मार्ग है। यहाँ पहाड़ी पर एक गुफा है। इसी को व्यास गुफा के नाम से जाना जाता है। इसी के निकट गणेश गुफा है। कहा जाता है कि व्यास जी ने अष्टादश पुराणों और महाभारत की रचना इसी गुफा मे बैठकर की थी। कथा है कि व्यास जी श्लोक बनाते थे और गणेश जी तुरन्त लिख लेते थे। गणेश जी जिस गुफा में रहते थे उसी को गणेश गुफा कहते हैं।

मुचकुन्द गुफा

जहाँ व्यास गुफा है, उसी के ऊपर काफी ऊँचाई पर मुचकुन्द गुफा है। जब कालयवन को मुचकुन्द की दृष्टि से भस्म कराके श्रीकृष्ण मुचकुन्द के सामने प्रकट हुए तब मुचकुन्द ने भगवान की स्तुति की। भगवान की आज्ञा से उसने यहाँ मोक्ष प्राप्ति के लिए तप किया था। यहाँ तप करके मुचकुन्द प्रायश्चित से मुक्त हुए थे। तभी से इसका नाम मुचकुन्द गुफा प्रसिद्ध हुआ।

कलाप ग्राम

मुचकुन्द गुफा के पास एक बड़ा भारी मैदान है, जिसकी पहचान कुछ लोग कलाप ग्राम से करते हैं जिसका वर्णन श्रीमद्भागवत में हुआ है। कहते हैं यहां ऋषि मुनि गुप्त रूप से तपस्या करते हैं। क्योंकि [illegible]

यहीं से रास्ता जाता है। यहाँ से लौटकर पुनः माणा ग्राम में आ जाते हैं। यहीं बदरीनाथ पुरी जाने के लिए एक रास्ता पुल पार कर इन्द्रधारा होकर जाता है और दूसरा रास्ता इसी पार शेषनेत्र होकर जाता है।

शेषनेत्र

बदरीनाथ पुरी के उस पार अलकनन्दा के बायें तट पर शेषनेत्र तीर्थ है। यहाँ पर एक बड़ी शिला पर शेष जी के नेत्रों के निशान बने हुए हैं। आगे अलकनन्दा के ऊपर साधुओं के रहने की छोटी-छोटी कुटिया बनी हुई हैं।

चरणपादुका तथा उर्वशी कुण्ड

बदरीनाथ पुरी से पश्चिम की ओर बढ़ें तो नीलकण्ठ पर्वत की जड़ में यह चरणपादुका तीर्थ है। यहाँ भगवान के चरणों के चिन्ह हैं। चरण-पादुका के ऊपर ही उर्वशी कुण्ड बताया जाता है। यहाँ पर भगवान नारा-यण ने देवराज इन्द्र द्वारा भेजी गई अप्सराओं का मान मर्दन करने के लिए अपनी जंघा से उर्वशी को उत्पन्न किया था। भगवान की भोगमन्डी में चरणपादुका से ही नल द्वारा पानी आता है। अगस्त में यहाँ का दृश्य बड़ा ही मनोमुग्धकारी हो जाता है क्योंकि तब यहाँ अनेक रंगों के पुष्प खिल उठते हैं।

बदरीश ताल

यह शेषनेत्र के निकट है। वर्तमान में यह गंदा रहता है। इसका विकास होने पर यह दर्शनीय बनेगा।

बामणी गाँव

बदरीनाथ में बस स्टैण्ड से नीचे मदरासी धर्मशाला है। इसी ध[illegible] शाला के सामने अलकनन्दा के उस पार बामणी गाँव है। आधु[illegible] सुविधाओं से युक्त यह रमणीक गाँव नीलकण्ठ शिखर के पाद प्रदे[illegible] अवस्थित है। गाँव में एक अति सुन्दर देवी का मन्दिर है। जो अ[illegible] विशिष्ट वास्तुशिल्प के कारण आकर्षक एवं अवलोकनीय है। मन्दिर हाल ही में जीर्णोद्धार हुआ है।

महाभारत व पुराणों में श्री बदरीनाथ

पुराणं सर्वशास्त्राणाँ प्रथम ब्रह्मणास्मृतम् ।
अनन्तरं चवक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गता[1]॥

सृष्टि के रचनाकार ब्रह्मा जी ने सब शास्त्रों से पहले पुराणों को प्रकट
[कि]या। उसके अनन्तर उनके चार मुखों से चार वेद प्रकट हुए।

पुराण और महाभारत हमारी भारतीय संस्कृति की अक्षयनिधि हैं। [ह]मारी सभ्यता, संस्कृति, धर्म और जातीयता का विशद बोध कराने वाले [ह]मारे ये पुराण हिन्दू संस्कृति के प्राण हैं। इसी प्रकार महाभारत हमारे [प्र]ाचीन ज्ञान का विश्वकोष है। इसके विषय में तो यहाँ तक कहा गया है [कि] धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के सम्बन्ध में जिन जिन विषयों का समा[वे]श महाभारत में हुआ है वे ही विषय अन्य ग्रंथों में पाए जाते हैं और जो विषय उसमें नहीं हैं वे अन्यत्र कहीं भी नहीं हैं। यथा—

धर्मेचार्यं च कामेच मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्॥

(महाभारत १।६२।५३)

कहने का तात्पर्य यह है कि जो पुराण और महाभारत इतने प्रसिद्ध हैं तथा जो हिन्दू धर्म के प्राण हैं, उनमें बदरीनाथ के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री संकलित है। महाभारत में तो स्थान स्थान पर श्री बदरीनाथ का वर्णन है। श्री बदरीनाथ के समीप पाण्डुकेश्वर में महाराजा पाण्डु रहते थे। पाण्डवों का जन्म भी पाण्डुकेश्वर में ही होना बताया जाता है। जन्म के पश्चात् लाक्षागृह से भागकर भी इधर आए। वनवास काल में भी वे यहाँ आए। राजा होने पर अश्वमेध यज्ञ किया। तब भी धन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए मरुत यज्ञ के बचे सुवर्ण को लेने के लिए इसी उत्तराखण्ड में आए। अन्त में राज्य त्याग कर जब महाप्रस्थान पथ की ओर चले तब भी उन्होंने इसी केदारखण्ड में आश्रय लिया। गंधमादन पर्वत की ओर जाते हुए पाण्डवों ने बदरिकाश्रम में विश्राम किया था। पूर्वकाल में नर के रूप में स्वयं अर्जुन ने यहाँ तप किया था।

1. ब्रह्माण्ड पुराण

महाभारत के वन पर्व के अध्याय ९० में वदरिकाश्रम की महिमा का विशद वर्णन है। धौम्यऋषि युधिष्ठिर को वदरीनाथ की महिमा का वर्णन सुनाते हुए कहते हैं—भारत श्रेष्ठ। भूत, भविष्य और वर्तमान जिनका स्वरूप है, जो सर्व शक्तिमान, सर्व व्यापी सनातन एवं पुरुषोत्तम नारायण हैं, उन अत्यन्त यशस्वी हरि की पुण्यमयी विशालापुरी बदरीवन के निकट है। वह नर-नारायण आश्रम कहा गया है। वह पुण्यप्रद वदरिकाश्रम तीनों लोकों में विख्यात है।[1]

इसी प्रकार पुराणों में श्री बदरीनाथ के सम्बन्ध में अनेक प्रसंग हैं। स्कन्द पुराण ने तो यहाँ तक कह दिया कि स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल में अनेक तीर्थ हैं किन्तु वदरीनाथ के समान तीर्थ न हुआ है और न होगा। विभिन्न पुराणों में वदरीनाथ के सम्बन्ध में क्या कुछ है, इसका स्थानाभाव के कारण अति संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जा रहा है—

पद्म पुराण

श्लोक संख्या की दृष्टि से यह सबसे बड़ा पुराण है इसकी श्लोक संख्या ८११०० वताई गई है। इसमें ७ खण्ड हैं। इसके वैष्णव खण्ड में तीर्थों के महात्म्य के प्रसंग में श्री वदरीनाथ का विस्तृत और रोचक वर्णन है। इसमें वदरी क्षेत्र को अनादि सिद्ध कहा गया है। जैसे वेद भगवान का शरीर है वैसे यह क्षेत्र भी है। इस क्षेत्र के अधिपति साक्षात नारायण हैं। वदरीनाथ में जो पाँच शिलायें हैं उनमें सदा भगवान की स्थिति रहती है। यहीं पर पापों का नाश करने वाला अग्नि तीर्थ है। इसमें कहा गया है कि विष्णु के समान कोई देवता नहीं और विशाला (वदरीनाथ) के समान कोई पुरी नहीं।

स्कन्द पुराण

पद्म पुराण भी काफी वड़ा पुराण है। इसमें ५५,००० श्लोक हैं। इसमें

1. यः स भूतं भविष्यच्च भवच्च भरतर्षभः
नारायणः प्रभुर्विष्णु शाश्वतः पुरुषोत्तम
तस्यातिशय सः पुण्यां विशालां वदरीमनु
आश्रमः ख्यायते पुण्य स्त्रिपु लोकेपु विश्रुतः (महाभारत वनपर्व ९०।२४-२५

सृष्टिखंड में नर-नारायण की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन है। उत्तर खंड के २-३ अध्यायों में बदरिकाश्रम का सविस्तार वर्णन है। बदरीनाथ में अलकनन्दा स्नान का महात्म्य व केदारनाथ का भी वर्णन है। सवा लाख पर्वतों के बीच श्री बदरीनाथ धाम की स्थिति बतलाई गई है।

श्री मद्भागवत पुराण

यह पुराण सभी पुराणों से श्रेष्ठ माना गया है। इसकी श्लोक संख्या १८००० बतलाई गई है। इसमें अनेक स्थानों पर बदरीनाथ का उल्लेख हुआ है। एकादश स्कंध के चतुर्थ अध्याय में जहाँ अवतारों का वर्णन किया गया है, वहाँ नर-नारायण के अवतार का ११ श्लोकों में मार्मिक वर्णन हुआ है। इसी स्कन्ध में भगवान कृष्ण ने बदरीनाथ का गुणगान करते हुए अपने स्वधाम गमन से पूर्व अपने प्रिय सखा उद्धव को बदरिकाश्रम जाने का आदेश दिया था—

"गच्छोद्धव मयादिष्टो बदर्याख्यं ममाश्रमं"

नारदीय पुराण

नारदीय पुराण पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो खंडों में विभाजित है। इसकी श्लोक संख्या २५००० है। उत्तरार्द्ध के ६७वें अध्याय में श्री बदरीनाथ जी का महात्म्य सविस्तार वर्णन किया गया है। इसी पुराण में लिखा है कि सत्य युग में भगवान नारायण यहाँ प्रत्यक्ष रूप से निवास करते थे। तप्त कुण्ड (वह्नि तीर्थ) का भी इसमें वर्णन है।

वाराह पुराण

इसकी श्लोक संख्या २४००० और अध्याय संख्या २१८ है। इसके ४८वें अध्याय में राजा विशाल की कथा है जिसने राज्य छिन जाने पर बदरिकाश्रम में घोर तप कर भगवान को प्रसन्न किया था। इसी के नाम से बदरिकाश्रम का नाम विशालापुरी पड़ा है।

वायु पुराण

यह पुराण भी पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभक्त है। श्लोक संख्या २४००० है। पूर्वार्द्ध में ४२वें अध्याय तक श्री बदरीनाथ के तीर्थ व

मंदिर का उल्लेख है। कैलास वर्णन व गंगा की उत्पत्ति का वर्णन व तीर्थों में श्राद्ध करने की महिमा का वर्णन भी इसमें है।

कूर्म पुराण

इसके श्लोकों की संख्या १७००० है। यह भी दो खंडों में विभाजित है। दोनों खण्डों में क्रमशः ५३ और ४६ अध्याय हैं। उत्तरार्द्ध में सनकादिकों के प्रश्न पर शिव जी ने बदरिकाश्रम क्षेत्र की महिमा का वर्णन किया है। इसी पुराण में शिव जी के कपाली होने की कथा है। बदरीनाथ में ब्रह्म कपाल पर श्राद्ध करने से अक्षयफल की प्राप्ति होनी बताई गई है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण

इस पुराण की श्लोक संख्या १८००० बताई गई है। इसमें ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड, गणेशखण्ड और श्रीकृष्णखंड नामक चार खंडहैं। इसके ब्रह्म-खंड के २९वें अध्याय से ३०वें अध्याय तक श्रीनारायण के सम्बन्ध की कला है। प्रकृति खंड में भगवान की श्रीदेवी, भूदेवी, गंगा और तुलसी इन चार पत्नियों की विस्तृत कथा है। शिवजी की आज्ञा से नारद जी बदरिकाश्रम जाते हैं और भगवान नारायण से प्रश्न करते हैं कि आप किसके ध्यान में मग्न है। तब नारायण बताते हैं कि मैं कृष्ण के ध्यान में रत हूँ तथा कृष्ण और मैं अभिन्न हूँ।

शिव पुराण

शिव पुराण की श्लोक संख्या २४००० बताई गई है। यह पुराण संहिताओं में विभाजित है। रुद्रसंहिता का सारा कार्यक्षेत्र हिमालय के बदरी-केदार क्षेत्र में ही है। कोटिरुद्रसंहिता के १९वें अध्याय में कथा है कि नर-नारायण नामक विष्णु के अवतार भारतखण्ड में बदरिकाश्रम में तपस्या करते थे। उन्होंने शिव जी को अपनी तपस्या से प्रसन्न कर वर मांगा कि वे उसी स्थान पर स्थित हो जावें जिससे नर-नारायण उनकी पूजा करते रहें। तब शिव जी वहीं स्थित हो गए। अभी भी तप्त कुण्ड के बाईं ओर भगवान आदि केदारेश्वर का मंदिर है।

वामन पुराण

श्रीमद्भागवत के अनुसार वामन पुराण में १०,००० श्लोक और ९५ अध्याय हैं। इस पुराण के आरम्भ में नर की उत्पत्ति का वर्णन है फिर नारायण का उपाख्यान है। इन्द्र द्वारा नारायण की तपस्या को भंग करने के लिए अप्सराओं के भेजे जाने का भी इसमें वर्णन है। द्वितीय अध्याय से आठवें अध्याय तक आवान्तर कथाओं के सहित नर-नारायण के महात्म्य तथा प्रभाव का वर्णन है।

देवीभागवत पुराण

इसमें श्लोक संख्या १८००० और १२ स्कन्ध हैं। इसमें नारायण और नारद का संवाद है। अतः स्थान-स्थान पर बदरिकाश्रम का उल्लेख होना स्वाभाविक है। चौथे स्कन्ध में नर-नारायण की कथा विस्तार से कही गई है। बदरी क्षेत्र में इन्द्र ने नारायण के तप को भंग करने के लिए क्या प्रयत्न किए, इसका पूर्ण विवरण इसमें है। इसमें उर्वशी की उत्पत्ति की भी कथा है।

ब्रह्मपुराण

इसकी श्लोक संख्या १०००० है और इसमें ३०२ अध्याय हैं। इसके २५वें अध्याय में सर्वतीर्थ महात्म वर्णन में बदरीवन और निकटवर्ती तीर्थों का बड़ा रोचक वर्णन किया गया है। कनखल से कैलास तक के अनेक तीर्थों का इसमें वर्णन है।

मत्स्यपुराण

मत्स्य पुराण की श्लोक संख्या १४००० बताई गई है। इसमें कैलास और श्री बदरिकाश्रम के निकट अलकापुरी का वर्णन है। अप्सराओं की क्रीड़ा और हिमालय की नदियों की शोभा का इसमें विचित्र वर्णन है।

केदारखण्ड

स्कन्द पुराण के अन्तर्गत केदारखंड नाम का एक ग्रंथ माना जाता है, जिसमें कनखल से लेकर बदरीनाथ तक के छोटे बड़े अनेक तीर्थों का बड़ा

रोचक वर्णन है। इस केदारखंड ग्रंथ से इस क्षेत्र के भूगोल का अच्छा ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बदरी-केदार पर तो इस ग्रंथ में बहुत सामग्री है।

श्री बदरीनाथ के सम्बन्ध में केदारखंड में यहाँ तक लिखा है कि जो मनुष्य मन से भी बदरीनाथ की मूर्ति तथा यात्रा का स्मरण करता है वह अनेक उग्र तपस्याओं का फल तथा समूची पृथ्वी के दान करने के समान फल प्राप्त करता है।[1]

तात्पर्य यह है कि जिस किसी भी पुराण या अन्य प्राचीन ग्रंथ में तीर्थों का वर्णन हुआ है, उसमें श्री बदरीनाथ धाम की चर्चा न्यूनाधिक मात्रा में अवश्य हुई होगी।

श्री बदरीनाथ के अर्चक

जैसा कि पूर्व पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि नारदीय पुराण के अनुसार ऋषि नारद बदरीनाथ के प्रधान अर्चक थे और बाद में ६ माह देवतागण और ६ माह मनुष्यगण इसकी पूजा करते थे। यह तो हुई पुराणों की बात, किन्तु जब से ज्योतिर्मठ अस्तित्व में आया तब से ज्योतिमठ के सन्यासी महन्तों के हाथ में ही श्री बदरीनाथ की पूजा व्यवस्था रही। ज्योर्तिमठ का अधिकारी ही मन्दिर बदरीनाथ का अधिकारी और पूजक भी होता था।

विद्वानों की मान्यता है कि बौद्धों के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त करने के लिए शंकराचार्य ने बहुत बड़ा अभियान चलाया था। इसी क्रम में उन्होंने भारतवर्ष की चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए। इस शृंखला का तीसरा मठ उत्तराखंड में स्थापित किया जो बदरी धाम के निकट ज्योर्तिमठ के नाम से ख्यात हुआ। शंकराचार्य जब बदरीनाथ आए तो बौद्धों ने श्री बदरीनाथ की मूर्ति को नारद कुण्ड में डाल दिया और स्वयं तिब्बत की ओर भाग गए। कहा जाता है कि शंकराचार्य ने योगबल

---

1. गमिष्यामि विशालां वे यो वे कथयते निशम्।
सोऽपितत्फलमाप्नोति बदरीनाथ दर्शनात्॥
(केदारखण्ड)

से मूर्ति का पता लगाया और तब उसको नादरकुण्ड से निकालकर फिर से मंदिर में प्राण प्रतिष्ठित किया। उन्होंने मंदिर भी बनवाया था टूटे हुए मन्दिरों को जीर्णोद्धार करवाया था तथा बदरीनाथ के पूजन अर्चन का ार दण्डी सन्यासी सम्प्रदाय में जिसका जन्म नम्बूरी अथवा चोली मुकाणी ाति के दक्षिणी ब्राह्मण के घर का हो, सिपुर्द किया। तभी से दण्डी न्यासियों के हाथ में श्री बदरीनाथ के मन्दिर का पूजन अर्चन और प्रबन्ध ज्योतिमठ के साथ-साथ चला आता रहा।[1]

अब यह ठीक-ठीक पता नहीं चलता कि शंकराचार्य के पश्चात् कौन-कौन से अर्चक मंदिर की पूजा में नियत रहे। क्योंकि यह प्रथा काफी पुरानी प्रतीत होती है कि ज्योतिमठ का सन्यासी महन्त ही श्री बदरीनाथ का भी अधिकारी और अर्चक रहा। यदि शंकराचार्य के समय को ८वीं सदी भी माना जाये तो भी इन पूजकों की सूची बहुत लम्बी होगी। केवल पन्द्रहवीं सदी से ज्योतिमठ के मठाधीशों या श्री बदरीनाथ के महन्तों की सूची प्राप्त होती है जो (रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास के अनुसार) इस प्रकार है :—

क्रम नाम	पूजाधिकार पाने का संवत्	मृत्यु का संवत्	पूजा काल
१. बालकृष्ण स्वामी	१५००	१५००	५७
२. हरिब्रह्म स्वामी	१५०७	१५५८	१
३. हरिस्मरण स्वामी	१५५८	१५६६	८
४. वृन्दावन स्वामी	१५६६	१५६८	२
५. अनन्त नारायण स्वामी	१५६८	१५६९	१
६. भवानन्द स्वामी	१५६९	१५८३	१४
७. कृष्णानन्द स्वामी	१५८३	१५९३	१०
८. हरिनारायण स्वामी	१५९३	१६०१	८
९. ब्रह्मानन्द स्वामी	१६०१	१६२१	२०
१०. देवानन्द स्वामी	१६२१	१६३६	१५

१. हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृष्ठ ५५।

११. रघुनाथ स्वामी	१६३६	१६६१
१२. पूर्णदेव स्वामी	१६६१	१६८७
१३. कृष्णदेव स्वामी	१६८७	१६९६
१४. शिवानन्द स्वामी	१६९६	१७०३
१५. बालकृष्ण स्वामी	१७०३	१७१७
१६. नारायण उपेन्द्र स्वामी	१७१७	१७५०
१७. हरिश्चन्द्र स्वामी	१७५०	१७६३
१८. सदानन्द स्वामी	१७६३	१७७३
१९. केशव स्वामी	१७७३	१८८१
२०. नारायण तीर्थ स्वामी	१७८१	१८२३
२१. रामकृष्ण स्वामी	१८२३	१८३३

इस प्रकार सन् १४९७ से १७७६ ई० अर्थात संवत् १५०० वि० १८३३ विक्रमी तक ज्योतिमठ और मन्दिर बदरीनाथ शंकर सम्प्रदाय दण्डी सन्यासियों के अधिकार में रहा किन्तु १८३३ वि० में रामकृष्ण स्वा के देहावसान के उपरान्त यह अधिकार दण्डी सन्यासियों के हाथ से निक कर रावलों के हाथ में आ गया।

बदरीनाथ में रावल परम्परा

रावल शब्द राजा का पर्यायवाची है। राजपूताने में अधीनस्थ राज को राव या रावल कहा जाता था। सन् १७७६ ई० के अन्तिम मह रामकृष्ण स्वामी के देहांत के बाद उनका कोई उत्तराधिकारी न रहा प्रथा यह थी कि अर्चक केरल प्रांत का ही होना चाहिए। उस समय वह ऐसा कोई नम्बूदरी ब्राह्मण नहीं था। केवल एक गोपाल नाम का रसोइय था और भगवान का भोग पकाता था। दैव योग से उस समय गढ़वाल नरेश प्रदीप शाह वहाँ यात्रार्थ विद्यमान थे। महाराजा ने आचार्य के स्थान पर शंकराचार्य की गद्दी स्थापित की और उस नम्बूदरी ब्राह्मण को राम- कृष्ण स्वामी के स्थान पर रावल की पदवी से विभूषित कर अर्चक नियुक्त कर दिया। तब से बदरीनाथ के अर्चकों की पदवी महन्त से रावलों में बदल

गई। इस प्रकार सर्वप्रथम रावल संवत् १८३३ में गोपाल रावल हुए रावलों की यह परम्परा आज तक चली आ रही है, आज तक जो राव‍ हुए उनकी सूची इस प्रकार है :—

क्र०	नाम रावल	पूजाधिकार पाने का संवत्	मृत्यु का संवत्	पूजाका (वर्ष)
१.	गोपाल रावल	१८३३	१८४२	
२.	रामचन्द्र रामब्रह्म रघुनाथ रावल	१८४२	१८४३	
३.	नीलदत्त रावल	१८४३	१८४८	
४.	सीताराम रावल	१८४८	१८५६	१
५.	नारायण रावल (प्रथम)	१८५६	१८७३	१
६.	नारायण रावल (द्वितीय)	१८७३	१८६८	२
७	कृष्ण रावल	१८६८	१६०२	
८.	नारायण रावल (तीसरा)	१६०२	२६१६	१
९.	पुरुषोत्तम रावल	१६१६	१६५७	४
१०.	वासुदेव रावल	१६५७	१६५८ हटाये गये	
११.	रामा रावल	१६५८	१६६२	
१२.	वासुदेव रावल (दूसरी वार)	१६६२	१६६६	
१३.	गोविन्दन रावल	१६६६	२००३	
१४.	पी० कृष्णन्	२००३	२००६	
१५.	माधव केशवन	सन् १६५३	सन् १६५४	
१६.	विष्णु केशवन	सन् १६५४	सन् १६७२	
१७.	सी० गणपति	सन् १६७३	(वर्तमान)	(वर्तमा

रावल को विवाह करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि विवाह करने सन्तान पैदा करने में सूतक-पातक हो जाने से रावल मन्दिर में नहीं सकेगा और रावल के अलावा कोई दूसरा व्यक्ति मूर्ति को नहीं छू सक है और पूजा भी कभी बन्द नहीं हो सकती। इसीलिए यह विधान बन गया है कि रावल को ब्रह्मचारी रहना पड़ेगा। अतः कहना चाहिए

रावल की स्थिति वह होती है जो एक नैष्ठिक ब्रह्मचारी या यति व
होती है।[1]

रावल के लिए यह आवश्यक है कि वह वेद पढ़ा हुआ हो क्योंकि मूर्ति
का पूजन अर्चन सब वैदिक विधान से होता है।

रावलों की स्वेच्छाचारिता और जनाक्रोश

कुछ रावलों ने अपने साथ नियत दासियों से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित किए हैं इससे उनकी भारी आलोचनाएं हुई हैं। इस सम्बन्ध में बदरीनाथ मन्दिर के भूतपूर्व प्रबन्धक श्री शालिग्राम वैष्णव अपनी पुस्तक, उत्तराखण्ड रहस्य—में इस प्रकार लिखते हैं—"हिन्दू जाति के सर्वश्रेष्ठ इस पवित्र धाम के इस पवित्र मंदिर के पुजारी का पद आजकल ऐसी निकृष्ट अवस्था को पहुँच गया है कि हिन्दू मात्र को उससे लज्जित होना पड़ता है। जिस मन्दिर के पुजारी निस्पृह, विरक्त साधु ब्रह्मचारी ही हुआ करते थे, उस पद पर इन्द्रिय लोलुप, हीन वर्ण स्त्रियों से संसर्ग रखने वाले विषयी पुरुष पुजारी बनकर भगवान श्री बदरीनाथ की मूर्ति को स्पर्श करते दृष्टिगोचर होते हैं। पहले कोई रावल बदरीनाथ में स्त्री को अपने साथ नहीं रख सकता था। अब के रावल निःशंक होकर बदरीनाथ में पूजा करते हुए भी स्त्री को साथ रखते हैं।"[2]

रावलों द्वारा उप-पत्नियाँ रखे जाने के सम्बन्ध में सन् १८८२ में एटकिनसन ने भी अपनी पुस्तक—हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स—में यह विवरण पेश किया कि मंदिर बदरीनाथ में अनेक परिचारिकाएँ होती हैं जो ब्रह्मचारी रावलों की उप-पत्नियाँ होती हैं।[3]

इस सम्बन्ध में पंडित हरिकृष्ण रतूड़ी ने भी सन् १९२८ में प्रकाशित अपनी पुस्तक—गढ़वाल का इतिहास—में इस प्रकार लिखा है—"बदरीनाथ के पूजक अर्चक पूर्वकाल में दण्डी सन्यासी होते थे, उसके पश्चात् जब पूजा रावलों में आई तब से रावल भी ब्रह्मचारी रहे।

1. हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृष्ठ ५०
2. शालिग्राम वैष्णव—उत्तराखंड रहस्य पृष्ठ १५०-१५१
3. एटकिनसन—हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स

नारायण रावल के समय टिहरी दरबार से किसी रानी ने एक दासी शूद्र जाति की उनकी सेवा के लिए दी थी। इसी प्रकार उनके उत्तराधिकारी रावल पुरुषोत्तम को महाराजा सुदर्शन शाह की महारानी ने एक दासी उनकी सेवा के लिए दी थी। तब से रावल लोग असवर्ण विवाह करने लगे थे। परन्तु इसके पीछे रामानम्बूरी रावल हुए थे। उन्होंने सवर्ण असवर्ण किसी प्रकार का विवाह नहीं किया।"[1]

इस प्रकार रावलों द्वारा उप-पत्नियाँ रखे जाने पर उनकी सन्तानें भी होने लगीं और वे स्वेच्छाचारी होने लगे। वे मन्दिर की आय का स्वेच्छापूर्वक दुरुपयोग करने लगे। अतः बीसवीं सदी में रावलों की इस स्वेच्छाचारिता का विरोध किया जाने लगा।

रावलों की इस दुर्व्यवस्था को देखते हुए जिलाधीश गढ़वाल ने रावल के विरुद्ध कुमायूँ के न्यायालय में दीवानी दावा कर दिया, किन्तु १८९८ ई० में जो फैसला अदालत ने दिया उसके अनुसार रावल स्वतन्त्र अधिकारी मान लिया गया था और आय-व्यय का अधिकार भी रावल को ही दे दिया गया। टिहरी महाराज को अब केवल नायब रावल की नियुक्ति और कपाट खोलने के लिए मुहूर्त निकलवाने का अधिकार रह गया। अब रावल पूर्ण स्वेच्छाचारी बन गए।

रावलों की इस स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध कई बार आन्दोलन शुरू हुए किन्तु कुछ न हो सका। राजकर्मचारियों के मुख को बन्द करने की तरकीब रावल जानते थे।

अन्त में दक्षिण के श्री स्वामी वेंकटाचार्य (भूतपूर्व डिप्टीकलक्टर) ने इस स्वेच्छाचार के विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन छेड़ा। उन्होंने यह आन्दोलन सन् १९२८ ई० में आरम्भ किया था और निरन्तर कई वर्षों तक आन्दोलन करते हुए उन्होंने जन-भावना को मन्दिर के प्रबन्ध के लिए इतना उत्कृष्ट बना दिया कि सन् १९३९ ई० उत्तरप्रदेश सरकार को बदरीनाथ मन्दिर विधेयक पास करना पड़ा।[2]

---

1. हरिकृष्ण रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास—पृष्ठ ५०-५१
2. डा० दबराल—उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन पृष्ठ ४२७

इस विधेयक के पारित हो जाने पर श्री बदरीनाथ मंदिर की व्यव
के लिए एक समिति गठित की गई जिसको मन्दिर की व्यवस्था का
सौंपा गया। अब तक यही व्यवस्था कायम है। इस विधेयक और इ
अन्तर्गत गठित मन्दिर समिति का विस्तृत विवरण आगे के पृष्ठों में दि
जाएगा।

श्री बदरीनाथ के पंडे

श्री बदरीनाथ में भी अन्य तीर्थों की भाँति पंडिताई या पुरोहिती
कार्य होता है। हिन्दू धर्म और संस्कारों में आस्था रखने वाले यात्री ती
कर्म अवश्य करते हैं। जो पंडों द्वारा ही सम्पन्न कराया जाता है।

श्री बदरीनाथ धाम में मुख्य मंदिर के अतिरिक्त छोटे-बड़े कई ती
हैं, जैसे—पंचशिला, पंचधारा, कुण्ड व संगम आदि। श्री बदरीनाथ में
प्रकार के पंडे हैं। देव प्रयागी पण्डे और डिमरी पंडे।

देवप्रयागी पंडे

बदरीनाथ के देव प्रयागी पंडे अलकनन्दा और भगीरथी के संग
देव प्रयाग में रहते हैं। ये पर्वतीय क्षेत्र को छोड़कर भारत के मैदानी भाग
से आने वाले यात्रियों के पंडे हैं। ये देव प्रयागी पंडे जाड़ों में मैदानों मे
जाकर अपने-अपने यजमानों को बदरीनाथ की यात्रा के लिए प्रेरित करते
हैं। यात्रा प्रारम्भ होने पर हरिद्वार जाकर अपने यजमानों की अगवानी
करते हैं। हरिद्वार से बदरीनाथ तक उनको यात्रा की पूरी सुव्यवस्था
करते हैं। बदरीनाथ में भी इनके मकान है। वहाँ ये अपने यजमानों की
रहने की भी व्यवस्था करते हैं। बदरीनाथ में इन पंडों का हक केवल
तप्त कुण्ड पर है। तप्त कुण्ड की दक्षिणा केवल देव प्रयागी पंडे ही ले
सकते हैं। ये यहाँ पर अपने यजमानों से स्नान कराते हैं और उनको
सुफल देते हैं। यहीं पर उनसे संकल्प कराकर अपनी दक्षिणा लेते हैं। यह
दक्षिणा निश्चित नहीं है। यात्री की इच्छा पर निर्भर है। कौन पंडा
कितनी दक्षिणा ले सकता है यह उसकी कुशलता पर निर्भर करता है।
इतना अवश्य है कि मैदानी तीर्थों की भाँति यहाँ पंडों द्वारा लूट नहीं
होती। यात्रा काल में पंडों के द्वारा यात्रियों की व्यवस्था आदि में पंडे जो

परिश्रम करते हैं, उसका पुरस्कार उन्हें अलग से मिलता है। ये देवप्रयागी पंडे अच्छे मार्ग दर्शक (गाइड) भी हैं।

बदरीनाथ के डिमरी पंडे

हिमालय के विभिन्न भागों—कश्मीर, हिमालय प्रदेश, गढ़वाल, कुमायूँ और नेपाल से आने वाले यात्रियों के पण्डे डिमरी होते हैं। ये गढ़-वाल में डिम्मर गांव के मूल निवासी हैं। अब कई जगहों पर बस गए हैं। उच्च कोटि के सरोला ब्राह्मण हैं। ये बदरीनाथ में अपने यजमानों से विभिन्न तीर्थ कर्म कराते हैं और उनसे दक्षिणा लेते हैं। गरुड़ की मूर्ति और धर्मशिला पर जो चढ़ावा पड़ता है उसके हकदार भी ये डिमरी पंडे हैं। ये अपने यजमान से बदरीनाथ में एक थाली, एक धोती और एक श्रीफल आदि आरम्भ में ले लेते हैं। इनके यजमान पर्वतीय क्षेत्रों के हैं इस कारण इनकी आय देव प्रयागी पंडों के बराबर नहीं है। डिमरी जाति के पंडों को बदरीनाथ में लक्ष्मी मन्दिर की वृत्ति भी मिलती है। इसके अलावा कूर्मधारा, प्रह्लाद धारा, गौरी कुण्ड, सूर्यकुण्ड, नारदकुण्ड शिव-धारा तथा पंचशिलाओं पर चढ़ने वाली भेंट के हकदार भी डिमरी पण्डे ही हैं।[1]

ब्रह्मकपाल के पंडे

बदरीनाथ में ब्रह्मकपाल पर जो चढ़ावा चढ़ता है उसे लेने का हक ब्रह्म कपालियों को है। ब्रह्म कपाल के पंडे कोठियाल, सती, नौटियाल व हटवाल जाति के ब्राह्मण हैं, जो बारी बारी से यहाँ पुरोहित कर्म करवाते हैं।

इन उक्त पंडा जातियों का बदरीनाथ के मुख्य मन्दिर से कोई सम्बन्ध नहीं है। न इनका मन्दिर के प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध है। उन्हें यात्रियों के साथ मन्दिर में जाने और वहां किसी प्रकार से यात्रियों की पूजा में सहा-यता देने का कोई अधिकार नहीं है।[2] मुख्य मन्दिर में रावल और उसके सहायक ही पूजा कार्य कराते हैं।

1. डबराल-उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन पृष्ठ ४५३
2. पन्नालाल-कस्टमरी लॉ इन कुमायूं-५८

श्री बदरीनाथ का पूजा विधान

श्री वदरीनाथ में क्या क्या तीर्थ कार्य करना आवश्यक है और व॰ का दैनिक कार्यक्रम क्या है, यह जानकारी भी आवश्यक है। जो निम् प्रकार है—

भगवान वदरीश के कपाट नित्य प्रायः ७ बजे दर्शनार्थ खुल जाते हैं ८ वजे तक भगवान के निर्वाण दर्शन होते हैं। इसके पश्चात् भगवान क॰ स्नान शृंगार आदि नित्य नियम पूजा होती है। वाल भोग लग जाने पर लग भग ११ वजे राजभोग लगता है। उसके बाद आरती होती है और कपा॰ वन्द हो जाते हैं। भगवान का भोग लगने के बाद ही रावल, बड़वा व॰ उदासी लोग भोजन करते हैं। जिन यात्रियों ने पहले दिन अटका भोग लिखवाया हो उन्हें भोग लगने पर प्रसाद मिलता है। सायंकाल ४ वजे पुनः कपाट खुलते हैं। कथा भवन में कथा, प्रवचन कीर्तन होता रहता है। भगवान की नित्य नियम पूजा व आरती के बाद भगवान का शृंगार उतारा जाता है। लगभग ९ वजे रात्रि में कपाट वन्द हो जाते हैं।

पंचतीर्थ स्नान, पंचशिला नमस्कार व आदि केदारेश्वर के दर्शन करके अपनी भेंट सामग्री के साथ यात्रीगण सिंहद्वार से मन्दिर प्रांगण में प्रवेश करते हैं और फिर मन्दिर के मुख्य द्वार से अन्दर भगवान वदरीश के दर्शनों के लिए सभा मंडप होते हुए गर्भ गृह की ओर वढ़ते हैं जहाँ मंदिर का प्रधान अर्चक रावल रहता है। वहीं भेंट आदि चढ़ाई जाती हैं। रावल के अतिरिक्त गर्भ गृह में भगवान की मूर्ति को कोई नहीं छूता। दर्शन दूर से ही होते हैं। यात्री दर्शन कर वाईं ओर के दरवाजे से वाहर निकल जाते हैं। उसके बाद लक्ष्मी तथा अन्य देवताओं के दर्शन करते हुए परिक्रमा होती है। तत्पश्चात आदि शंकराचार्य की गद्दी के निकट कार्यालय में अटका भोग लिखाया जाता है! जिसकी रसीद मिलती है। भोग लिखाने के दूसरे दिन भोग लगने के वाद भोगमंडी से रसीद दिखाकर महाप्रसाद मिलता है। उसी महाप्रसाद, निर्माल्य, तुलसी, चरणामृत से ब्रह्म कपाल में श्राद्ध पिण्ड, तर्पण आदि तीर्थ कार्य किया जाता हैं।

श्री बदरीनाथ की विभिन्न पूजायें

आमतौर पर यात्रीगण मुख्य मन्दिर में जब दर्शन करने जाते हैं तो अपनी श्रद्धा से थाली पर भेंट चढ़ाते हैं। इसे थाली भेंट के नाम से भी पुकारा जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य पूजाओं के लिए नियम बने हैं। प्रत्येक पूजा की धनराशि भी मन्दिर समिति की ओर से निश्चित की गई है। यह आवश्यक नहीं कि हर यात्री सभी पूजाओं को सम्पन्न करे। प्रचलित नियमों के अनुसार विभिन्न पूजाओं का सार संक्षेप निम्नवत है—

१. प्रातः कालीन महा अभिषेक पूजा — ५०१ रु०
२. प्रातः कालीन अभिषेक पूजा — १७५ रु०
३. प्रातः कालीन गीता पाठ — ६१ रु०
४. सायं कालीन श्री विष्णु सहस्र नामावली — ३१ रु०
५. सायंकालीन श्री विष्णु सहस्र नाम पाठ — २१ रु०
६. सायंकालीन अष्टोत्तरी — ११ रु०
७. सायंकालीन गीत गोविन्द पाठ — २५ रु०
८. सायंकालीन सुवर्ण आरती — ३५ रु०
९. सायंकालीन चाँदी की आरती (बड़ी) — २१ रु०
१०. सायंकालीन चाँदी की आरती (छोटी) — ११ रु०
११. सायंकालीन कर्पूर आरती — ५ रु० से अधिक
१२. अटका भोग (साधारण) — २५ रु० से अधिक
१३. अटका भोग (विशेष) — ५१ रु० से अधिक
१४. पिण्ड प्रसाद — २ रु०
१५. भोग — ७ रु०
१६. गद्दीभेंट — २ रु०
१७. जीर्णोद्धार — २ रु०
१८. नित्य नियम भोग
(श्री बदरीनाथ जी का एक दिन का) — २०१ रु०
१९. नित्य नियम भोग
(अधीनस्थ मंदिरों सहित) — ३५१ रु०

२०. बाल भोग — ३१ रु०
२१. घृत कमल को घी — ५१ रु०
२२. अखण्ड ज्योति के लिए घी (एक दिन का) — ५१ रु०
२३. श्री मद्भागवत का पाठ — ५०१ रु०
२४. श्री मद्भागवत का तीन हफ्ते का पाठ —१००१ रु०
२५. श्री आदि केदारेश्वर मंदिर में श्रावण मास पर्यन्त रुद्राभिषेक —१००१ रु०
२६. शरद नवरात्री में उर्वशी पूजा — ७५१ रु०
२७. श्री जन्माष्टमी उत्सव पूजन — ५०१ रु०
२८. श्री माता मूर्ति का उत्सव पूजन — २५१ रु०
२९. श्री दीप मालिका उत्सव पूजन — २५१ रु०
३०. वेद पाठ — १५ रु०
३१. एकान्त सेवा — १५ रु०

श्री बदरीनाथ की स्थाई पूजायें

श्री बदरी नाथ में भगवान की निम्न स्थायी पूजाओं के लिए निम्न प्रकार धन राशि निश्चित की गई है। इच्छुक भक्तगण एक ही समय कार्यालय में द्रव्य जमा कर अपनी ओर से की जाने वाली पूजा के लिए कोई निश्चित दिन बतला देते हैं। उनकी ओर से प्रतिवर्ष निश्चित तिथि पर इच्छित पूजा होती रहती है।

१. श्री भगवान का महाभोग — ५००० रु०
२. श्री भगवान का बाल भोग (खीर) — ५०० रु०
३. श्री भगवान का अभिषेक पूजा — ३००० रु०
४. नामावली — ६०० रु०
५. सहस्रनाम अर्चना — ३०० रु०
६. अष्टोतरी — २०० रु०
७. सुवर्ण आरती — ५०० रु०
८. कर्पूर अथवा मंगल आरती — १०० रु०

ऊपर लिखी सभी प्रकार की स्थायी व अस्थायी पूजाओं में यात्री

चाहे जिस पूजा को करवा सकता है। इसके लिए निश्चित धनराशि कार्यालय में जमाकर रसीद दी जाती है। इन पूजाओं में अटका भोग और अभिषेक मुख्य है। अटका भोग का पैसा खाते में जमा होता है और उसके ब्याज से भगवान का भोग लगता है। साल में एक बार भोग प्रसाद दान-दाता को डाक से भेजा जाता है। यह निरन्तर भेजा जाता रहेगा। इसी लिए इसे शाश्वत भोग भी कहते हैं।

अभिषेक पूजा में दानी की ओर से उस दिन विशेष पूजा की जाती है। उन्हें पूजा व दर्शन की विशेष सुविधा दी जाती है।

यात्री को किसी भी पूजा के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। यात्री की अपनी इच्छानुसार पूजायें सम्पन्न होती हैं। यात्रियों को चाहिए कि वे यथा शक्ति तीर्थ कृत्य करें।

श्री बदरीनाथ मन्दिर की वर्तमान व्यवस्था

व्यवस्था टिहरी दरबार द्वारा ही होती रही परन्तु टिहरी दरबार अंग्रेजी सरकार की सहायता के बिना कुछ नहींकर सकता था। ऐसी दशा में मंदिर श्री बदरीनाथ की व्यवस्था अस्तव्यस्त हो गई। नारायण रावल द्वितीय के कार्यकाल से रावलों की मनमानी बढ़ने लगी। सम्वत् १६५५ वि० में पुरुषोत्तम रावल के कार्यकाल में ब्रिटिश सरकार ने जन आक्रोश को देखकर रावल के विरुद्ध एक दीवानी दावा किया था। किन्तु अदालत ने फैसला रावल के ही हक में दे दिया।

अब तो रावलों का स्वेच्छाचार और विलासिता और भी बढ़ गई। मन्दिर की व्यवस्था दिन-प्रतिदिन बिगड़ती गई। यद्यपि टिहरी नरेश के पास अब नायब रावल की नियुक्ति के अतिरिक्त कोई अधिकार नहीं था। तथापि उस समय राजा के नाबालिग होने के कारण दरबार से भी कोई विकल्प नहीं दिया जा सका। उस समय टिहरी राज्य की सम्पूर्ण व्यवस्था भी ब्रिटिश सरकार की सहमति से एक कौंसिल करती थी। मन्दिर की बिगड़ती दशा को देखकर कुमायूँ के कमिश्नर ने तहसीलदार श्री शालिग्राम वैष्णव को मन्दिर बदरीनाथ का मैनेजर नियुक्त कर दिया। इस व्यवस्था से रावल की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने लगी। इस कारण रावल ने असहयोग पैदा कर दिया। फलतः यह व्यवस्था भी अधिक दिन चल न सकी। इसके बाद टिहरी दरबार ने अपना एक डिप्टी कलक्टर (श्री भैरवदत्त) मंदिर की व्यवस्था के लिए नियुक्त किया। यह व्यवस्था भी अधिक दिन तक न चल सकी। अन्त में मजबूर होकर उत्तर प्रदेश सरकार को सन् १६३६ ई० में पूर्व पृष्ठों में वर्णित विधेयक पारित करना पड़ा।

श्री बदरी मन्दिर विधेयक और मन्दिर समिति का निर्माण

सन् १६३६ ई० में उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा "श्री बदरीनाथ मन्दिर विधेयक" पारित किए जाने पर फरवरी सन् १६४१ ई० में सर्वप्रथम अधिनियम की पाँचवीं धारा के अनुसार "श्री बदरीनाथ मन्दिर कमेटी" का निर्माण हुआ। यद्यपि इस कमेटी का नाम श्री बदरीनाथ मन्दिर कमेटी रखा गया किन्तु इसके अधीन बदरीनाथ और केदारनाथ

तथा अन्य अधीनस्थ सभी मन्दिर रखे गए। अब मन्दिर की सम्पूर्ण व्यवस्था यही समिति करने लगी। रावल अब मात्र एक वेतनभोगी कर्मचारी रह गया है। अधिनियम में यह व्यवस्था थी कि मन्दिर समिति एक निर्वाचित समिति होगी जिसका चुनाव प्रति तीन वर्ष बाद होगा। प्रारम्भ मे इसके केवल १२ सदस्य रखे गए जिनका चुनाव निम्न प्रकार से होत था—

४ सदस्य टिहरी राज्य से निर्वाचित।

२ सदस्य जिला बोर्ड गढ़वाल के हिन्दू सदस्यों द्वारा निर्वाचित।

१ सदस्य उत्तर प्रदेश विधान परिषद द्वारा निर्वाचित।

२ सदस्य उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा निर्वाचित।

३ सदस्य अध्यक्ष सहित उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा मनोनीत

अधिनियम की धारा १४ के अनुसार समिति रावल और नाय रावल का चुनाव भी करेगी। साथ ही मन्दिर के प्रशासन को चलाने लिए एक सचिव भी नियुक्त करेगी जो मन्दिर का सर्वोपरि अधिका होगा।

मार्च १९६४ में मन्दिर समिति के संविधान में कुछ संशोधन कि गया। नए संविधान के अनुसार समिति के मंत्रीपद को समाप्त किया ग है। अब इस पद पर मुख्य कार्याधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो आ ए० एस० या पी० सी० एस० पद का होता है।

संविधान में कुछ और परिवर्तन कर अब मन्दिर समिति के सद की संख्या १५ हो गई है। जिनका चुनाव निम्न प्रकार होना तय है—

४ सदस्य टिहरी, उत्तरकाशी, चमोली व पौड़ी की जिला परि द्वारा निर्वाचित।

६ सदस्य अध्यक्ष सहित सरकार द्वारा नामित।

२ सदस्य टिहरी महाराज द्वारा मनोनीत।

२ सदस्य उत्तर प्रदेश विधान सभा द्वारा निर्वाचित।

१ सदस्य उ० प्र० विधान परिषद द्वारा निर्वाचित।

सन् १९८० में जो मन्दिर समिति बनी उसमें टिहरी महाराजा के द्वारा निर्वाचित होने वाले सदस्यों के स्थान रिक्त थे क्योंकि सरकार द्वारा टिहरी महाराज को कोई मान्यता नहीं मिली।

१-४-८० को जो नई समिति बनी थी वह १५ दिन बाद भंग हो गई। उसके बाद नई राजाज्ञा के अनुसार एक नई समिति बनी जिसके उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री सी० पी० एन० सिंह स्वयं अध्यक्ष बने और ८ अन्य सदस्य लिए गए। ५ सरकार द्वारा नामित, एक एम० एल० सी० और एक एक उत्तर काशी व चमोली जनपदों से। (मार्च १९८१ तक यही व्यवस्था थी।)

सत्ता परिवर्तन और राजनैतिक पैंतरेबाजी से इन दिनों श्री बदरीनाथ मन्दिर समिति प्रभावित रही।

इस प्रकार हमने देखा कि १९३९ ई० में जो अधिनियम बना उसके अनुसार गठित समिति की व्यवस्था में मन्दिर बदरीनाथ के प्रवन्ध में काफी सुधार हुआ। यद्यपि कुछ धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोगों ने सरकारी हस्तक्षेप को अनुचित भी कहा।

मन्दिर का आय-व्यय

मन्दिर बदरीनाथ की आय का मुख्य साधन तो चढ़ावा ही है जो यात्रा काल में यात्रियों द्वारा चढ़ाया जाता है। यह प्रतिवर्ष लाखों रुपयों में होता है। इसके अतिरिक्त कुछ आय गूँठभूमि की मालगुजारी से होती है। प्राचीन राजाओं ने कुछ गाँवों की भूमि मन्दिर को भेंट की थी। जिससे मन्दिर के धार्मिक कार्यों में उस भूमि की लगान का पैसा खर्च किया जा सके। ऐसी ही भूमि को गूँठ भूमि कहते हैं। यह प्रथा अब तक बरकरार है। गूँठ गाँव गढ़वाल और कुमायूँ जिलों के अन्तर्गत हैं। गढ़वाल व चमोली जिलों के १६४ गाँव पूरे तथा १११ गाँवों की कुछ भूमि और जिला अल्मोड़ा व पिथौरागढ़ में ४५ गाँव पूरे तथा २६ गाँवों की कुछ भूमि बदरीनाथ मन्दिर पर चढ़ी हुई है। (श्री महिधर शर्मा-तपोभूमि उत्तराखंड)

इसके लालावा इलाहाबाद जिले में फूलपुर तथा कुमायूँ में बासुलीसेरा दो प्रमुख जायदाद हैं। (गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ—गढ़वाल विश्वविद्या प्रकाशन) जिनकी आय मन्दिर को भेंट की जाती है।

कर्मचारियों का वेतन, पूजा का दैनिक खर्च, सफाई हकदारों के द रान आदि अनेक मदों में मन्दिर समिति व्यय करती है।

आय-व्यय की जाँच

ऐक्ट की धारा १९ के अधीन श्री बदरीनाथ केदारनाथ मंदिर आय-व्यय की जाँच हर साल लोकलफण्ड एकाउण्टस के ऑडिट वि द्वारा होती है। जिसकी फीस देनी पड़ती है।

बदरीनाथ के मुख्य कार्याधिकारियों की सूची

१—श्री प्रताप सिंह चौहान १९४०-४१

२—श्री रामदत्त पाण्डेय (सचिव) १९४१-४६

३—श्री पुरुषोत्तम बगवाड़ी (सचिव) १९६४-६६

४—श्री गणेशदत्त पुनेठा (अन्तरिम मु० का०) १९७४-६५

५—श्री यमुना प्रसाद त्रिपाठी (आई० पी० एस०) १९६८-६८

६—श्री कृष्ण कुमार गोविला (पी० सी० एस०) १९६८-७०

७—श्री धीरेन्द्र बहुगुणा (पी० सी० एस०) १९७०-७२

८—श्री पूरनसिंह मेहता १९७३-७७

९—श्री गणेश प्रसाद झिल्डियाल (पी० सी० एस०) १९७७-८१

१०—श्री पूरनसिंह मेहता १९८१ (वर्तमान)

श्री बदरीनाथ और टिहरी दरबार

टिहरी रियासत के राजाओं का वंश परम्परा से श्री बदरीना
घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। यह राजवंश श्री बदरीनाथ को अपना इ
और अपनी गद्दी को श्री बदरीनाथ की गद्दी मानता आया है। सन् १८
ई० से पूर्व समस्त गढ़वाल इन्हीं के राज्य के अन्तर्गत था। बदरीनाथ
इसी राज्य के अन्दर पड़ता था। सन् १८३३ ई० में रावल परम्परा आ
हुई। सर्वप्रथम रावल की नियुक्ति इसी वंश परम्परा के राजा प्रदीप श
ने की थी। सन् १८१५ ई० में बदरीनाथ अंग्रेजी राज्य की सीमा में
गया किन्तु उनके प्रावन्धिक सम्बन्ध मन्दिर बदरीनाथ के साथ बने र
जिनकी रक्षा ब्रिटिश राज्य ने भी की।

श्री बदरीनाथ मन्दिर समिति बनने तक मन्दिर की देखरेख में टिह
दरबार का विशेष हाथ रहा। सन् १८९९ ई० तक तो रावलों की नियुि
टिहरी दरबार से ही होती थी। १८९९ ई० में एक फैसले के अनुसा
रावल को स्वतन्त्र कर दिया गया। अब केवल नायब रावल की नियुक्ति
का अधिकार ही इनके हाथ में रह गया था। फिर भी राज्य परिवार अपने
किसी भी शुभ काम में रावल का आशीर्वाद और भगवान बदरीनाथ का
प्रसाद सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

१९३९ में मन्दिर समिति का निर्माण होने पर भी टिहरी महाराज
को मंदिर का संरक्षक माना गया और उन्हें अपनी ओर से ३ सदस्य नाम-
जद करने का अधिकार दिया गया। श्री बदरी नाथ के कपाट खुलने का
मुहुर्त भी वसन्त पंचमी को टिहरी दरबार में ही निकाला जाता रहा है।
प्राचीन प्रथा के अनुसार इस अवसर पर श्री बदरीनाथ से भितला, बड़्वा,
लक्ष्मी बड़्वा, प्रसादी बड़्वा व बटवाल श्री भगवान बदरीनाथ का प्रसाद
व गाडबघड़ि (चाँदी का घड़ा) लेकर राजदरबार में पहुँचते थे। इस अव-
सर पर वहाँ बड़ा उत्सव मनाया जाता था। महाराजा और महारानी
बड़ी श्रद्धा से तिल का शुद्ध तेल गाडबघड़ि पर मंगल गान के साथ भरते
थे और मन्दिर के उक्त कर्मचारियों के हाथ उसे बदरीनाथ भेजते थे।
यही तेल भगवान को पूजाकाल में नित्य लगाया जाता था। भगवान

बदरीनाथ के कपाट खोलने के लिए राजपुरोहित टिहरी से मुहुर्तपट्टा लेकर वैशाख मास में बदरीनाथ के कपाट खोलने जाता था। कपाट खुलने पर भगवान बदरी नाथ का प्रसाद राज पुरोहित के हाथ महाराजा टिहरी को भेजा जाता था। महाराजा के जन्मोत्सव और विजयादशमी के अवसर पर भी श्री बदरीनाथ का प्रसाद टिहरी दरबार में भेजा जाता था।

टिहरी रियासत का उत्तर प्रदेश में विलीनीकरण होने पर भी राजवंश का श्री बदरीनाथ से सम्बन्ध बना रहा। अब कुछ प्रथायें तो धीरे-धीरे लोप हो रही हैं। किन्तु मुहुर्त निकालने की रस्म अभी भी टिहरी के भूतपूर्व महाराजा के राज पुरोहित नरेन्द्र नगर में पूरी करते हैं। यह प्रथा आगे कब तक कायम रहेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। अब तो हर कार्य राज-नीति प्रेरित होता है। सन् १९८० ई० में मन्दिर बदरीनाथ की जो समिति बनी उसमें टिहरी के भूतपूर्व महाराजा के प्रतिनिधि नहीं लिए गए क्योंकि अब सरकार उन्हें मान्यता नहीं देती। अब वे साधारण नागरिक रह गए हैं।

श्री बदरीनाथ मन्दिर

से अवश्य कलात्मक रहा होगा, क्योंकि बदरीनाथ के वर्तमान मंदि
अलावा उत्तराखण्ड में केदारनाथ आदि कई अन्य भव्य एवं कलात
मंदिर विद्यमान हैं जो कि उक्त मंदिर से बहुत प्राचीन हैं, और उत्तरा
वासियों की कलाप्रियता तथा धार्मिकता के साक्षी हैं।

श्री बदरीनाथ का वर्तमान मंदिर बहुत प्राचीन मालूम नहीं होत
मंदिर तराशे हुए पत्थरों का शंकु की तरह का ५० फीट ऊँचा है। म
पंडित राहुल ने इसे मुगल शैली का बताया है। यह मंदिर त्रिरथ है अं
इसमें उरु शृंग नहीं है। मन्दिर के तीन भाग हैं। सिंहद्वार, सभा मंडप अं
गर्भगृह। गर्भगृह बाहर से १७'.५" लंबा तथा १५' चौड़ा है तथा अंदर
१३' लंबा ८' १०" चौड़ा है।[1] मंदिर की दीवारें काफी मोटी है।

मंदिर का मुख्याआकर्षण सिंह द्वार है, जो कलात्मक है। इस सिंह द्वा
के प्रधान शिल्पी श्रीनगर के लछमू मिस्त्री थे। पुस्तकों व अन्य प्रचा
साहित्य में बदरीनाथ मंदिर की पहचान इसी सिंहद्वार से की जाती है।

जैसा पूर्व पृष्ठों में लिखा जा चुका है कि श्री बदरीनाथ का वर्तमान
मंदिर रामानुज सम्प्रदाय के स्वामी वरदराज की प्रेरणा से गढ़वाल नरेश
ने पन्द्रहवीं शताब्दी में बनवाया था, इस पर सोने की कलश छतरी इन्दौर
की महारानी अहिल्याबाई ने चढ़ाई थी।

श्री बदरीनाथ की मूर्ति

श्री बदरीनाथ की वर्तमान मूर्ति ३'-९" ऊँची शालीग्राम शिला पर
बनी है। अब यह मूर्ति खंडित है, सिर के आगे का पत्थर टूटकर गिर गया
है। जिससे ललाट, आँखें, नाक, मुँह ठुड्डी गायब है। [2]अब मूर्ति के शृंगार
के समय इस पर चन्दनादि से कृत्रिम नाक आँखें बनाई जाती हैं। यह मूर्ति
कब खंडित हुई है, इस सम्बन्ध में ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। कहते
हैं यह मूर्ति सर्व प्रथम देवताओं ने नारद कुंड से निकालकर स्थापित की
और नारद जी को अर्चक बनाया। दुवारा जब बौद्धों का इस क्षेत्र में

1. गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ—पृष्ठ १३६ (ग० वि० वि० प्रकाशन)
2. राहुल-गढ़वाल

प्राबल्य हुआ तो वे इस मूर्ति को बुद्ध की मूर्ति समझ कर पूजने लगे। शंकराचार्य ने जब बोद्धों को पराजित करना आरम्भ किया तो वे तिब्बत की ओर भाग गए और मूर्ति को नारद कुंड में फेंक गए। तब शंकर यति ने मूर्ति को नारद कुंड से निकाल कर पुनः प्रतिष्ठित किया। तीसरी बार मंदिर के पुजारी ने ही कुढ़ कर मूर्ति को तप्तकुंड में फेंक दिया और वहाँ से पूजा कार्य छोड़कर चला गया, क्योंकि यात्री वहाँ आते नहीं थे। अब रामानुजाचार्य (इस सम्प्रदाय के किसी आचार्य) ने मूर्ति तप्त कुण्ड से निकाल कर प्रतिष्ठित की।[1]

मूर्ति का इतिहास काफी लम्बा है। ठीक से नहीं कहा जा सकता कि इस उठा-पटक में यह मूर्ति कब भग्न हुई। मूर्ति के निर्माण काल के सम्बन्ध में राहुल, एटकिन्सन, मुन्शी, भगिनी निवेदिता, उपाध्याय व डबराल आदि इतिहासकार व विद्वान मौन हैं।

कुछ लोग इसे बुद्ध मूर्ति और कुछ जैन मूर्ति भी कहते हैं। राहुल ने तो इसे स्पष्ट रूप से बौद्धमूर्ति कहा है। किन्तु राहुल का यह मत सही मालूम नहीं होता क्योंकि यदि यह बौद्ध तीर्थ होती तो बौद्ध साहित्य में इसका जिक्र कहीं अवश्य होता, जबकि हिन्दू धर्म के महाभारत व पुराणादि ग्रंथों में इसका उल्लेख बार बार हुआ है। जो मत भी सही हो, इतना निश्चित है कि हिन्दू धर्म एक समन्वित धर्म है। हिन्दुओं के लिए यह मूर्ति सब प्रकार से पूज्य और मान्य है। नारायण, बुद्ध तथा ऋषभदेव ये तीनों विष्णु के अवतार पुराणों के अनुसार माने गए हैं। और बदरीनाथ शताब्दियों से विष्णुतीर्थ के रूप में असंख्य हिन्दू जगत की आस्था का महान् केन्द्र बना हुआ है।

मंदिर के अन्दर अन्य मूर्तियां भी हैं। इस मूर्ति समूह को बदरीश पंचायत कहा जाता है, इसमें लक्ष्मी, नर-नारायण, कुबेर जी, उद्धव जी, श्री देवी, भूदेवी, गरुड़ जी व नारद जी हैं।

उद्धव जी की मूर्ति भगवान बदरीश की उत्सव मूर्ति कही जाती है। शीतकाल में छह मास जोशीमठ में इसी की पूजा होती है।

नोट :—जीर्णोद्धार के नए प्लान के अनुसार अब मंदिर का सभा मंडप नए

---

1. कल्याण—तीर्थांक पृ० ५८-५९

ढंग का बनाया गया है। अब यह काफी प्रशस्त बन गया है। इस सजावट में दक्षिणात्य शैली का पुट दिया गया है। कपाटों को झूल हुई घंटियों से सजाया गया है। मंडप में अब अधिक दर्शनार्थी ए साथ खड़े हो सकते हैं।

श्री बदरीनाथ मन्दिर का जीर्णोद्धार

भूतकाल में समय समय पर हिमालय स्थित इस मन्दिर का जीर्णोद्धा होता रहा है। शताब्दियों पूर्व शंकराचार्य ने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार क नारद कुंड में फेंकी गई मूर्ति का पुनः प्राण प्रतिष्ठा की थी। १८वीं सदी के उत्तरार्द्ध में स्वामी वरदाचार्य की प्रेरणा से वर्तमान मंदिर पुराने छोटे मंदिर के स्थान पर गढ़वाल नरेश ने बनवाया था। इन्दौर की महारानी अहिल्याबाई ने स्वर्ण छतरी चढ़ाकर मंदिर की खूबसूरती और प्रतिष्ठा में वृद्धि की।

वर्तमान समय में बदरीनाथ पुरी तक यातायात के साधनों की सुलभता के कारण यात्रियों की संख्या में आशातीत वृद्धि होने लगी। यात्रा काल में दर्शनार्थियों की भीड़ भाड़ को देखते हुए संकीर्ण परिक्रमापथ, मण्डप व अर्थ मंडप के विस्तार की आवश्यकता प्रतीत हुई। मंदिर के कुछ भाग क्षतिग्रस्त होते भी दिखाई दिए। इस कारण मन्दिर समिति ने सन् १९७२ में जीर्णोद्धार की एक योजना बनाई। उस समय मंदिर समिति के अध्यक्ष डा० रामनारायण पांडे थे। समिति ने योजना तो बना दी किन्तु जीर्णोद्धार पर काफी व्यय होने की संभावना थी। इसके लिए साधन ढूंढे जाने लगे। इस कार्य के लिए देश के धनीमानी बिड़ला परिवार से सम्पर्क किया गया। फलतः बिड़ला परिवार के जयश्री ट्रस्ट ने जीर्णोद्धार के लिए अपनी सेवायें समर्पित करनी स्वीकार कर ली। मानचित्र स्वीकृत हो जाने पर कार्य आरंभ किया गया। किन्तु मंदिर का जो नमूना प्रदर्शित किया गया उससे कुछ लोगों ने यह प्रश्न उठाया कि अब बदरीनाथ मंदिर बिड़ला मंदिर बनने जा रहा है। ऐसा भी सुना गया कि मंदिर परिसर में एक पट्टिका पर—देवनांप्रिय बिड़ला—लिख दिया गया था। स्थानीय जनता में इससे काफी आक्रोश पैदा हो गया और जयश्री ट्रस्ट के विरोध में एक

आन्दोलन छिड़ गया। समाचार-पत्रों में काफी चर्चायें होने लगीं। मन्दिर समिति पर दबाव पड़ने लगा कि वह इस पर अपना स्पष्टीकरण दे। जब आन्दोलन तीव्र हुआ तो १९७३ ई० में धर्मदत्त वैद्य की अध्यक्षता में हरिद्वार में मन्दिर समिति की आवश्यक बैठक बुलाई गई। इसमें जयश्री ट्रस्ट के मुख्य वास्तुविद श्री बोस ने कुछ संशोधन व सुझाव स्वीकार किए किन्तु जनाक्रोश इस परिवर्तन से शान्त नहीं हुआ। आन्दोलन तेज होने लगा।

जनभावना को देखते हुए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मन्त्री श्री हेमवती नंदन बहुगुणा के प्रयत्नों से एक उच्च स्तरीय समिति गठित की गई। समिति के अध्यक्ष तत्कालीन वित्तमन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी बनाए गए। इस समिति ने भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के महा-निदेशक श्री देश पाण्डे, प्रयाग विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व विभाग के प्रो० गोवर्धन राय आदि विशेषज्ञ लिए गए। चारों ओर से यह आवाज उठने लगी कि मन्दिर की उत्तराखंड शैली को समाप्त न किया जाय। अतः उक्त समिति ने यही संस्तुत किया कि मन्दिर उत्तराखंड शैली में ही बनाया जाए। बिड़ला परिवार इन कारगुजारियों से क्षुब्ध हो गया और उसने निर्माण कार्य से हाथ खींच लिया। नये निश्चय के अनुसार मन्दिर समिति स्वयं जीर्णोद्धार का कार्य करा रही है। इस पर होने वाले व्यय की पूर्ति देश के धनी मानी व्यक्तियों व संस्थाओं के चन्दे से ही की जाएगी। इसके लिए हैदराबाद से पत्थर मँगाए जा रहे हैं। जीर्णोद्धार का कार्य काफी द्रुत गति से चल रहा है। जून १९८० तक इस कार्य पर लगभग १५ लाख रुपए व्यय हो चुके थे। यदि निर्माण कार्य की यही गति रही तो सन् १९८३ ई० तक कार्य पूरा होने की पूरी सम्भावना है।

अपील श्री बदरीनाथ मन्दिर जीर्णोद्धार

हमारा परम पावन श्री बदरीनारायण जी का मन्दिर, हमारे राष्ट्र की महानतम्, आध्यात्मिक निधि—रत्नों के मुकुट, जो हिमालय को सुसज्जित किए हुए हैं और महानता, महत्वता का श्रोत 'माँ' गंगा से जुड़ा हुआ है तथा आदि काल से हमारे महान सन्त एवं दार्शनिक आद्य गुरु श्री शंकरा-

चार्य द्वारा स्वयं-भू मूर्ति की स्थापना की गयी। देश के सभी भागों के भक्त-जनों की सदैव एक प्रबल इच्छा रही है कि वे अपने जीवन में एक ब अवश्य इस धाम की यात्रा कर सकें।

इस धाम के प्राचीन मन्दिर की परम्परागत् प्रथाओं एवं शैलियों व यथापूर्व रखते हुए उसकी भव्यता एवं महानता को पुनर्जीवित रखने व दिशा में इसके जीर्णोद्धार की आवश्यकता प्रतीत हुई है। यह जीर्णोद्धा कार्य हर प्रकार शस्त्रोक्त विधि एवं मन्दिर के अनेक ध्वस्त-भागों व पुनर्निमित करते हुए, किया जाना है। श्री बदरीनाथ का प्रमुख एवं उस सम्बन्धित कतिपय मन्दिर जैसे पंचबदरी, श्रीनृसिंह मन्दिर जोशीम आदि जो ध्वस्त होने की दिशा में हैं, के जीर्णोद्धार के लिए एक करो रुपए की आवश्यकता होगी।

श्री बदरीनाथ एवं केदारनाथ मन्दिर समिति समस्त श्रद्धालु एव धर्मादा संस्थाओं से पुरजोर अपील करती है कि वे इस महान कार्य के लिए मुक्त-हस्त से दान देने की कृपा करें। इस प्रकार का किया गया दान भारत सरकार द्वारा उनकी विज्ञप्ति संख्या 98 (F. No.16/0/69-I.T. 9AI) द्वारा आयकर से मुक्त होगा। दान की धनराशि बैंक-चैक, बैंक-ड्राफ्ट्स, मनीआर्डर तथा पोस्टल आर्डर के रूप में श्री बदरीनाथ मन्दिर जीर्णोद्धार कोष के नाम से समिति के मुख्य कार्याधिकारी, स्थान व पोस्ट श्री बदरीनाथ धाम, जिला चमोली के नाम से भेजे जा सकते हैं। स्टेट बैंक तथा पंजाब नेशनल बैंक ने अपनी सभी शाखाओं में ऐसे दान की धन-राशियाँ प्राप्त करने की स्वीकृति प्रदान की है। अतः दान दाताओं से निवेदन है कि वे अपने दान की धनराशि सीधे इन्हीं बैंकों को अथवा मुख्य कार्याधिकारी, श्री बदरीनाथ एवं श्री केदारनाथ मन्दिर समिति के नाम भेजने की कृपा करें। व्यक्ति विशेष तथा किसी अन्य संगठन को इस प्रकार के दान लेने के लिए अधिकृत नहीं किया गया है। श्री बदरीनाथ एवं श्री केदारनाथ मन्दिर समिति भारतवर्ष के प्रत्येक परिवार से भी पुरजोर अपील करती है कि वे इस पवित्र कार्य के लिए यथाशक्ति अपना सहयोग प्रदान करे। निर्धन परिवार जो इस धाम की यात्रा करने में असमर्थ हैं,

नका एक रुपए का दान भी भगवान श्री बदरीनाथ का आशीर्वाद प्राप्त
र सकेगा। देश के समस्त भागों से इस प्रकार के अल्प दानों से जीर्णोद्धार
ा यह पवित्र कार्य हमें एक आदर्श-मार्ग प्रशस्त करेगा कि हम सभी देश-
ासी अपनी प्रार्थना भगवान श्री बदरीनाथ जी को प्रेषित करें जो सदैव
उत्तरांचल के सर्वोच्च शिखर से हम सब पर अपनी कृपा-दृष्टि रखकर
हमारी रक्षा करते हैं।

सर्वव्यापक सहृदय उदार भाव से दिया गया प्रोत्साहन हमें अपने इस
महान लक्ष्य की पूर्ति की दिशा में सुलभता तथा गतिशीलता प्रदान
करेगा।

(श्री बदरीनाथ-केदारनाथ मन्दिर समिति, श्री बदरीधाम द्वारा प्रसारित)

श्री बदरीनाथ में आवास सुविधा

उत्तराखण्ड के तीर्थों में श्री बदरीनाथ धाम सबसे प्रसिद्ध तीर्थ है।
अतः सबसे अधिक यात्री भी यहीं आते हैं। सन् १९६२ में बदरीनाथ तक
यातायात की सुविधा होने से अब उत्तरोत्तर प्रतिवर्ष आने वाले यात्रियों
की संख्या में वृद्धि हो रही है। प्राचीन काल में जब पूरी यात्रा पैदल थी
तब भी बदरीनाथ में पहुंचने वाले यात्रियों की संख्या कम नहीं रहती थी।

मन्दिर समिति के सन् १९७८-७९ तक के आंकड़ों को देखने से पता
चलता है कि सबसे अधिक यात्री १९७८-७९ में श्री बदरीनाथ धाम पहुँचे
हैं जिनकी संख्या १८०३१६ थी।

श्री बदरीनाथ पहुंचने वाले यात्रियों के लिए आवास की कोई समस्या
नहीं है। सभी श्रेणियों के यात्रियों के लिए यहाँ पूर्ण आवास सुविधा है।
पंडों की निजी व्यवस्था के अतिरिक्त छोटी बड़ी ३६ धर्मशालाएँ—
सरकारी व गैर सरकारी यहाँ विद्यमान हैं, जिनकी सूची कमरों की संख्या
सहित आगे दी जा रही है। कुल धर्मशालाओं में ठहरने के लिए ५२५
कमरों की सुविधा उपलब्ध है।

वर्तमान समय में औसतन १००० यात्री प्रतिदिन श्री बदरीनाथ
पहुंचते हैं। अतः कैसी भी परिस्थिति में यहाँ कभी यात्रियों को आवास की
कठिनाई नहीं होती। नई धर्मशालाएँ पूर्ण आधुनिक सुविधाओं से परिपूर्ण

हैं। परमार्थ लोक जैसी धर्मशाला में तो भोजन व्यवस्था भी उपलब्ध है। (ध्यान रहे कि यह भोजन व्यवस्था सशुल्क है)। अन्य आवासीय निकेतनों के निकट भी खाने एवं चाय-काफी के होटल विद्यमान हैं। भारत के सभी राज्यों के यात्रियों के लिए यहाँ उनकी पसन्द का खाना मिल जाता है।

सन् १९४७ तक बदरीनाथ में केवल ५ धर्मशालाएँ थीं, १९४८ से १९६० तक ७ धर्मशालाएँ और बनीं। अधिकांश धर्मशालाओं का निर्माण सन् १९६२ के बाद हुआ क्योंकि सन् १९६२ में बदरीनाथ तक यातायात की सुविधा होने से भवन निर्माण की सामग्री को पुरी तक पहुँचाने में सुविधा हो गई और वहाँ निर्माण कार्य तेजी से होने लगा। सन् १९६२ से १९७८ तक बदरीनाथ में २४ धर्मशालाओं, विश्रामगृहों का निर्माण हुआ। सभी नई धर्मशालाएँ और विश्रामगृह नर पर्वत के पाद प्रदेश नई बस्ती में ही बने हैं। सभी नये भवनों में सीमेन्ट और टिन का प्रयोग किया गया है।

बदरीनाथ के यात्रियों के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय आंकड़ें

धार्मिक दृष्टिकोण वाले	९७.९ प्रतिशत
पर्यटन की दृष्टि वाले	२.१ प्रतिशत
केवल बदरीनाथ की यात्रा कर लौटने वाले यात्री	८३.३ प्रतिशत
बदरीनाथ के साथ अन्य तीर्थों की भी यात्रा करने वाले	२१.७ प्रतिशत
बदरीनाथ में केवल एक दिन टिकने वाले यात्री	१८.५ प्रतिशत
,, ,, २ दिन ,,	५८.५ प्रतिशत
,, ,, ३ दिन ,,	१९.९ प्रतिशत
,, ,, ४ दिन ,,	३.१ प्रतिशत

धर्मशालाओं और विश्राम गृहों की सूची

धर्मशाला/यात्री विश्रामगृह का नाम		कमरों की संख्या
१. शंकराचार्य धर्मशाला	—	२०
२. जालान ट्रस्ट धर्मशाला	—	२२
३. मोदी भवन नं० 1	—	६
४. मोदी भवन नं० २	—	६
५. मित्तल काटेज	—	३
६. टी० टी० डी	—	१२
७. संकीर्तन भवन	—	४
८. ताल्लुका धर्मशाला	—	१८
९. झुन झुन वाला धर्मशाला	—	३
१०. चान्द धर्मशाला	—	८
११. गुजराती धर्मशाला	—	४
१२. लक्ष्मी नृसिंह पित्ती धर्मशाला	—	१२
१३. सा० नि० वि० निरीक्षण भवन	—	६
१४. देव लोक यात्री विश्राम गृह	—	
१५. काली कमली दूध वाली धर्मशाला	—	
१६. काली कमली मानसिंह वाली	—	
१७. काली कमली जैपुरिया	—	
१८. सन्त निवास	—	
१९. बिरला निकेतन	—	
२०. बिरला मंगल निकेतन	—	
२१. नेपाली धर्मशाला	—	
२२. वेदान्त कुटीर	—	
२३. भूरी माई धर्मशाला	—	
२४. अष्टादशी धर्मशाला	—	
२५. पंजाब सिन्ध क्षेत्र	—	
२६. स्वामी नारायण धर्मशाला	—	
	—	

२७. मध्व भवन	—	११
२८. परमार्थ लोक	—	४०
२९. रघुनाथ आश्रम लक्ष्मी नारायण	—	१९
३०. मानव कल्याण	—	२५
३१. जालाराम मीरपुर	—	४
३२. गीता मन्दिर	—	१५
३३. बाला नन्द ब्रह्मचारी	—	१७
३४. महाराष्ट्र धर्मशाला	—	१६
३५. भजनाश्रम	—	३५
३६. हल वासिया धर्म शाला	—	१७
		५२५

१६

श्री बदरीनाथ पुरी की महायोजना

सन् १९४८ में पुरी बदरीनाथ में हिम-स्खलन से जो उथल-पुथल ई थी उसको देखकर राज्य सरकार ने पुरी की नव-निर्माण की योजना यार करने के लिए नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग, उत्तर प्रदेश को र्देशित किया। इस विभाग ने बस्ती के विस्तार हेतु वर्तमान नगर को सुरक्षित पाया। फलतः उसने सन् १९५४ ई० में पूर्वी क्षेत्र नर पर्वत के ाद प्रदेश में नया शहर बसाने की एक योजना तैयार की। परन्तु किन्हीं ारणों से उसे अन्तिम रूप नहीं दिया जा सका।

सन् १९६५ में पुनः नारायण पर्वत की ओर से मन्दिर बदरीनाथ एवं आबादी को हिम-स्खलन से काफी हानि पहुँची अतः नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ने १९६५ में फिर से सर्वेक्षण किया और अगस्त १९६५ में इस महायोजना की वाह्य रूपरेखा तैयार की। जो निम्न प्रकार हैं—

१. स्थानीय जनसंख्या, तीर्थ यात्रियों तथा पर्यटकों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनकी आवास सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अलकनन्दा के बायें किनारे पर पृथक् व्यवस्था की जाए।

२. अलकनन्दा नदी के दाहिने किनारे पर पश्चिम की दिशा में मन्दिर, कीर्तन मण्डल, यज्ञशाला इत्यादि की व्यवस्था की जाए।

६६ दि० ३ जून, १९६८ द्वारा विनियमित क्षेत्र घोषित किया व राज्य सरकार ने एक नियंत्रक प्राधिकारी समिति की नियुक्ति की। जिससे महायोजना को अन्तिम रूप दिया जा सके।

उक्त महायोजना को अन्तिम रूप देने पूर्व नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग ने अगस्त २९, १९६८ को वास्तुविद योजनाकार के नेतृत्व में एक सर्वेक्षण दल बदरीनाथ शहर के सर्वेक्षण हेतु भेजा। दल ने सभी बातों को देखकर वर्तमान स्थिति और भविष्य की आवश्यकताओं को देखते हुए योजना तैयार की जिसे सम्बन्धित व्यक्तियों और अधिकारियों को आपत्तियों के लिए भेजा।

७-११-६८ को विनियमित क्षेत्र की बैठक में सुझाव व आपत्तियां प्राप्त की गईं। तत्पश्चात् समिति ने बदरीनाथ की योजना में कुछ संशोधन कर १ जनवरी, १९७० को महायोजना अनुमोदित कर दी।

गत महायोजना के पुनर्निरीक्षण की आवश्यकता

उत्तराखण्ड के इस प्रसिद्ध तीर्थ की धार्मिक महत्ता के कारण प्रतिवर्ष तीर्थयात्रियों एवं पर्यटकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। विशेषकर पिछले दशक में हुए विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों ने इस तीर्थ स्थल की भौतिक संरचना पर प्रभाव डाला है। इसके अतिरिक्त प्रभावशाली नियन्त्रण के अभाव में बहुत-सा निर्माण विकास अनियमित रूप से हो गया, जिनमें जोनिंग बाइलाज एवं प्रस्तावित भू-उपयोग का ध्यान नहीं रखा गया है। आज की परिवर्तित परिस्थितियों तथा भविष्य में परिवर्तन की प्रवृत्ति एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर यह आवश्यक हो गया है कि गत महायोजना के प्रस्तावों का पुनर्अध्ययन, मूल्यांकन तथा सुधार किया जाए, जिससे महायोजना के प्रस्तावों को नई मान्यता देकर प्रभावी एवं गतिशील बनाया जा सके।

अतः नियन्त्रण प्राधिकारी की बैठक दि० ७-१-७९ में सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया कि नगर महायोजना के पुनर्निरीक्षण हेतु शासन को लिखा जाए। दि० ४-६-७९ को हुई नियन्त्रण प्राधिकारी की बैठक में महायोजना का पुनर्निरीक्षण करने का अन्तिम निर्णय लिया गया तथा

य नगर एवं ग्राम नियोजक के पत्रांक २२८४।११। वे० नि०/७९ दि० ६-७९ के द्वारा शासन ने उक्त महायोजना के संशोधन हेतु निर्देश माँगे। सकी स्वीकृति शासकीय पत्रसंख्या २२९५।३९-३-२१ आर० बी०) ०। ६५ दि० ४-८-७९ के द्वारा प्राप्त हुई। उक्त आदेश के अनुक्रम में ० १६-८-७९ को गढ़वाल संभागीय नियोजन खण्ड का एक सर्वेक्षण दल ौतिक एवं अन्य सम्बन्धित सर्वेक्षण हेतु सहायक नियोजक के नेतृत्व में दरीनाथ भेजा गया। इस सर्वेक्षण के आधार पर वर्तमान परिस्थितियों था भविष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति को दृष्टिगत रखते हुए नगर के ुव्यवस्थित विकास हेतु विभाग ने संशोधित महायोजना-प्रारूप को तैयार कया है। यह महायोजना सन् १९९९ ई० तक के लिए तैयार की गई है। इन वीस वर्षों के भीतर इस महायोजना में किसी प्रकार का परिवर्तन न करने का सुझाव दिया गया है।

महायोजना के प्रारूप को गढ़वाल संभागीय नियोजन खण्ड श्रीनगर (गढ़वाल) ने १९८१ में पुस्तक रूप में प्रकाशित कर प्रचारित किया। प्रारूप में जो मानचित्र दिया गया हैं उसके अनुसार सम्पूर्ण बदरीनाथ पुरी को विकसित करने की दृष्टि से क्षेत्रों में बाँटा गया है। मुख्य क्षेत्र इस प्रकार हैं—

१. आवासीय क्षेत्र (पर्यटक व स्थानीय आवासीय क्षेत्र)
२. व्यावसायिक क्षेत्र (केन्द्रीय, मण्डलीय व स्थानीय)
३. कार्यालय क्षेत्र (सरकारी व अर्ध-सरकारी)
४. सामुदायिक सुविधा क्षेत्र (चिकित्सा, डाक-तार व स्कूल)
५. सार्वजनिक सुविधा क्षेत्र (विद्युत पूर्ति)
६. विनोद सुविधा क्षेत्र (सांस्कृतिक व सामाजिक केन्द्र, मन्दिर)
७. यातायात एवं परिवहन क्षेत्र (वस अड्डा, कार्यशाला व पैट्रोल पूर्ति)

पुरी में ११३.५० एकड़ भूमि उपलब्ध है जिस पर उक्त क्षेत्रों का विकास किया जाना है।

---

1. नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित श्री बदरीनाथ महायोजना (प्रारूप) पुस्तक के आधार पर।

श्री बदरीनाथ के सम्बन्ध में सामान्य सूचना

स्थिति—जनपद चमोली में पृथ्वी की अक्षांश रेखा ३०°—४४'—५६
और देशान्तर रेखा—७९°—३२'—२०" पर नर नाराय
पर्वत के मध्य अलकनन्दा के दोनों किनारों पर पुरी बदरीनाथ
अवस्थित हैं।

सिन्धुतट से ऊंचाई— ३१५५ मीटर

जलवायु—नवम्बर से अप्रैल तक—हिमाच्छादित
मई से नवम्बर तक—शीत
जुलाई से सितम्बर तक— वर्षा।

तापमान—ग्रीष्म ऋतु में—अधिकतम १७·०° सेन्टी० (अगस्त में)
न्यूनतम ५·६° सेन्टीग्रेड (अक्टूबर में)

वस्त्र—अक्टूबर से नवम्बर—भारी ऊनी वस्त्र
मई से सितम्बर—ऊनी वस्त्र।

भाषा—गढ़वाली, हिन्दी, अंग्रेजी।

यात्रा का उत्तम समय—मई से जून और सितम्बर से अक्तूबर।

दूरी—हरिद्वार से ३२० किलोमीटर
दिल्ली से ५२० किलोमीटर
श्रीनगर (घढ़वाल) से १६० किलोमीटर।

वर्तमान में निकटतम हवाई अड्डा—जौली ग्रांट ऋषिकेश से १८ किमी०
निकट भविष्य में गौचर
(जनपद चमोली) में प्रस्तावित है।

१७

वदरीनाथ में १९८६ का दैवी प्रकोप और अफवाहें

उत्तराखण्ड की यात्रा के इतिहास में वर्ष १९८६ श्री वदरीनाथ धाम के लिए वड़ा अनिष्टकारक रहा। इस वर्ष हरिद्वार में कुंभ मेला आयोजित था। २४ अप्रैल को कुंभ का अन्तिम स्नान था। श्री वदरीनाथ मन्दिर समिति ने यह सोचकर कि कुंभ के यात्री सीधे वदरी-केदार की यात्रा पर आ जाएंगे, २४ अप्रैल को केदारनाथ और २५ अप्रैल को वदरीनाथ के कपाट खोलने का मुहुर्त निकलवा दिया, जो कि अशुभ दिन थे। इस वर्ष २४ अप्रैल को चन्द्र ग्रहण और २५ अप्रैल को प्रतिपदा थी। कपाट पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार खुल तो गए किन्तु कपाट खुलते ही अनिष्ट शुरू हो गया। २६ अप्रैल को देवप्रयाग के पास एक यात्री बस दुर्घटनाग्रस्त हो गई जिसमें सवार सभी ४२ व्यक्तियों की मृत्यु हुई। उसके बाद केदारनाथ एवं वदरीनाथ में भारी वर्षा, हिमपात एवं आंधी-तूफान ने लगभग ११ यात्रियों को काल के गाल में डाल दिया। वदरीनाथ मार्ग पर कंचन गंगा के पास रडंग मोड़ पर भयंकर ग्लेशियर आ गया जिससे वदरीनाथ का मार्ग अवरुद्ध हो गया। अव वदरीनाथ गए हुए यात्री वहीं रुक गए। जिन्हें काफी कष्ट हुआ। इधर जो यात्री वदरीनाथ के लिए चल पड़े थे उन्हें जोशीमठ जाकर पता चला कि मार्ग अवरुद्ध हो गया। अतः ऐसे वहुत सारे यात्रियों को विना दर्शन के लौटना पड़ा। विना दर्शन के लौटने वाले यात्रियों की संख्या कार्याधिकारी के अनुसार ४०-५० हजार और रावल के अनुसार एक लाख थी। वदरीनाथ यात्रा के इतिहास की यह पहली घटना है कि यात्री वदरीनाथ के निकट जाकर भी विना दर्शन के लौट गए।

इन घटनाओं के कारण अनेक प्रकार की भ्रान्तियां फैलने लगीं। ए
अफवाह यह फैली कि रावल ने त्याग-पत्र दे दिया है। किसी ने क
रावल के हाथों में कुछ हो गया है। यह भी अफवाह चली कि रावल
स्वप्न में आकर भगवान बदरीनाथ ने कहा है कि शीघ्र ही बदरीनाथ डू
जाएगा। कुछ लोगों ने यह समाचार भी उड़ाया कि बदरीनाथ के कपा
बन्द कर दिए गए हैं। लेकिन इन पंक्तियों का लेखक जब १६ जून क
बदरीनाथ पहुँचा तो मालूम हुआ कि अफवाहें तथ्यों से परे हैं।

हां, पुरी वासियों ने अनिष्ट को दूर करने के लिए एक यज्ञ किया
जिसमें मन्दिर समिति ने भी ५०००१ रु० इस यज्ञ में दिया। अर्थात् मंदिर
समिति ने यह स्वीकार किया कि दैवी प्रकोप से अनिष्ट हुआ है। यह
समाचार बड़ी तेजी से फैला कि अशुभ मुहूर्त में कपाट खुलने से यह सब
गड़बड़ हुई। लेकिन अशुभ मुहूर्त में कपाट किसने खुलवाए, इस जिम्मे-
दारी को अपने ऊपर लेने को कोई तैयार न हुआ। मन्दिर समिति ने कहा
यह राजज्योतिषी की गलती है, राजज्योतिषी का कहना था कि समिति
ने जल्दी मुहुर्त निकालने को कहा है। रावल और धर्माधिकारी ने बताया
कि इसमें उनकी राय नहीं ली गई।

रावल श्री सी० गणपति के अनुसार श्री बदरीनाथ साधारण मन्दिर
नहीं, यह हिन्दुओं का अत्यन्त पवित्र तीर्थ है, इसकी परम्परा कायम रहनी
चाहिए। रावल का कहना था कि अशुभ मुहुर्त में कपाट खोलना गलत
था। परम्परा यह रही कि अक्षय तृतीया या तीन चार दिन पूर्व कपाट
खोले जायें। रावल ने यह मत भी व्यक्त किया कि प्राचीन परम्परा को
दोहराया जाय जिसमें कि रावल सर्वोच्च हो। समिति रावल के अधीन
हो। रावल का मत था कि जब से रावल एक वेतन भोगी कर्मचारी माना
गया है तब से उसका सम्मान कम हुआ है। (१६ जून १९८६ को लेखक
के साथ रावल की बातचीत)

इन पंक्तियों के लेखक ने १६ जून ८६ को ही बदरीनाथ में मन्दि
समिति के एक वरिष्ठ सदस्य श्री आलम सिंह बिष्ट से उक्त दैवी प्रकोप के
सम्बन्ध में उनकी राय जाननी चाही तो उन्होंने कहा कि इसमें मन्दि

समिति का कोई दोष नहीं। लग्न राजगुरु ने निकाला है। किन्तु अनिष्ट अवश्य हुआ है। इसीलिए पुरी निवासियों और मन्दिर समिति ने मिलकर प्राणियों की रक्षा एवं प्राकृतिक प्रकोप के निवारणार्थ अष्टाक्षरी मंत्र (ओम नमो नारायणाय) से महायज्ञ किया है। श्री बिष्ट ने बताया कि २१ मई से २६ मई तक भयंकर वर्षा हुई और हनुमान चट्टी से आगे कंचन गंगा के निकट विशाल ग्लेशियर ने मार्ग अवरुद्ध कर दिया और यात्रियों के लिए बदरीनाथ अगम्य हो गया। श्री बिष्ट ने बताया कि २६ मई से ३ जून तक वे भी बदरीनाथ में यात्रियों के साथ घिरे रहे। पुरी में खाद्यान्न की कमी हो गई थी, चाय का एक प्याला १० रु० में बिकने लगा। श्री बिष्ट के अनुसार बदरीनाथ में ऐसी स्थिति उनकी जानकारी में कभी नहीं आई। इन्हीं दिनों मन्दिर समिति में कार्यरत एक लिपिक भी (तरलबाबू) कहीं गायब हो गया। यह पता नहीं चला कि वह कहाँ गया। [illegible]
१९८६ बदरीनाथ के इतिहास में बड़ा च

१८

हेमकुण्ड (लोकपाल)

ततस्तु परम तीर्थं लोकपालोभिवन्दितम् ।
यत्र संस्थापयामास लोक पालान् हरि:स्वयम् ॥
(स्क० पु० व० अ० ८ श्लोक २(

बदरीनाथ पर्वत के सामने जो नर पर्वत है, इसी पर लोकपाल नाम परमपवित्र तीर्थ समुद्र की सतह से १४२०० फीट की ऊँचाई पर स्थित है बदरीनाथ से लोकपाल की दूरी ६-७ किलोमीटर से अधिक नहीं होग किन्तु बदरीनाथ से यहाँ जाने के लिए सीधा रास्ता नहीं है। अत: लोकपाल जाने वाले यात्रियों को बदरीनाथ से वापिस पाण्डुकेश्वर के पास गोविन्द घाट जाना पड़ता है। यहाँ अलकनन्दा के पुल को पार कर लोकपाल के लिए रास्ता जाता है। इस पुल से हेमकुण्ड लोकपाल की दूरी लगभग १६ कि० मीटर है। पूरी यात्रा अभी तक पैदल ही है। गोविन्द घाट से ५ किलोमीटर की दूरी पर भ्यूंडार नाम का गाँव है। मार्ग लक्ष्मण गंगा के साथ-साथ ऊपर को बढ़ता है। यह लक्ष्मण गंगा लोकपाल सरोवर से आती है। इस भ्यूंडार गाँव में लोकपाल का आदि मन्दिर है। भ्यूंडार से आगे ६ किलोमीटर पर घांघरिया नामक स्थान है। घांघरिया बड़ा ही रमणीक स्थान है। सिन्धु तट से इसकी ऊँचाई ३०४६ मीटर है। देवदारु के विशाल वृक्षों का सघन वन चारो ओर दृष्टिगोचर होता है। सम्पूर्ण वातावरण संगीतमय लगता है। सामने काकभुशुण्डी पर्वत की गगनचुम्बी चोटियाँ दृष्टिपथ को रोकती हैं। घाँघरिया, फूलों की घाटी और हेमकुण्ड के मार्ग का अन्तिम पड़ाव है। यहाँ से बाईं ओर को हेमकुण्ड का मार्ग और दाईं ओर को फूलों की घाटी का मार्ग जाता है। घांघरिया में सिक्खों का एक छोटा गुरुद्वारा है। रात्रि विश्राम के लिए यहाँ विश्रामगृह भी है।

घाँघरिया से हेमकुण्ड की दूरी ५ किलोमीटर है। मार्ग चढ़ाई का है किन्तु प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों को देखते हुए यात्री थकान महसूस नहीं करते। मार्ग में स्थल-कमलों का वन मिलता है जिसमें रंग-विरंगे कमल खिले रहते हैं। चार किलोमीटर की चढ़ाई तय कर जब यात्री हेमकुण्ड पहुँचता है तो चारों ओर की दृश्यावली को देखकर आत्म-विस्मृत हो उठता है। गगनचुम्बी शैलशृंग अपनी सम्पूर्ण साज-सज्जा से यहाँ दर्शकों को मोहित करने को खड़े मिलते हैं। हिमकुण्ड दण्डपुष्करिणी, हेमकुण्ड या लोकपाल सरोवर इसी को कहते हैं। समुद्र तल से इसकी ऊँचाई ४३२० मीटर है।

पुराणों में इस स्थान का नाम लोकपाल ही मिलता है। यहाँ लोकपाल (लक्ष्मण जी) तथा देवी का मन्दिर अभी तक विद्यमान है। नारद पुराण, वाराह पुराण और स्कन्द पुराण में इस लोकपाल तीर्थ का विस्तृत वर्णन है। लिखा है कि इस लोकपाल तीर्थ में स्नान करने से सब तीर्थों का फल मिल जाता है।

इस दण्ड पुष्करिणी (लोकपाल) सरोवर की रचना कैसे हुई ? इस सम्बन्ध में पुराणों में एक कथा है। जब भगवान बदरी विशाल ने बदरी क्षेत्र को अपना आवास स्थल बना दिया तो सब देवता घबराए। उन्होंने सोचा अब हम ही यहाँ सुमेरु पर्वत पर रहकर क्या करेंगे। इसलिए आठों लोकपाल और सब देवता स्वर्ण शिखर को छोड़कर बदरी वन में आ गए। उन्होंने भगवान से कहा, हम वहीं रहेंगे जहाँ आप रहेंगे। भगवान हँस पड़े और कहा—अच्छी बात है हम सुमेरु को ही यहाँ ले आते हैं। यह कहकर भगवान ने सुमेरु पर्वत को उखाड़कर नर पर्वत पर स्थापित कर दिया और कहा—"अब तुम सब लोग यहीं मेरे निकट रहो। भगवान ने वहाँ शेन दण्ड के प्रहार से एक दण्ड पुष्करिणी का निर्माण कर दिया। यही अब लोकपाल या हेमकुण्ड सरोवर है। इस सरोवर की यह विशेषता है कि इसका जल कभी गन्दा नहीं होता। इतना स्वच्छ जल अन्य सरोवरों में नहीं मिलता। यहाँ के लोगों का कहना है कि यदि कोई पत्ता या तिनका इस सरोवर में डाल दे तो पक्षी उसे तुरन्त हटा देते हैं।

सिक्खों का तीर्थ कैसे बना ?

दसवें गुरु महाराज गुरु गोविन्दसिंह जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन होम दिया। उन्होंने धर्म की रक्षा के लिए अपने पुत्रों को जीते जी दीवालों में चिनवाते देखा। उनका आचरण एक महान राष्ट्र-भक्त के जैसा था। उन्होंने महान् आचार्य और लोक गुरु की तरह केवल उपदेश ही नहीं दिया अपितु शस्त्र हाथ में उठाकर युद्ध भूमि में पदार्पण किया। वे एक उच्चकोटि के साहित्यकार भी थे। उन्होंने अपने ग्रंथ विचित्र नाटक में एक पद में अपने पूर्वजन्म का हाल वर्णन किया है, पद इस प्रकार है :—

अब मैं अपनी कथा बखानों।
तप साधत जेहि विधि मोहिआनों॥
हेमकुण्ड पर्वत है जहाँ।
सप्तश्रृंग सोहत है तहाँ॥
सप्तश्रृंग तेहि नाम कहावा।
पांडु राज जँह जोग कमावा॥
तहँ हम अधिक तपस्या साधी।
महाकाल कालिका अराधी॥
यही विधि करत तपस्या भयो।
द्वै ते एक रूप ह्वै गयो॥
तात मात मुर अलख अराधा।
वहु विधि जोग साधना साधा॥

(विचित्र नाटक पृष्ठ ३-४ चौपाई १-२)

इस पद में सप्तश्रृंग और हेमकुण्ड जैसे नामों को देखकर सिक्ख लोग सोचते थे कि ये स्थान कहाँ है ? सिक्ख लोग इस स्थान की खोज में लगे रहे। अन्त में उन्हें टिहरी में इस स्थान के बारे में पता चला। १९३६ ई० में इस स्थान का पता लगाने वाले हवलदार सोहनसिंह थे। जब इस स्थान का पता लगा तो सिक्खों ने बड़ा भारी दरबार किया और बड़ी प्रसन्नता व्यक्त की। उनका विश्वास है कि यही वह स्थान है जहाँ पूर्वजन्म में गुरु

गोविन्दसिंह जी ने तप किया था। तभी से सिक्ख लोगों ने इस स्थान की यात्रा आरम्भ की। आज तो यह स्थान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का सिक्ख तीर्थ हो गया है। प्रतिवर्ष देश-विदेश के हजारों सिक्ख तीर्थ यात्री यहाँ आते हैं। सिक्ख समुदाय द्वारा यहाँ पर लाखों रुपये की लागत के एक विशाल गुरु-द्वारे का निर्माण किया जा रहा है। इसी में एक विशाल धर्मशाला भी होगी जिसमें हजारों व्यक्ति एक साथ निवास कर सकेंगे। अब यह सिक्खों का तीर्थ भी बन गया है। हिन्दुओं का तो यह अनादि तीर्थ है। भगवान द्वारा लोकपाल तीर्थ के निर्माण की कथा ऊपर दी गई है। इस सम्बन्ध में वाराह पुराण का उदाहरण देना समीचीन होगा, यथा—

लोकपालमिति ख्यातं तस्मिन् क्षेत्रे परे मम।
तत्र ते लोकपालास्तु मया संस्थापितः पुरा॥
तत्र पर्वत मध्ये तु स्थल कुण्डे वृहन्मम।
भित्वा पर्वत मुद् गीर्ण यत्र सोम समुद्भवः॥

—वाराह पुराण

इस लोकपाल या दण्ड पुष्करिणी को पुराणों में कितना महत्त्व दिया गया है, इसके लिए स्कन्द पुराण का निम्न श्लोक पर्याप्त होगा जिसमें कहा गया है कि जो फल सब तीर्थों के अवगाहन से प्राप्त होता है वह दण्ड-पुष्करिणी में स्नान करने से तत्क्षण प्राप्त हो जाता है:—

सर्वतीर्थविगाहेन यत्फलं परिकीर्तितम्।
तत्फलं तत्क्षणादेव दण्डपुष्करिणी क्षणात्॥

—स्कन्द पुराण

१६

फूलों की घाटी

फूलों की घाटी पर्यटन के अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्र पर स्थापित
चुकी है। प्रस्तुत पुस्तक में मुख्यत: उत्तराखण्ड के चारों धामों, प्रभागों
तीर्थयात्रा के मार्ग पर पड़ने वाले अन्य तीर्थों पर ही लेखनी केन्द्रित
गई है। पुस्तक का आकार बढ़ने के भय से इसमें उत्तराखंड के सौन्द
स्थलों का समावेश प्रसंगवश ही किया गया है। अत: फूलों की घाटी
भी यहा संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

लोकपाल के मार्ग में घाँघरिया एक प्रमुख व अन्तिम पड़ाव है। य
से संसार प्रसिद्ध फूलों की घाटी का मार्ग है। घांघरिया से लगभग
किलोमीटर की दूरी पार कर यहाँ आसानी से पहुँचा जा सकता है। इ
घाटी में जून से अक्तूबर तक आवागमन रहता है किन्तु फूलों के उमड़
समुद्र की छटा देखने के लिए यहाँ मध्य जुलाई और मध्य अगस्त के अन्द
आना चाहिए। इस काल में ६ किलोमीटर लम्बे और २ किलोमीट
चौड़े इस क्षेत्र में असंख्य रंग-बिरंगे फूल अपने सम्पूर्ण यौवन पर रहते हैं
फूलों का यह प्राकृतिक बगीचा इस ढंग से सजा रहता है मानो किस
कुशल माली ने इसे संजोया हो। प्रकृति की रचना कौशल का यह अद्भुत
करिश्मा है। यहाँ सावन में वसन्त की छटा देखकर मन-मयूर नाच
उठता है।

फूलों की इस घाटी की सर्वप्रथम खोज फ्रैंक स्माईथ नामक पर्वता-
रोही ने सन् १९३१ ई० में की थी। जब वह कामेट का सफल आरोहण
कर लौटते हुए मार्ग से भटक गए थे। वे नीति घाटी से मार्ग भूल गए और
पश्चिम की ओर चल पड़े। उन्होंने काकभुशुण्डी पर्वत के पीछे वाला मार्ग
पकड़ा और उनका रुख गंधमादन की ओर हो गया। वे लोकपाल की

शिखरवालियों को पार कर रहे थे कि अचानक ही दृष्टि फूलों की घाटी की ओर गई। वहाँ फूलों का नैसर्गिक उद्यान देखकर वे आश्चर्यचकित रह गए। उनके आनन्द की सीमा न रही। वे दो दिन तक वहीं रहे। उन्होंने फूलों के कुछ नमूने चुने जिन्हें वे अपने साथ स्वदेश ले गए। वे इन फूलों से इतने प्रभावित हुए कि पुनः १९३७ में उन्होंने इस घाटी की यात्रा की और ३ माह यहाँ विश्राम कर ३५० किस्म के फूलों के बीज लेकर स्वदेश लौटे। स्माईथ ने इस घाटी पर 'वेली आफ फ्लावर' नामक पुस्तक लिखी जिससे इसका नाम सारे संसार में विख्यात हो गया।

इस घाटी का नाम सुनकर सन् १९३९ में लन्दन की जोनमारग्रेट लैंली नामक एक महिला ने भी यहाँ की यात्रा की थी। वह फूलों के बीज बीनने के लिए यहाँ आई थी। वह काफी बीज अपने देश को भेज भी चुकी थी किन्तु अकस्मात ४ जुलाई १९३९ को पैर फिसलने से उनकी वहीं मृत्यु हो गई।

आज संसार के अनेक पर्यटक इस घाटी की यात्रा करते हैं। अब हमारे देश के लोगों में भी पर्यटन का शौक बढ़ रहा है। अतः स्वदेशी पर्यटक भी अब फूलों की घाटी की यात्रा करते हैं। उत्तरप्रदेश सरकार ने इस पर एक वृत्त चित्र भी बनाया है।

●●

२०

गंगोत्तरी-यमनोत्तरी

उत्तराखंड में चार धाम प्रसिद्ध हैं। गंगोत्री, यमनोत्री, केदारनाथ
: बदरीनाथ। इनमें से अधिकतर यात्री केवल बदरीनाथ की यात्रा
के लौट जाते हैं। कुछ यात्री केदारनाथ और बदरीनाथ दोनों तीर्थों का
र करते हैं। बहुत कम यात्री ऐसे होते हैं जो उत्तराखण्ड के चारों धामों
यात्रा करते हैं। वास्तव में उत्तराखण्ड की यात्रा तभी सफल मानी
ो है जब चारों धामों की यात्रा की जाती है और यह यात्रा वामावर्त
। चाहिए। अर्थात् बाईं ओर से प्रारम्भ करनी चाहिए। इस प्रकार सर्व
। यमनोत्री और अन्त में बदरीनाथ की यात्रा की जाती है। प्राचीन-
में जब सम्पूर्ण यात्रा पैदल हुआ करती थी तो लोग इसी परम्परा का
रण करते थे।

अधिकतर यात्री बदरीनाथ ही क्यों जाते हैं, इसका एक कारण तो
। कि बदरीनाथ में पुरी तक जाने के लिए अब यातायात की पूर्ण
ा है। दूसरी बात यह है कि प्राचीन ग्रंथों में बदरीनाथ की महिमा
ी गाई गई है उतनी उत्तराखंड के अन्य तीर्थों की नहीं गाई गई है।
ड़ा कारण यह भी है कि बदरीनाथ का रावल दक्षिण भारत का
है, जिससे दक्षिण के लोगों की आस्था में बदरीनाथ के प्रति काफी
हो जाती है। ऋषिकेश से बदरीनाथ तक अनेक तीर्थों का होना,
चार्य और पाण्डवों का बदरीनाथ से सम्बन्ध होना तथा गढ़वाल के
ों का बदरीनाथ के प्रति विशेष आकर्षण होना भी बदरीनाथ की
का कारण है। इसमें सन्देह नहीं कि श्री बदरीनाथ धाम एक
। सिद्ध तीर्थ है और उसकी पवित्रता एवं महात्म्य की पुराण और
ारत भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। किन्तु विश्व विख्यात भारत की

पवित्रतम नदियों—गंगा और यमुना के उद्गम स्थानों के तीर्थ गंगोत्री और यमनोत्री भी कम प्रसिद्ध नहीं हैं। इनके महात्म्य और प्राकृतिक छटा का वर्णन आगे के पृष्ठों में किया जाएगा। यहाँ इन दोनों तीर्थों तक पहुँचाने के मार्गों और मार्ग में पढ़ने वाले विशेष स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

गंगोत्री-यमनोत्री जाने के पुराने मार्ग

केदार के यात्रापथों की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। गंगोत्री और यमनोत्री के यात्रा पथ भी अब यातायात की सुविधा से काफी हद तक पूर्ण हैं।

ऋषिकेश से आगे—गंगोत्री-यमनोत्री की ओर बढ़ने वाले यात्रियों को ऋषिकेश में यातायात की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। यहाँ से टिहरी गढ़वाल मोटर आनर्स यूनियन, यातायात और पर्यटन विकास संघ एवं गढ़वाल मण्डल विकास निगम की बसें यात्रियों को गंगोत्री यमनोत्री के लिए मिलती हैं। प्राइवेट टैक्सियाँ भी यहाँ उपलब्ध हो जाती हैं। यात्री अपनी सामर्थ्य और सुविधा के अनुसार वाहनों की व्यवस्था कर सकते हैं।

नरेन्द्रनगर

ऋषिकेश से गंगोत्री-यमनोत्री के मार्ग में सर्वप्रथम यहाँ से १६ किलोमीटर की दूरी पर टिहरी जनपद का मुख्यालय नरेन्द्रनगर पड़ता है। मुनीकी रेती तक बस बदरीनाथ वाले मार्ग पर चलती है। यहाँ से बाईं ओर को नरेन्द्रनगर का मार्ग मुड़ जाता है। बस मुड़ते ही मार्ग धीरे-धीरे ऊंचा उठता जाता है। लताद्रुमों के मध्य रेंगती हुई अनेक मोड़ मुड़ने के के बाद बस लगभग आधे घंटे में ४००० फुट की ऊंचाई पर नरेन्द्रनगर बाजार में पहुँचती है। यात्रियों को यहाँ पर उतारने का कोई अवकाश नहीं मिलता। निजी वाहन वाले यात्री यहाँ उतर कर यहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का रसास्वादन कर सकते हैं। यह बहुत ही साफ सुथरा स्थान है। टिहरी रियासत के अन्तिम दो राजाओं—श्रीनरेन्द्र शाह और श्री मानवेन्द्र शाह की यह राजधानी रही है। इसे महाराजा नरेन्द्रशाह ने सन् १६२५ ई० में बसाया था। काफी ऊंचाई पर बना यहाँ का राजमहल दर्शनीय है। यहाँ से सूर्यास्त और ऋषिकेश का दृश्य भी अवलोकनीय है। आवास के लिए यहाँ सार्वजनिक निर्माण विभाग का निरीक्षण भवन है। अन्य छोटे-मोटे होटल भी हैं। राजकीय चिकित्सालय, पुलिस थाना, तारघर बैंक और टेलीफोन की सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं। पर्यटकों के लिए यह अच्छा पर्यटन स्थल तो है किन्तु उनके लिए यहाँ अच्छे आवास और अच्छे खाने की सुविधा नहीं है। ऋषिकेश निकट होने के कारण पर्यटक भ्रमण के बाद रात्रि विश्राम के लिए ऋषिकेश लौट जाते हैं।

हिंडोलाखाल

नरेन्द्रनगर से ६ किलोमीटर की दूरी पर हिंडोलाखाल एक रमणीक स्थल है। यहाँ से देहरादून का मन भावन दृश्य दिखाई देता है। यहाँ पर सौंराल्या नामक ग्राम देवता का मन्दिर है। जो एक चमत्कारी देवता माना जाता है। भारत स्वतन्त्र होने पर जब प्रथम भारतीय सेनापति श्री के० एम० करिअप्पा टेहरी आए थे तो इस स्थान पर सौंराल्या देवता की अवहेलना करने के कारण उनकी जीपों का पूरा काफला जाम हो गया था। बनाली गाँव के एक वृद्ध ब्राह्मण पं० रूपराम के यह सुझाने पर कि देवता के सम्मान में जूते उतार कर झुकने के बाद सब ठीक हो जाएगा, जीपें हरकत में आई थीं। यहाँ से एक मार्ग कूजापुरी मन्दिर को जाता है जो लगभग ६ हजार फीट की ऊँचाई पर अवस्थित है। कूजापुरी से हिमालय के मनोहारी दृश्यों के दर्शन होते हैं।

आगराखाल

हिंडोलाखाल से कुछ ही किलोमीटर की दूरी पर दुआधार होते हुए आगराखाल पहुँचा जाता है। यह स्थान भी बड़ा रमणीक है। यहाँ पर बसें रुकती हैं। चाय दूध के यहाँ अच्छे होटल हैं। यहाँ पर अदरक और अरबी की अच्छी मंडी है। यात्री यहाँ पर चाय-नाश्ता लेकर आगे बढ़ते हैं।

चम्बा

आगराखाल से बस ज्योंही चम्बा की ओर रेंगने लगती है, छोटे छोटे पर्वतीय गाँव पहाड़ की ढलानों पर दिखाई देने लगते हैं। कुछ ही देर में बस हेंवलघाटी में प्रवेश कर जाती है। इस घाटी में छोटे बड़े कई जल प्रपात दर्शनीय हैं। जाजल, नागणी को पीछे छोड़ती हुई बस लगभग एक घण्टे में चम्बा पहुँचती है। नरेन्द्रनगर से इसकी दूरी ४२ कि० मी० है।

चम्बा बहुत ही रमणीक स्थान है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई १२१० मी० है। अच्छा बाजार है। यहां पर विक्टोरिया क्रास विजेता गबरसिंह नेगी का स्मारक है। निकट ही रानी चौरी में पंतनगर कृषि विश्वविद्यालय का परिसर है। यहां से एक मोटर मार्ग पर्वतों की रानी मंसूरी (५१ कि०

मी०) को चला गया है। इस मार्ग के साथ-साथ चम्बा-मसूरी फल पट्टी है जहाँ सेव आदि के अनेक बगीचे हैं। सुरकंडा देवी (९९९९ फीट) का प्रसिद्ध मन्दिर इसी मार्ग पर है। काणाताल और धनोल्टी अच्छे सैरगाह हैं। चम्बा से कुछ नीचे टिहरी के क्रान्तिकारी अमर शहीद श्री देव सुमन का गाँव है। रात्रि निवास के लिए वन विभाग का विश्राम गृह है। चम्बा दिन प्रतिदिन प्रगति की ओर अग्रसर है। निश्चय ही एक दिन यह मसूरी की भाँति पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बनेगा। नया टिहरी नगर भी इसके निकट ही बनाए जाने की योजना है। उत्तरी क्षितिज के हिमाच्छादित शैल शिखर यहाँ से दृष्टिगोचर होते हैं।

चम्बा में बस थोड़ी देर रुकती है। यात्रीगण यहाँ चाय पान कर सकते हैं। अब बस धीरे-धीरे २१ किलोमीटर दूर टिहरी की ओर रेंगने लगती है। चारों ओर बसे छोटे-बड़े पर्वतीय गाँव सीढ़ीनुमा खेत और फेनिल झरने नये यात्रियों व पर्यटकों को कौतूहल की सामग्री प्रदान करते हैं। लगभग आधे घण्टे के बाद बस टिहरी पहुँचती है।

टिहरी नगर में प्रवेश करने के लिए चम्बा से आते हुए भागीरथी का पुल पार करना पड़ता है। आमतौर पर यात्री बसें टिहरी नगर में प्रवेश नहीं करतीं। ऋषिकेश से गंगोत्री-यमनोत्री जाने वाली यात्रियों की बसें दोबाटा नामक स्थान से धरासू की ओर मुड़ जाती हैं। पाठकों को गंगोत्री यमनोत्री के पथ पर ले जाने से पूर्व रियासत की पुरानी राजधानी टिहरी नगर से परिचित कराना समीचीन होगा क्योंकि टिहरी भागीरथी नदी पर बन रहे विशाल बाँध के पूर्ण होने पर यह नगर सदा-सदा के लिए जल समाधि ग्रहण कर लेगा।

टिहरी

टिहरी आज जनपद का नाम है। कभी यह टिहरी रियासत थी और पंवार वंशीय राजा इसके अधिपति थे। तब जिला उत्तरकाशी भी इसी में शामिल था। इस टिहरी नगर को पंवार वंश के महाराजा सुदर्शन शाह ने २८ दिसम्बर १८१५ ई० में बसाया था और यहीं अपनी राजधानी को श्रीनगर से स्थानान्तरित कर दिया था। यह नगर पृथ्वी के अक्षांश

३०°-२२'-५४" देशांतर ७८°-३१'-१८" पर समुद्र की सतह से ७७० मीटर की ऊँचाई पर भागीरथी और भिलंगना के संगम पर बसा है। लगभग सवा सौ वर्ष तक पंवार वंश के चार राजाओं सुदर्शन शाह, भवानी शाह, प्रतापशाह और कीर्तिशाह की यह राजधानी रहा।

चारों ओर से पर्वत श्रेणियों से घिरा यह नगर एक कटोरे के आकार जैसा है। यहाँ राजाओं के पुराने महल हैं। चनाखेत नामक स्थान पर प्रसिद्ध घण्टाघर है। इसके निकट ही सुमन पुस्तकालय है। नगर में डाक, तार, टेलीफोन, अस्पताल थाना व बैंक आदि की सभी आधुनिक सुविधाएँ विद्यमान हैं।

टिहरी नगर में अनेक धार्मिक स्थल विद्यमान हैं। संगम के निकट ही श्री बदरीनाथ का मन्दिर है जिसे टिहरी की राजमहीषी महारानी गुलेरिया ने बनवाया था। इसके अलावा यहाँ नर्वदेश्वर महादेव, दक्षिण काली तथा सत्येश्वर महादेव के मन्दिर भी प्रसिद्ध हैं। भागीरथी और भिलंगना के संगम पर प्रसिद्ध गणेश प्रयाग है जिसका वर्णन स्कन्दपुराणान्तर्गत केदार खण्ड के १४७वें अध्याय में विस्तार से मिलता है। मन्दिरों के अतिरिक्त यहाँ गुरुद्वारा, आर्य समाज मन्दिर और मस्जिद भी है।

टिहरी के डूबने के वाद होगा वे अपने पूर्वजों से टिहरी की कहानियाँ सुना करेंगे। जिसका जन्म टिहरी नगर में हुआ हो ओर जिसने अपनी बचपन की स्वर्णिम घड़ियाँ यहाँ के गली कूचों में गुजारी हों ऐसी कोई दादी माँ जब बच्चों को टिहरी की कहानी सुनाएगी तो अवश्य ही उसकी आँखें गीली हो जावेंगी और क्षण भर को वह स्मृति के गहन सागर में डूब जाएगी।

भागीरथी और भिलंगना के संगम पर प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति को यहाँ भारी मेला लगता है। इसी संगम पर सन् १९४८ में शहीद नागेन्द्र सकलानी और मोलू भरदारी का अन्तिम संस्कार किया गया था जो टिहरी रियासत की आजादी की जंग में कीर्ति नगर में सामन्ती गोलियों के शिकार हुए थे।

टिहरी से धरासू (६० कि० मी०)

जैसा पीछे कहा गया है कि गंगोत्री-यमनोत्तरी जाने वाले यात्री बहुधा टिहरी नगर में प्रवेश नहीं करते अपितु वे दोबाटा नामक स्थान से ही उत्तरकाशी मार्ग पर धरासू की ओर मुड़ जाते हैं। टिहरी से धरासू की दूरी ६० किलोमीटर है। यह ६० किलोमीटर की यात्रा अत्यन्त आनन्द-दायक और रोमांचक है। मोटर मार्ग निरापद है। मार्ग के इर्द-गिर्द सुन्दर लहराते खेत और भागीरथी का फेनिल प्रवाह हृदय को गद्‌गद् कर देता है। जिस प्रकार रुद्र प्रयाग से कुण्ड चट्टी तक मन्दाकिनी घाटी की यात्रा में आनन्द आता है उसी प्रकार का आनन्द टिहरी से धरासू तक की यात्रा में आता है। टिहरी से धरासू तक छोटे-छोटे स्टेशन हैं जहाँ बसें अधिक देर नहीं रुकती। इनमें सिराई, भल्डियाना छाम और नगुण मुख्य हैं।

धरासू

समुद्र तल से ३४०० फीट की ऊँचाई पर स्थित धरासू एक अच्छा पड़ाव है। छोटा-सा बाजार है किन्तु दैनिक आवश्यकताओं की सभी सामग्री यहाँ मिल जाती है। निकट ही भागीरथी नदी बहती है। काली कमली की धर्मशाला और वन विभाग का विश्रामगृह आवास की समस्या को हल करते हैं। डाकघर व टेलीफोन की सुविधा है। खाने के अच्छे

ोटल हैं। यहाँ से गंगोत्री-यमनोत्री के मार्ग अलग-अलग हो जाते हैं। मनोत्री धरासू से लगभग ११० किलोमीटर की दूरी पर है। केवल गोत्री जाने वाले यात्री यहाँ से सीधे उत्तर काशी चले जाते हैं। धरासू े उत्तर काशी की दूरी २८ किलोमीटर है।

धरासू से यमनोत्री ११० कि० मी०)

धरासू से कुछ आगे बढ़कर बाएँ ओर मुड़कर यमनोत्री के लिए मार्ग चला गया है। इस मार्ग पर यात्रा करने का आनन्द ही कुछ और है। धीरे-धीरे प्रकृति की मनोरम छटाओं के मध्य वन वीथि पर बस सरकने लगती है। मार्ग घुमावदार और कहीं-कहीं पर संकरा भी है। यह यात्रा काफी रोमांचकारी है। कुछ छोटे-छोटे स्टेशनों को पार करती हुई बस ५,४ कि० मी० की दूरी पर बड़कोट जाकर रुकती है।

बड़कोट

बढ़कोट ऋषिकेश से १८६ किलोमीटर की दूरी पर अच्छा पड़ाव है। सामान्यत: यात्रियों को यहाँ खाने पीने की वस्तुएँ उपलब्ध हो जाती हैं। आवास के लिए वन विश्राम भवन एवं गढ़वाल मण्डल विकास निगम का ३४ शय्याओं का पर्यटक विश्राम भवन है।

सयाना चट्टी

बड़कोट से २६ कि० मीटर सयाना चट्टी है। आवास के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग का निरीक्षण भवन व पर्यटक भवन है। स्थान रमणीक है।

हनुमान चट्टी

सयाना चट्टी से ६ कि० मीटर की दूरी पर हनुमान चट्टी है। यहीं तक मोटर मार्ग की सुविधा अभी तक उपलब्ध है। आवास के लिए गढ़वाल मण्डल विकास निगम का पर्यटक लॉज है। वन विभाग का विश्राम भवन भी यहाँ विद्यमान है। हनुमान गंगा और यमुना का यहाँ पर संगम है। यमनोत्री के लिए यहाँ से पैदल यात्रा आरम्भ होती है।

जानकी चट्टी

हनुमान चट्टी से ६ किलोमीर की दूरी पर जानकी चट्टी है। पर्यटक विश्राम गृह व सार्वजनिक निर्माण विभाग का निरीक्षण भवन है। —ᵉ गर्मजल का स्रोत है। यहाँ से यमनोत्री तीर्थ केवल ७ किलोमीटर जाता है। यात्रीगण वड़े उत्साह के साथ अपने गन्तव्य की ओर व लगते हैं।

खरसाली

इसी मार्ग पर इस घाटी का अन्तिम गाँव खरसाली मिलता है यमनोत्री के पंडे इसी गाँव में रहते हैं। ये पंडे उनियाल जाति के ब्राह्म हैं जो लगभग दो सौ वर्ष पूर्व ओणी गाँव (पौड़ी गढ़वाल) से आकर य वसे थे। ये मोलू राम और पोलूराम के वंशज बताए जाते हैं। खरसाल के निकट इन्हें ३५ रुपए भूमिकर वाली जमीन गूँठ भूमि प्राप्त है। खर साली में सोमेश्वर का प्राचीन ढंग का मन्दिर है। खरसाली से यमनोत्र ६ कि० मी० है।

यमनोत्तरी (१०८०० फीट)

उत्तराखण्ड के चार धामों में से एक धाम यमनोत्री बन्दरपूँछ महा-श्रृंग के पश्चिम की ओर सिन्धुतट से १०८०० फीट की ऊँचाई पर स्थित है। बन्दरपूँछ श्रृंग २०७३१ फीट ऊंचा है जो सदा हिममंडित रहता है। यमनोत्री से कुछ ही दूरी पर पतित पावनी सूर्यसूता यमुना नदी का उद्-गम स्थल है। पर्वतों से श्वेत मोतियों की माला के समान निकलती हुई यमुना १५ किलोमीटर आगे बढ़कर विशाल जलधारा का रूप ग्रहण करती है। यमनोत्तरी के पास नदी की धारा उत्तर वाहिनी है। इसी कारण उसका नाम यमनोत्तरी पड़ा बताया जाता है। कहा जाता है कि यमनोत्तरी में आरम्भ में न कोई मन्दिर था और न मूर्ति ही थी। किन्तु अब वहाँ पर यमुना जी का मन्दिर है जिसके अन्दर गंगा जी की भी मूर्ति है। यहाँ सप्त जल का कुण्ड है जिसका तापमान १९४७ फा० रहता है। इस कुण्ड में स्नान करना पवित्र माना जाता है किन्तु पानी इतना गर्म रहता है कि बिना ठंडा पानी मिलाए स्नान नहीं किया जा सकता। यहाँ

सूर्यकुण्ड व गौरी कुण्ड भी हैं। यात्री चावल व आलू आदि कपड़े में बाँध कर तप्त कुण्ड में डुबो देते हैं जो तनिक देर में पक जाते हैं। यहाँ भोजन बनाने के लिए चूल्हा जलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यमनोत्तरी में आवास के लिए काली कमली की धर्मशाला है। अब गढ़वाल मण्डल विकास निगम यहाँ यथाशीघ्र अच्छे आवास की सुविधा उपलब्ध कराने के लिए सचेष्ट है।

यवनोत्तरी का प्राकृतिक सौन्दर्य वर्णनातीत है। इस सौन्दर्य का आभास प्रत्यक्षदर्शी को ही हो सकता है। फ्रेजर ने अपनी पुस्तक—"जनरल आफ ए टूर इन गढ़वाल हिमालय" में यमनोत्तरी का विस्तृत वर्णन किया है। हिन्दू शास्त्रों में भी यमनोत्तरी की महिमा विस्तार से बखानी है। कूर्म पुराण ने यमनोत्तरी के महात्म्य का इस प्रकार वर्णन किया है—

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभाग यमुना तत्र निम्नगा॥
ये नैव निःसृता गंगा तेनैव यमुना गता।
योजनानाँ सहस्त्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुना तत्र निस्सृता।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः पुनात्या सप्तमं कुलम्॥

—कूर्मपुराण० ब्राह्मी संहिता पृ० ३६।१-३

"भगवान सूर्य की पुत्री यमुना तीनों लोकों में विख्यात हैं। वे भी प्रायः हिमालय के उसी स्थान से उद्‌भूत हुई हैं, जहाँ से गंगा जी निकली हैं। हजारों योजनाओं से भी यमुना का स्मरण कीर्तन पाप नाशक है। यमनोत्तरी में स्नान तथा जलकण का भी पान करने वाला व्यक्ति सभी पापों से मुक्त हो जाता है और इसके सात कुल तक पवित्र हो जाते हैं।

यमनोत्तरी के सम्बन्ध में सामान्य सूचनाएँ

ऊंचाई—३२९१ मीटर

जलवायु—नवम्बर से अप्रैल तक—हिमाच्छादित

—मई से नवम्बर तक—ठण्डा

—जुलाई से सितम्बर तक—वर्षा

कपड़े—अक्टूबर से नवम्बर— भारी ऊनी वस्त्र
—जून से सितम्बर—ऊनी वस्त्र

यात्रा के लिए उत्तम समय—मई से जून और सितम्बर से अक्टूबर

भाषा—गढ़वाली, हिन्दी, अंग्रेजी

दूरी—

हरिद्वार से—२५५ कि० मी०
दिल्ली से—४५५ ,, ,,
श्रीनगर से—१९७ ,, ,,

निकटतम हवाई अड्डा—(जौलीग्रांट) समीप ऋषीकेश

धरासू से गंगोत्तरी

यमनोत्तरी से गंगोत्तरी जाने वाले यात्रियों को लौटकर धरासू आना पड़ता है और तब डुण्डा, उत्तरकाशी होकर गंगोत्तरी के पथ पर अग्रसर होते हैं। पुराने समय में एक पैदल मार्ग सिमली होकर नाकुरी आता था जो धरासू उत्तरकाशी मार्ग पर मिलता था। किन्तु अब यह मार्ग प्रायः प्रयुक्त नहीं होता।

डुण्डा

धरासू-उत्तरकाशी (३१ कि० मी०) मार्ग पर धरासू से १४ कि० मी० की दूरी पर यह एक छोटा कस्बा है। अच्छा बाजार है। विकासखंड का मुख्यालय है। कई अन्य सरकारी कार्यालय हैं। पर्वतीय ऊन उद्योग का प्रशिक्षण केन्द्र भी है। आवास और चिकित्सा की सुविधाएँ यहाँ विद्यमान हैं। डुण्डा से ३ किलोमीटर की दूरी पर नाकुरी है। यहाँ वन विभाग का विश्राम गृह है। स्थान चित्ताकर्षक है।

उत्तरकाशी (३५०० फीट)

सिन्धु तट से साढ़े तीन हजार फीट की ऊंचाई पर और ऋषिकेश से १४८ कि० मी० तथा गंगोत्तरी से १०० कि० मी० की दूरी पर स्थित उत्तरकाशी नगर आज जनपद का मुख्य शहर होने के साथ-साथ मुख्यालय भी है। वर्तमान में गंगोत्तरी के मार्ग में यह सबसे बड़ा विकसित और आधुनिक सुविधाओं से भरपूर नगर है। यह एक ऐतिहासिक और धार्मिक

र है। पुराणों में इसे सौम्य काशी कहा गया है। केदारखण्ड में उत्तर शी के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण मिलता है।

केदारखण्ड के अनुसार यह वारणावत क्षेत्र है। गंगा यहाँ उत्तर हिनी है। यहाँ पर असी और वरुणा नदियों का संगम है। ब्रह्मा, विष्णु र शंकर का यहाँ नित्य निवास है। कई ऋषियों के यहाँ आश्रम । यहाँ देव दानव युद्ध में धातु से बनी हुई शक्ति फेंकी गई थी जो ाज तक त्रिशूल के रूप में विद्यमान है। परशुराम ने यहाँ घोर तप त्या था।[1]

"इसे वाराणसी भी कहते हैं। इसका क्षेत्र निम्न प्रकार से सीमाबद्ध । पूर्व-दक्षिण में गंगाजी का प्रवाह, उत्तर में असी गंगा और पश्चिम में रुण नदी। वरुण से असी के मध्य जो क्षेत्र है वही वाराणसी के नाम से सिद्ध है। इसका पांच कोस का घेरा कहा जाता है। वरुणावत पर्वत की ोद में यह भूमि है। इसके पूर्व की ओर केदारघाट और दक्षिण की ओर णिकर्णिका के पुनीत घाट हैं।"[2]

उत्तरकाशी में प्राचीन-अर्वाचीन अनेक मन्दिर हैं। इनमें सुदर्शन शाह का बनवाया विश्वनाथ जी का मन्दिर काफी प्रसिद्ध है। उसके सम्मुख शक्ति का अति प्राचीन त्रिशूल है जिस पर प्राचीन लिपि में कुछ लिखा है। यह त्रिशूल २० फीट ऊँचा और ३ फीट की गोलाई का है। विश्वनाथ मन्दिर के दक्षिण में शिव दुर्गा व पूर्व में जड़ भरत के मन्दिर हैं। उत्तर-काशी का स्थानीय नाम बाड़ाहाट है। यहाँ परशुराम का भी मन्दिर है। कहते है परशुराम ने यहाँ तप करके समर विजयी फरसा प्राप्त किया था। दत्तात्रेय, अन्नपूर्णा, गोपेश्वर, रुद्रेश्वर और लक्षेश्वर नामक मन्दिर भी यहाँ विद्यमान हैं। जहाँ लक्षेश्वर मन्दिर है कहते हैं कि दुर्योधन ने पांडवों के विनाश के लिए यहीं लाक्षागृह बनाया था। उत्तरकाशी से डेढ़ किलो-मीटर की दूरी पर उजेली नामक बस्ती है जहाँ साधुओं के आश्रम हैं। यहाँ कई विद्वान साधु निवास करते हैं।

---

1. (केदारखंड ९३।१०—१५)
2. गढ़वाल का इतिहास—हरिकृष्ण रतूड़ी

नेहरू पर्वतारोहण संस्थान उत्तरकाशी का एक नवीन आकर्षण
इस संस्थान में युवक-युवतियों को पर्वतारोहण का प्रशिक्षण दिया ज
है। उत्तराखंड में इस प्रकार की यह प्रथम संस्था है।

उत्तरकाशी में प्रतिवर्ष मकर संक्रान्ति से एक सप्ताह का भारी मे
लगता है। जिसमें जनपद में उत्पादित फल, सब्जी व अन्य हस्तशि
द्वारा निर्मित वस्तुओं का प्रदर्शन, सांस्कृतिक कार्यक्रम व कवि सम्मेल
मुख्य आकर्षण के विषय होते हैं।

उत्तरकाशी में भयंकर बाढ़

सन् १९७८ ई० के अगस्त मास के प्रथम सप्ताह में भागीरथी क
क सहायक नदी कनोडिया गाड में भीषण वर्षा के कारण भयंकर बा
आई थी जिससे हरसिल से लेकर उत्तरकाशी तक भारी नुकसान हुआ
था। गंगोत्तरी की ओर जाने वाला मोटर मार्ग अनेक स्थानों पर क्षत-
विक्षत हो गया था। अनेक यात्री स्थान-स्थान पर रुक गए थे। जिन्हें
वायुयान द्वारा सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया गया। कई दिनों तक उत्तर-
काशी का अन्य स्थानों से सम्पर्क टूटा रहा।

उत्तरकाशी से गंगोत्तरी (१०० कि० मी०)

उत्तरकाशी के ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थानों का अवलोकन करने
उपरान्त यात्री पावन तीर्थ सुर सरिता के उद्गम स्थालय गंगोत्तरी की
र बढ़ते हैं। पैदल यात्रा के युग में उत्तरकाशी से गंगोत्तरी तक ५७ मील
दूरी श्रद्धावान यात्रियों को पैदल ही तय करनी होती थी किन्तु आज
टर मार्ग बनने से इस पूरी यात्रा में यातायात की सुविधा उपलब्ध है।
पि साधु-सन्यासी और साधन हीन व्यक्ति आज भी पद यात्रा करते
ाई देते हैं। देखा जाए तो यात्रा का वास्तविक आनन्द पद यात्री ही
ते हैं।

उत्तरकाशी से ५ किलोमीटर की दूरी पर गंगोरी नामक स्थान है।
से बाईं ओर एक मार्ग २४ कि० मी० दूर डोडीताल को चला गया है।
नी लोग ही डोडीताल के दृश्य-दर्शन को जाते हैं। यात्री सीधे
रथी की घाटी में प्रवेश कर अपने गन्तव्य गंगोत्तरी की राह पकड़ते

हैं। यात्री जैसे-जैसे आगे को बढ़ते हैं, प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य उनके दृष्टि पथ में आने लगते हैं। कहीं उत्तुंग पर्वत श्रेणियाँ, कहीं सघन वन प्रान्त की हरीतिमा और कहीं पतित पावनी त्रिपथगा का वक्र प्रवाह देख कर यात्रीगण आत्म विस्मृत हो जाते हैं। जी करता हैं कि प्रकृति के ऐसे मनोमुग्धकारी दृश्य को निर्निमेष जी भरकर देखा जाए किन्तु द्रुतगामी वह निगोड़ी यात्री बस रुक-रुक कर चले तब न। इसी मार्ग पर उत्तरकाशी से १४ कि० मी० की दूरी पर मनेरी नामक स्थान है। जहाँ करोड़ों रुपये की लागत से, मनेरी-भाली विद्युत परियोजना निर्माणाधीन है। मनेरी से मल्ला, भटवाड़ी गंगनाणी, सुक्खी और झाला जैसे प्रमुख पड़ावों को पार कर ८००० फुट की ऊँचाई पर स्थित सुरम्य स्थली हर्सिल पहुँचते हैं। हर्सिल प्राकृतिक सुषमा से भरपूर पड़ाव है। आवास के लिए यहाँ पर धर्मशाला व डाक बंगला है। लक्ष्मी नारायण का मन्दिर है, कई नदियों का संगम है।

इसी मार्ग पर जह्नु ऋषि का तपस्थल है। कथा है कि जब भागीरथ की तपस्या के फलस्वरूप गंगा पृथ्वी पर आकर आगे बढ़ने लगी और उसने मार्ग में जह्नु ऋषि के आश्रम को जल प्लावित कर दिया तो जह्नु ऋषि ने गंगा को पान कर लिया। किन्तु भागीरथ की प्रार्थना पर ऋषि ने अपने दोनों स्रोतों से गंगा जी की धारा को पुत्री रूप में पुनः पृथ्वी पर

विकास निगम का ८ शय्याओं वाला पर्यटक विश्रामगृह भी आवास हे
उपलब्ध है। भैरोंघाटी समुद्रतल से ९५०० फीट की ऊँचाई पर है। यह
का दृश्य भयंकर व रोमांचकारी है, घाटी बहुत संकरी है। भैरोंघाटी
९ किलोमीटर का रास्ता तय करके पुण्यधाम गंगोत्तरी के दर्शन होते हैं
अब गंगोत्तरी तक बस यातायात की सुविधा उपलब्ध है।

गंगोत्तरी (१००२० फीट)

ततस्तुष्टो महातेजाः श्रोत्राभ्यामसृजत् प्रभु।
तस्मान् जन्हुसुता गंगा प्रोच्येत जान्हवीति च॥

(वाल्मीकि रामायण)

हिन्दू जगत की आस्था का परम पावन तीर्थ गंगोत्तरी सिन्धु तट से १००२० फीट[1] की ऊँचाई व पृथ्वी की अक्षांश रेखा ३०°-५८'-१०" तथा देशांतर रेखा ७८°-५४-१०" पर गंगा जी के दक्षिण कूल पर केदारनाथ-हिमालय के पार्श्व में सघन देवदारू वृक्षों के सानिध्य में स्थित है।[2] मन्दिर एक पवित्र शिला पर बना है। किंवदन्ती है कि प्रारम्भिक मन्दिर आद्य शंकराचार्य ने बनवाया था, किन्तु बाद में गोर्खा शासन काल में गोर्खा सरदार अमरसिंह थापा ने नया मन्दिर बनवाया और यह मन्दिर भी जब क्षति ग्रस्त हुआ तो जयपुर नरेश ने वर्तमान मन्दिर बनवाया।[3] सन् १८८२ ई० में एटकिन्सन गंगोत्तरी आया था। उसने इस मन्दिर के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है। उसके अनुसार यह १५ फीट ऊँचा कत्यूरी-शिखर शैली का है। यह मन्दिर मुख्य रूप से गंगा जी का है। मन्दिर के अन्दर प्रधान मूर्ति भी गंगा जी की ही है। वैसे अन्य मूर्तियाँ भी मन्दिर के अन्दर हैं, जिनमें भागीरथ, यमुना, सरस्वती व शंकराचार्य की मूर्ति उल्लेखनीय हैं। गंगा जी की मूर्ति व छत्र स्वर्ण निर्मित है। निकट ही भैरों देवता का भी मन्दिर है। नदी तट पर भागीरथ शिला है जिस पर यात्री पिण्डदान करते हैं। कहते हैं कि राजा भागीरथ ने इस शिला पर

1. रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृष्ठ ७९ (प्रथमसंस्करण)
2. रतूड़ी—गढ़वाल का इतिहास पृष्ठ ९७
3. महीधर शर्मा—तपोभूमि उत्तराखंड पृष्ठ १५१

बैठकर गंगा को पृथ्वी पर अवतरित कराने के लिए कठोर तप किया था। गंगोत्तरी में ब्रह्मकुण्ड, सूर्य कुण्ड व विष्णु कुण्ड आदि अन्य तीर्थ भी हैं। जिनमें स्नान करने का बड़ा महात्म्य है। यहाँ पर गंगा जी उत्तर की ओर मुड़ती हैं। इसीलिए इस स्थान का नाम गंगोत्तरी हुआ।

गंगोत्तरी धाम यात्रियों के लिए मई मास से अक्तूबर मास तक खुला रहता है। मन्दिर अक्षय तृतीया को दर्शनार्थ खुलता है और दीपावली के पश्चात् गोवर्धन पूजा के उपरान्त अन्तिम पूजा होकर मन्दिर के कपाट बन्द कर दिए जाते हैं। शीतकाल में ६ मास के लिए यह स्थान हिमाच्छादित होने से अगम्य हो जाता है। इन दिनों गंगोत्तरी के पंडा इसकी पूजा नीचे मुखवा में करते हैं जो पंडों का शीतकालीन निवास है। ये पंडा सेमवाल जाति के हैं। डा० शिव प्रसाद डबराल के अनुसार गंगोत्तरी तीर्थ की पूजा-अर्चा सेमवालों के पास १८१० ई० के आस-पास आई, इससे पूर्व धराली के बुढ़ेरे किरात गंगोत्तरी के अर्चक थे।[1] गंगोत्तरी के नीचे कुछ दूरी पर गंगा जी बड़ी ऊँचाई से शिवलिंग के ऊपर गिरती हैं। इस स्थान को गौरीकुण्ड कहते हैं।

गंगोत्तरी का प्राकृतिक वैभव

गंगोत्तरी की प्राकृतिक सुषमा वर्णनातीत है। प्रकृति नटी अपनी सम्पूर्ण साज-सज्जा से यहां प्रकट हुई है। प्रकृति की इस क्रीड़ास्थली में शान्ति का अखण्ड साम्राज्य विद्यमान रहता है। प्रकृति प्रेमी यहां के नजारों को देखते नहीं अघाता। धार्मिक निष्ठा वाले भारतीय यात्रियों को ही नहीं अपितु कई विदेशियों को भी इस स्थान ने मन्त्रमुग्ध कर दिया और उनकी लेखनी इस दृश्यावली के वर्णन के लोभ को संवरण न कर सकी। प्रसिद्ध अंग्रेज पर्यटक फ्रेजर के शब्दों में—"वह स्थान जहाँ तक तीर्थ यात्री पहुँचते हैं सचमुच उसी प्रकार की रहस्यपूर्ण पवित्रता से भरा है जिस प्रकार की कही मानी जाती है।" (डॉ डबराल की पुस्तक—"उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन" से उद्धृत।)

---

1. उत्तराखंड यात्रा दर्शन पृष्ठ ६०६

फ्रेजर अपने यात्रा वर्णन में आगे लिखता है—"हम यहां उस मह और अपार हिमालय के मध्य में थे, जो संसार की सबसे ऊँची अ संभवत: सबसे ऊबड़-खाबड़ पर्वत शृङ्खला है। हम यहां उस सुन्दर परो कारिणी नदी तथा कथित स्रोत में थे, जो नदी श्रद्धा और पूजा की व है और साथ ही हिन्दुस्तान की उर्वरता, समृद्धि और वृद्धि की स्रोत है इस पवित्र पर्वतों में हिन्दुओं के जो अनेक तीर्थ हैं, उनमें यह गंगोत्त तीर्थ सबसे अधिक पवित्र है। गम्भीर महानता के साथ ये प्रभाव डाल वाली विशेषताएँ गंगोत्तरी में मनुष्य की भावनाओं को अत्यधिक तीव्र क देती है।" (उत्तराखंड यात्रा दर्शन पृ० २४५ फ)

जब उक्त विचार एक विदेशी के हैं जो हिन्दू धर्म में आस्था नहं रखता तो गंगोत्तरी के सम्बन्ध में हमारे पुराणों के निम्न कथनों में कौ सी अत्युक्ति है ?

गंगोद्भेवं समासाद्य त्रिरात्रोपोषितो नरः।
बापेज्ञयमवाप्नोति ब्रह्म भूतो भवेत् सदा[1] ॥

गंगोद्भेद अर्थात् गंगोत्तरी जहां से गंगाजी अवतरित होती हैं वह तर्पण और उपवास आदि करने से वाजपेय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है और मनुष्य सदा के लिए ब्रह्मीभूत हो जाता।

गोमुख (१२७७० फीट)

गोमुख अर्थात् गंगाजी का उद्गम स्थल। गंगोत्तरी से गोमुख की दूरी गढ़वाल मंडल विकास निगम के एक मानचित्र में २२ किलोमीटर दिखाई गई है, जबकि सर्वे आफ इण्डिया के नक्शे में इसकी दूरी १७ किलोमीटर ही दिखाई गई है। जो भी हो, यह यात्रा काफी कठिन है। अधिकतर यात्री गंगोत्तरी में ही स्नान व पूजा कर लौट जाते हैं, गोमुख कोई विरला यात्री ही जा पाता है। गंगोत्तरी, गंगाजी को पार कर बाएँ तट से होकर गोमुख जाना पड़ता है।

चीड़वासा

मार्ग में गंगोत्तरी से १२ किलोमीटर पर चीड़वासा नामक स्थान है। यहां चीड़ के घने वन हैं, इसी कारण इसका नाम चीड़वासा पड़ा। यहां का

1. महाभारत वन० ८४।६५, पद्म पुराण आदि० स्वर्ग० ३२।२८

। बड़ा रोमांचकारी है। एक ओर चीड़वासा और दूसरी पांगरवासा
गगनचुम्बी हिमाच्छादित शिखर मानो इस देव भूमि के सजग प्रहरी
ड़े हों। सम्भवत: हिमालय के ऐसे ही अचल शृंगों व दृश्यों को देखकर
न्दी के कवि गोपाल शरण सिंह की लेखनी से ये पंक्तियां निःसृत हुई
गी—

खड़े हो प्रहरी सदृश सगर्व- भव्य भारत के तुम निर्भीक।
लिए हो युग-युग के स्मृति चिह्न, विपुल वैभव के अमर प्रतीक॥
विविध तरु लता बेलि सम्पन्न- प्रकृति के तुम हो सुषमागार।
सुगंधित मृगमद से सब काल, मही के हो मनोज्ञ शृंगार॥
पावनी सुर सरिता की धार, तुम्हें करती है सदा पुनीत।
गूंजते है तुममें अविराम, चिरन्तन देव लोक के गीत॥

चीड़वासा मे रात्रि विश्राम के लिए काली कमली वाले की धर्मशाला
है। गोमुख जाने वाला साहसी यात्री यहीं रात का डेरा डालते हैं।

भोजवासा

आवश्यकता नहीं रही। ये अजर और हरीतिमामय वृक्षों से परिपूर्ण और (पक्षियों) के मधुर रव से आकाश पृथ्वी को मुखरित व रहते हैं।"[1]

धरती पर गंगा का प्रथम दर्शन

गोमुख पहुँचने पर गोमुख हिमानी से गंगाजी का प्रकटीकरण दिख देता है। गंगोत्तरी ग्लेसियर द्वारा निर्मित बर्फ की गुफा से पतित पाव गंगा की धारा बड़े वेग से बाहर को प्रवाहित होती है, जो उद्गम स्थ पर १० से १५ फीट तक चौड़ी और ३-४ फीट गहरी है। लोगों का अनुमा है कि गंगाजी गो-मुख आकृति वाले पर्वत से निकलती है इसी कार उद्गम स्थल को गोमुख नाम दिया है।

विद्वानों का यह भी कथन है कि गंगा का वास्तविक उदगम गोमुख भी आगे है।

गीता प्रेस से प्रकाशित कल्याण के तीर्थांक में इस प्रकार लिखा है— श्री बदरीनाथ से आगे नरनारायण पर्वत है। नारायण पर्वत के नीचे (चरण) से ही अलकनन्दा निकलती है और सतपथ होकर बदरीनाथ धाम आती हैं, वहीं नारायण पर्वत के चरण प्रान्त से भागीरथी गंगा का हिम प्रवाह (ग्लेशियर) भी प्रारम्भ होता है। वह प्रवाह अलंघ्य चतुःस्तम्भ (चौखंबे) शिखर से मानव सुमेरु (स्वर्ण पर्वत) के पास होता हुआ शिव-लिंगी शिखर पर आता है। यह शिखर गोमुख से दक्षिण की ओर है। उससे नीचे उतरकर हिम प्रवाह से गोमुख में गंगा की धारा पृथ्वी पर व्यक्त होती है। गोमुख से हिमप्रवाह के दाहिने होकर ऊपर चढ़ा जा सकता है। वहाँ से मानव सुमेरू ६ मील है और आगे चतुः स्तम्भ सम्भवतः २ या ३ मील है।"[2]

---

1. ध्रुवा एव वः पितरो युगे युगे क्षेमका मासःसदसो न युञ्जते।
   अजुर्यासो हरिपायो हरिद्रव द्यावांपृथिवीमशुश्रुवुः॥
   —ऋग्वेद १०-९४-१२

2. कल्याण, तीर्थांक पृष्ठ ५३।

गोमुख का अलौकिक दृश्य

"सूर्योदय से पूर्व की सिन्दूरी आभा में इन पर्वत शिखरों के दर्शन
य हैं। सूर्योदय के साथ ही सूर्य की प्रत्येक किरण उन्हें अपने स्नेह से
ारती हुई मानो उसे विभिन्न वर्णों में चित्रित कर रही हो। रक्त वर्ण,
ल वर्ण तत्पश्चात् स्वर्णिम आभा में लहलहा उठने वाले इन शिखरों को
ा यात्री चित्रलिखित-सा खड़ा हो अपलक उस ओर निहारता रह जाता
। उस समय मानो प्रकृति और मानव एकाकार हो जाते हैं। एक विचित्र
ानन्द की सृष्टि होती है जिसकी अनुभूति वहाँ जाकर ही की जा सकती
। शब्दों की इतनी सामर्थ्य कहाँ जो प्रकृतिनटी के इस मनोहारी रूप को
पने जाल में बांध सके।"[1]

वास्तव में गोमुख के अलौकिक सौन्दर्य का आभास पढ़ने से नहीं
ापितु प्रत्यक्ष दर्शन से ही हो सकता है। वहाँ तो 'गिरा अनयन नयन बिन
ाणी' की स्थिति हो जाती है।

गोमुख से आगे बदरीनाथ को भी एक मार्ग गया है किन्तु अत्यधिक
ाहसी और आधुनिक साजोसामान से लैस यात्री ही इस रास्ते से आगे
बढ़ सकते हैं।

गंगोत्तरी से केदारनाथ

गंगोत्तरी से एक मार्ग सीधे केदारनाथ को चला गया है। जिसकी
पैदल दूरी लगभग १६० किलोमीटर है। पुराने समय में लोग इस मार्ग से
जाते थे। अब प्रायः यह मार्ग केदारनाथ जाने के लिए प्रयुक्त नहीं होता।
रास्ता कठिन है। समय भी अधिक लगता है। रास्ता बूढ़ाकेदार, टोला,
पंवाली त्रियुगी नारायण होकर है। गंगोत्तरी से केदार-बदरी जाने वाले
यात्री वापिस उत्तरकाशी आकर टिहरी-श्रीनगर होकर ही केदार-बदरी
जाते हैं। यही मार्ग सबसे सुविधाजनक है। एक मोटर मार्ग टिहरी से
गडोलिया-घनसाली-चिरबिटिया तिलवाड़ा होकर भी है। यह मार्ग तिल-
वाड़ा में ऋषिकेश-केदारनाथ मार्ग से मिलता है।

---

1. [illegible] उपाध्याय—कालिन्दी भागीरथी की जन्मभूमि में

जब से गंगोत्री जाने के लिए मोटर मार्ग की सुविधा उपलब्ध हुई यात्रियों और पर्यटकों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है। गंगा वि विख्यात नदी है। भारतीय मानस में तो यह बहुत गहराई तक समाई ह है। सच पूछा जाय तो भारतवर्ष की संस्कृति गंगा की संस्कृति है। इस दे का जीवन, जन्म से मृत्यु तक गंगाजी से सम्बन्धित है। हमारे देश में केवल आध्यात्मिक दृष्टि से अपितु भौतिक दृष्टि से भी गंगा जी का ब भारी महत्त्व है। हिन्दुस्तान के एक बहुत बड़े भाग को शस्य श्यामल बनाने का श्रेय इसी नदी को है। इसके तटों पर भारतीय सभ्यता औ संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँची है।

हिन्दुओं के लिए तो यह नदी सर्व पाप नाशिनी है। इसका स्मर मात्र पुण्य दायक है। हिन्दुओं को इस पर अपार श्रद्धा है। गंगा प हिन्दुओं की श्रद्धा के बारे में पं० नेहरू के विचार द्रष्टव्य है—"वे चलते गाते जाते थे और कभी-कभी गंगा माता की जय पुकारते थे। 'गंगा मात की जय !' इनकी यह आवाज नैनी जेल की दीवारों को लांघ कर में कानों में पहुंच रही थी। इन्हें सुनकर मुझे यह ख्याल आ गया कि देख श्रद्धा में कितनी शक्ति है कि वह इन वेशुमार लोगों को नदी के किना खींच लाई है और ये लोग थोड़ी देर के लिए अपनी गरीवी और मुसीवत को भूल गए हैं। और मैं यह सोचने लगा कि देखो सैकड़ों और हजार वर्षों से हर साल यात्री लोग किस तरह त्रिवेणी की यात्रा को आते हैं आदमी पैदा हों या मर जांय, सरकारें और साम्राज्य कुछ दिनों के लिए शान जमा लें और फिर अतीत में गायव हो जायँ लेकिन पुरानी परम्पर बरावर जारी रहती हैं और पुश्त दर पुश्त उसके सामने सिर झुकाती रहती हैं।" (जवाहर लाल नेहरू—विश्व इतिहास की झलक, पृष्ठ २३)

गंगा गगेति यो ब्रूयात् योजना नाँ शतैरपि।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

गंगोत्तरी के सम्बन्ध में सामान्य सूचनाएँ

ऊँचाई—३१४० मीटर

जलवायु—नवम्बर से अप्रैल तक—हिमाच्छादित

—मई से नवम्बर तक—ठण्डा

—जुलाई से सितम्बर तक—वर्षा

कपड़े —अक्टूबर से नवम्बर तक—भारी ऊनी वस्त्र

—जून से सितम्बर—ऊनी वस्त्र

यात्रा के लिए उत्तम समय—मई से जून और सितम्बर से अक्टूबर

भाषा—गढ़वाली, हिन्दी, अंग्रेजी।

दूरी—हरिद्वार से—२८० किलोमीटर

दिल्ली से—४८० किलोमीटर

श्रीनगर (गढ़वाल) से २३७ किलोमीटर

निकटतम हवाई अड्डा—जौलीग्रांट (समीप ऋषिकेश) (अब हरसिल में प्रस्तावित)

कुछ प्रसिद्ध स्थानों की ऊँचाई

स्थान	ऊँचाई
१. बदरीनाथ	१०३५० फीट
२. केदारनाथ	११७५० फीट
३. ऊखीमठ	४५०० फीट
४. त्रियुगी नारायण	६००० फीट
५. रामबाड़ा	९००० फीट
६. गौरी कुण्ड	६५०० फीट
७. मदमहेश्वर	११४७४ फीट
८. तुंगनाथ	१२०७० फीट
९. रुद्रनाथ	११३३० फीट
१०. अनुसूयादेवी	६५०० फीट
११. हनुमान चट्टी	८००० फीट
१२. रूप कुण्ड	१६००० फीट
१३. चन्द्रबदनी	८००० फीट
१४. सुरकंडा देवी	८००० फीट
१५. दूधातोली	१२३०० फीट
१६. हेमकुण्ड (लोकपाल)	१४३०० फीट

१७. गंगोत्तरी	१०३०० फीट
१८. यमनोत्तरी	१०५०० फीट
१९. पौड़ी	५५०० फीट
२०. लैन्सडौन	५६०० फीट
२१. वसुधारा	१२००० फीट
२२. जोशीमठ	६१५० फीट
२३. उत्तरकाशी	३५०० फीट
२४. गोमुख	१२७७० फीट
२५. वैंदिनी	१२००० फीट
२६. वसुधरा प्रपात	१३००० फीट
२७ पांडुकेश्वर	६४५० फीट

२१

प्रमुख स्थानों की परस्पर दूरियाँ

ऋषिकेश से बदरीनाथ मार्ग

स्थान	दूरी कि० मी० में
ऋषिकेश	०
देवप्रयाग	७०
श्रीनगर	१०५
रुद्रप्रयाग	१३९
कर्णप्रयाग	१७०
चमोली	२०२
पीपलकोटी	२१९
जोशीमठ	२५०
बदरीनाथ	२९८

ऋषिकेश से केदारनाथ मार्ग

स्थान	दूरी
ऋषिकेश	०
देवप्रयाग	७०
श्रीनगर	१०५
रुद्रप्रयाग	१३९
गुप्तकाशी	१७८
सोनप्रयाग	२०४
केदारनाथ	२२३

केदारनाथ से बदरीनाथ मार्ग

स्थान	दूरी
केदारनाथ	०
सोनप्रयाग	१६
गुप्तकाशी	४५
रुद्रप्रयाग	८४
कर्णप्रयाग	११५
चमोली	१४७
पीपलकोटी	१६४
जोशीमठ	१६५
बदरीनाथ	२४३

ऋषिकेश से यमनोत्तरी मार्ग

स्थान	दूरी
ऋषिकेश	०
चम्बा	६३
टिहरी	८३
धरासू	१२०
बड़कोट	१७५
हनुमान चट्टी	२०६
यमनोत्तरी	२२२

ऋषिकेश से गंगोत्तरी मार्ग

स्थान	दूरी
ऋषिकेश	०
नरेन्द्र नगर	१६
चम्बा	६३
टिहरी	८३
धरासू	१२०
उत्तरकाशी	१४८
लंका	२३५
गंगोत्तरी	२४८

यमनोत्तरी से गंगोत्तरी मार्ग

स्थान	दूरी
यमनोत्तरी	०
हनुमान चट्टी	१३
बड़कोट	४७
धरासू	१०२
उत्तरकाशी	१२८
लंका	२१५
गंगोत्तरी	२२८

गंगोत्तरी से केदारनाथ मार्ग

स्थान	दूरी
गंगोत्तरी	०
लंका	१३
उत्तरकाशी	१००
धरासू	१२८
टिहरी	१३५
श्रीनगर	२२५
रुद्रप्रयाग	२५९
गुप्तकाशी	२९८
सोनप्रयाग	३२४
केदारनाथ	३४३

कोटद्वार से बदरीनाथ मार्ग

स्थान	दूरी कि० मी
कोटद्वार	०
दुगड्डा	१५
सतपुली	५४
पौड़ी	१०६
श्रीनगर	१३५
रुद्रप्रयाग	१६८
कर्णप्रयाग	१९९
नन्द प्रयाग	२१९
चमोली	२२९
पीपलकोटी	२४६
जोशीमठ	२८६
बदरीनाथ	३३०

अल्मोड़ा से बदरीनाथ मार्ग

(कौसानी-ग्वालदम होकर)

अल्मोड़ा	०
कोसी	१३
होलबाग	१९
सोमेश्वर	४२
कौसानी	५२
गरुड़	६८
ग्वालदम	९७
कर्ण प्रयाग	१६६
नन्द प्रयाग	१८६
चमोली	१९६
पीपलकोटी	२१३
जोशीमठ	२४४
बदरीनाथ	२८८

२२

उत्तराखंड की तीर्थयात्रा और उसका भविष्य

उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा के सम्बन्ध में पिछले पृष्ठों में काफी विस्तार से चर्चा कर दी गई है। विशेषकर इसके प्रसिद्ध तीर्थों—बदरीनाथ और केदारनाथ के सम्बन्ध में। तीर्थ शब्द की व्युत्पत्ति पर भी आरम्भ में काफी प्रकाश डाला गया है। उत्तराखण्ड की यह तीर्थ यात्रा किस तिथि से किसने प्रारम्भ की और उसके मूल में क्या प्रयोजन था, इसका पता लगाना कठिन है। तथापि इतना निश्चित है कि तीर्थ यात्रियों का उत्तरापथ की ओर अभिमुख होना अत्यन्त प्राचीन है और यह परम्परा अद्यावधि सतत् गतिमान है।

हिमालय के प्रति श्रद्धा और पूज्य भावना तो हमारे पूर्वजों के अन्दर वैदिक युग में ही पैदा हो गई थी। कोई आश्चर्य नहीं कि यह भावना पूर्व वैदिक काल में भी रही हो। वेदों में कई स्थानों पर हिमालय की स्तुति का गान किया गया है।

ऋग्वेद कहता है—

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्ररसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(ऋग्—१०।१२१।४)

अर्थात् ये हिमवन्त पर्वत जिसकी महिमा गाते हैं, जिसके महत्त्व की घोषणा पृथ्वी सहित समुद्र कर रहा है और जिसके सामर्थ्य की अभिव्यक्ति ये प्रदिशाएँ बाहुवत होकर कर रही हैं उस देव की हम हविष्य से आराधना करते हैं।

इसी प्रकार अथर्ववेद ने भी हिमालय को महत्त्व दिया है—

> हिमवतः पस्त्रवन्तो सिन्धौसमह संगमः ।
> अपोह मह्य तद् देवीर्दहन हृद्योत भेषजम् ॥
>
> (अथर्व—६।२४।१)

अर्थात् हिमालय से निकलने वाली समुद्र में मिलने वाली नदियाँ हमारे लिए उत्तम औषधि प्रदान करें।

हिमालय की भव्यता ने हमारे पूर्वजों को इस कदर आकर्षित किया कि श्रद्धा से उनका माथा नत हो गया और इस आकर्षण ने उनके मन-मस्तिष्क में इस हिम मंडित सुषमागार के प्रति देवत्व की भावना पैदा कर दी, क्योंकि कोलाहल से दूर एकान्त में निसर्ग की उस वर्णनातीत छटा में वैदिक ऋषियों को ईश्वर के विराट स्वरूप की अनुभूति होने लगी थी। आगे चलकर महाभारत काल में इसकी पुष्टि हो गई। भगवान कृष्ण ने जब अपने विराट स्वरूप में स्थिरता नाम के महान तत्त्व की चर्चा की तो उन्होंने कहा अर्जुन! स्थिर वस्तुओं में मैं हिमालय हूँ।—स्थावराणां हिमालयः (गीता—१०।२५)

हिमालय के अलौकिक सौन्दर्य ने वैदिक मनीषियों को आकर्षित कर लिया था। हिमालय की गोद में तप करने में उन्हें अपार शान्ति मिलने लगी। धीरे-धीरे यहाँ तपोवनों का विकास होने लगा। इधर हिन्दुओं की धार्मिक पद्धति के विकास की ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तो ज्ञात होता है कि वैदिक युगीन यज्ञों की जटिलता और उपनिषदों की दुर्बोध चिन्तन पद्धति आम लोगों के गले नहीं उतरी। अतः आम जनता उस दुर्बोध पद्धति से विरत होने लगी और वेदों-उपनिषदों में वर्णित निराकार ब्रह्म की साकार रूप में कल्पना की जाने लगी। नई उपासना पद्धति का विकास हुआ। आराध्य देव को मूर्तरूप में स्थापित किया गया। तपोवनों और आश्रमों के स्थान पर मन्दिरों और तीर्थों की स्थापना होने लगी। तीर्थ सेवन यज्ञों के समान और तीर्थों को ही फलदायी माना जाने लगा। हिमालय की अलौकिक छटा से परिपूर्ण एकान्त और सुषमायुक्त उसके

हिमधवल शृंगों की गोद में इन मन्दिरों और तीर्थों के लिए जो उपयुक्त स्थान था वह और कहाँ हो सकता था। अतः उत्तराखण्ड के अधिकतर तीर्थ हिमवान की उपत्यकाओं में ही स्थापित हुए। दैवयोग से आर्यावर्त की पवित्रतम नदियों—गंगा-यमुना का उद्गम स्थल भी इसी उत्तराखण्ड में हिमालय की गोद में है। गंगा स्वयं सर्वतीर्थमयी है।

इस प्रकार उत्तराखण्ड में युगों-युगों से तीर्थ यात्रा की परम्परा प्रचलित है। महाभारत और पुराणकाल में तो इसका काफी विकास हुआ। महाभारत वन पर्व में गंगा द्वार (हरिद्वार) से भृगुतुंग (केदारनाथ) तक की यात्रा का जो रोचक वर्णन है वह प्राचीन होने के साथ-साथ कौतुहल-पूर्ण भी है।

यह बात नहीं कि तीर्थ केवल उत्तराखण्ड में ही है। तीर्थ तो सम्पूर्ण भारत में हैं। मन्दिर भी एक से एक भव्य और कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। यात्रियों की संख्या की दृष्टि से भी अनेक तीर्थ स्थल उत्तराखण्ड के तीर्थों से आगे हैं। कारण यह है कि अन्य स्थानों की तीर्थ यात्रा बहुत सुविधा जनक प्राचीन काल से ही रही है। किन्तु उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा अपेक्षाकृत अत्यन्त कष्ट साध्य रही है। घोर जंगलों, ऊबड़ खाबड़ पर्वतीय मार्गों और भयंकर घाटियों व पर्वत शृंगों को पार कर लोग बदरी केदार और गंगोत्तरी यमनोत्तरी की ओर अपार साहस और श्रद्धा से बढ़ते रहे हैं। ऐसी भी सूचनाएँ हैं कि इस दुरूह तीर्थ यात्रा में कई यात्रियों की इह-लीला समाप्त हो गयी किन्तु लोगों की श्रद्धा और विश्वास में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी और उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा का यह सिलसिला गंगा के सतत् प्रभाव के समान आज तक गतिमान है। उत्तराखण्ड के इन तीर्थों की एक विशेषता यह भी है कि भारत के हर कोने का हिन्दू एक बार बदरी केदार के दर्शन अवश्य करना चाहता है। उसने सुन रखा है कि यह देवभूमि है और वास्तव में यह है भी। कोलाहल से दूर इतनी शान्ति और आत्म सन्तुष्टि शायद उसे और जगह न मिल पाए। न इतनी निरापद यात्रा अन्यत्र कहीं हो सकती है।

बीसवीं सदी के तीसरे दशक तक उत्तराखण्ड की सम्पूर्ण यात्रा ॠ
श से पैदल ही होती रही है। चोर उचक्कों की दृष्टि से मार्ग निरापद
न्तु कठिन पहाड़ी मार्गों से अनभ्यस्थ मैदानी तीर्थ यात्रियों को यह य
ष्टकारक अवश्य थी। भगवान बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी
मनोत्री के प्रति दृढ़ आस्था का संबल लेकर वे अपने गंतव्य को
ल्लास से प्राप्त करते रहे हैं वह संस्कारों की दृढ़ता और अटूट श्रद्ध
ी परिणाम कहा जाएगा।

आज उत्तराखण्ड की तीर्थ यात्रा पर्याप्त सुविधा जनक हो गयी
यातायात की अधिकतम सुविधाएँ यात्रियों को उपलब्ध हैं। बदरीनाथ
अब मोटरीय यातायात की सुविधा प्राप्त है। केदारनाथ गंगोत्तरी
यमनोत्तरी की यात्रा के लिए भी अब बहुत कम पैदल चलना पड़त
मार्गों में अब अच्छी आवासीय सुविधाएँ और अच्छी भोजन व्यवस्था
मान है। फलतः यात्रियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।
नाथ में तो अब आधुनिकतम आवासीय सुविधा उपलब्ध है। कोई अ
नहीं कि निकट भविष्य में लोग वायुमार्ग से बदरीनाथ की यात्रा करे
बदरीनाथ की यात्रा के लिए एक दिन पर्याप्त होगा। धरती पर पाँव
की आवश्यकता नहीं रहेगी आकाश मार्ग से ही आना जाना होगा।

देखने में यह आ रहा है कि उत्तराखण्ड के इन तीर्थों की यात्रा ज्यों-ज्यों सरल और सुविधाजनक होती जा रही है त्यों-त्यों हमारे ये पवित्र और शान्त तीर्थ साधारण पर्यटन स्थल बनते जा रहे हैं। आधुनिकीकरण का जो सिलसिला आरम्भ हुआ है इस पर यदि प्रतिबन्ध नहीं लगेगा तो निकट भविष्य में ही ये तीर्थ अपनी प्राचीन शान्ति और सरलता को खोते नजर आएँगे। ५० वर्ष पूर्व इनमें जो आनन्द था उसका ह्रास हो चुका है जैसे-जैसे नगरीय सभ्यता यहाँ प्रवेश करती जा रही यहाँ की पवित्रता नष्ट होती जा रही है। आधुनिक विलासिता की वस्तुएँ जैसे—बिजली, रेडियो, आलीशान बंगले, फिल्मी गाने, नारियों की विलासपूर्ण अर्धनग्न भड़कीली वेशभूषा जिन जिन तीर्थों में पहुँच रही है वहाँ अनाचार भी बेखटके प्रवेश कर रहा है। तप्त कुण्ड में आधुनिक सभ्यता की महिलाओं द्वारा अर्धनग्न अवस्था या पारदर्शी वस्त्रों में स्नान करना भारतीय सभ्यता के विपरीत है। ऋषिकेश जो एक शताब्दी पूर्व तपोवन था आज विलासिता की नगरी बन चुका है। तात्पर्य यह है कि जितनी तीव्रता से हमारे इन तीर्थों में सुविधाएँ बढ़ रही हैं उतनी ही तीव्रता से यहाँ की पवित्रता और शान्ति भाग रही है।

आजकल एक नारा यह दिया जा रहा है कि विदेशी मुद्रा अर्जित करने की दृष्टि से अधिक से अधिक विदेशी पर्यटकों को उत्तराखण्ड की ओर आकर्षित किया जाय इससे यहाँ का आर्थिक विकास होगा। इसके लिए उन्हें जीवन की आधुनिकतम सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाएँ। मसलन यात्रा मार्ग और तीर्थ स्थानों पर अच्छे-अच्छे होटल स्थापित किए जाएँ जिनमें तमाम आधुनिक सुविधाएँ हों। निश्चय ही इन सुविधाओं की ओर उस सभ्यता के लोग आकर्षित होंगे जिसमें सड़कों पर आलिंगन और चुम्बन सामान्य शिष्टाचार समझा जाता है। यह सिलसिला यात्रा मार्ग के मुख्य पड़ावों पर ही नहीं अपितु बदरीनाथ जैसे पवित्र स्थानों पर भी चालू हो जाएगा। अपनी सभ्यता और संस्कृति की कीमत पर अपनी आर्थिक दशा सुधारना कोई बुद्धिमानी नहीं होगी। आर्थिक दशा सुधारने की बात करने वाले लोग सम्भवतः यह नहीं जानते कि जिन चीजों को

तलाश में ये विदेशी हमारे यहाँ आते हैं उनमें से एक हमारी संस्कृति भी है और यह हमारी निधि है। इसकी सुरक्षा हमारा परम धर्म होना चाहिए।

जीवन में सुविधाओं का भी स्थान है किन्तु अपने साँस्कृतिक मूल्य-मानों को बेचकर सुविधाभोगी होना कोई उपलब्धि नहीं है।

इन पंक्तियों के लिखने का यह तात्पर्य नहीं कि हमारे उत्तराखण्ड के ये तीर्थ आधुनिक सुविधाओं से कतई वंचित रखे जाएँ। सामान्य सुविधाएँ अवश्य हों। जैसे—यात्रियों को किसी भी पड़ाव पर खुले आसमान के नीचे न सोना पड़े। खाद्य पदार्थों की अनुपलब्धता के कारण भूखा न रहना पड़े। बीमार होने पर दवाई मिल जाए आदि-आदि। वैसे हिन्दू संस्कृति के प्राचीन विश्वासों और मान्यताओं के अनुसार तीर्थ यात्रा में जितना ज्यादा कष्ट सहन किया जाए उतना ही अधिक उसका फल होगा। शास्त्रों मे यह भी लिखा है कि तीर्थ यात्रा यान से नहीं करनी चाहिए। यदि यान का प्रयोग किया भी जाए तो तीर्थ पर दृष्टि लगने से पूर्व यान से उतर जाना चाहिए और यह सच है कि जिस वस्तु को प्राप्त करने में कठिनाई होती है उसका महत्त्व भी अधिक होता है। जिस तीर्थ तक पहुँचने में अधिक कठिनाई होगी वहाँ पहुँचकर अधिक आत्म तुष्टि होती है। जो लोग हरिद्वार में ही रहते हैं उनके लिए हर की पैड़ी का स्नान कोई महत्त्व नहीं रखता। किन्तु जो दूर से आकर स्नान करता है उसको अपार आत्म सन्तुष्टि होती है।

आज बदरीनाथ का यात्री ऋषिकेश से एक डिब्बे में बन्द होकर सीधे बदरीनाथ पहुँचता है। उसका हुलान सामान जैसा होता है। उसको यह मालूम नहीं कि रास्ते में कौन-कौन-से तीर्थ और संगम हैं। इस क्षेत्र की कैसी संस्कृति है, क्या वेशभूषा है, कैसी भाषा है और क्या खान-पान है। उसे जो सभ्यता बम्बई, दिल्ली और ऋषिकेश में दिखाई देती है वही बदरीनाथ में भी मिलती है। ऋषिकेश से जब वह बस पर सवार होता है तो वह इतना बेसुध हो जाता है कि उसे यह भी अवसर नहीं मिलता कि वह सह यात्रियों का परिचय ही पा सके। पुराने समय में जब यात्री ऋषिकेश से पैदल यात्रा करते थे तो समूह में चलते थे। विभिन्न प्रान्तों के लोगों

से मित्रता हो जाती थी। कई दिनों तक एक साथ चलना, ...और सोना होता था। अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों की बोली भाषा रहन-सहन और खान पान के बारे में जानकारी होती थी। मार्ग में स्थानीय लोगों से भी परिचय होता था। उनकी संस्कृति और सभ्यता आदि का भी ज्ञान होता था। उनके व्यवहार का भी पता चलता था। विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक दृश्यों का यात्री आनन्द लेते थे। छोटे से छोटे तीर्थ का सेवन किया जाता था। अत: सभी छोटे बड़े तीर्थ आवाद थे जो आज उजाड पड़े हैं। पैदल यात्रा से अनेक लोगों की रोजी-रोटी भी चलती थी। यात्रा मार्ग पर कुछ लोग दुकानदारी करते थे। कुछ मजदूरी करते थे। कुछ यात्रियों के साथ मार्ग दर्शक का काम करते थे। समाज में एक प्रकार का आर्थिक सामंजस्य था।

वर्तमान अवस्था में छोटे लोगों को यात्रा का कोई लाभ नहीं है। बड़े बड़े होटल वालों और गाड़ी मालिकों को ही लाभ होता है।

मैं पुन: अपनी शंका को दोहराता हूँ कि भविष्य की उत्तराखण्ड की यात्रा अपने मूल स्वरूप की पहचान बनाए रख सकेगी ? यदि इन तीर्थों के महत्त्व को अक्षुण्ण बनाए रखना है तो इनमें विलासिता पूर्ण सुविधाओं पर पावन्दी लगानी पड़ेगी। केदारनाथ के मार्ग पर गौरीकुण्ड से आगे मोटर सडक नही वननी चाहिए। यात्रा का वास्तविक आनन्द पैदल चलने में ही है और तीर्थ की पवित्रता भी बनी रहती है। जहाँ कहीं भी मोटर पहुँचती है आधुनिक बुराइयों को वहाँ पहुँचने में काफी आसानी हो जाती है। वहुत पहले डा० राजेन्द्र प्रसाद ने अपनी वदरीनाथ यात्रा के समय जोशीमठ में अपने स्वागत के उत्तर में लोगों से कहा था कि यदि वदरीनाथ की पवित्रता को वनाए रखना है तो जोशीमठ से आगे मोटर सड़क नहीं वननी चाहिए।

आधुनिकता और उदारवादिता के नाम पर परम्परागत शाश्वत मर्यादाओं का हनन करना अपनी संस्कृति से खिलवाड़ करना होगा। तीर्थों का सेवन तीर्थ समझकर ही करना चाहिए। पर्यटक भी तीर्थो में अवश्य जाएँ किन्तु तीर्थों की मर्यादा की रक्षा की दृष्टि से अपनी इच्छाओं को नियन्त्रण

में रखें। जो लोग तीर्थों में आस्था नहीं रखते या जिनकी उपासना पद्धति अलग है उन पर किसी प्रकार की पाबन्दी तो नहीं लगनी चाहिए किन्तु उनके किसी क्रिया कलाप से आस्थावान यात्रियों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचनी चाहिए। जो स्थान मात्र सैरगाह हैं, वहाँ पर्यटकों को हर सम्भव सुविधा दी जाए। जैसे फूलों की घाटी, वेदिनी बुग्याल, औली बुग्याल, नन्दा देवी पशुविहार, रूपकुण्ड, कार्बेट नेशनल पार्क, गौनाताल, देवरिया ताल, सहस्रताल, डोडीताल आदि। किन्तु पर्यटकों को आगाह किया जाए कि इन पर्यटक स्थलों की सुन्दरता को विकृत न करें। फूलों, पेड़-पौधों व पशु-पक्षियों को देखकर आनन्द लूटें। उन्हें छेड़ें नहीं। इन स्थानों पर कूड़ा करकट न छोड़ें। जैसे—फलों के छिलके, खाद्य पदार्थों के खाली पैकेट, डिब्बे, खाली माचिस, सिगरेट के पैकेट आदि। पवित्र नदियों व सरोवरों के किनारे मल-मूत्र त्याग न किया जाय। यह केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु पर्यावरण की दृष्टि से भी आवश्यक है।

●●

२३

उत्तराखंड–यात्रा की तैयारी

पिछले पृष्ठों में उत्तराखण्ड के चारों धामों—यमनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ के साथ अन्य अनेक छोटे-बड़े तीर्थों की स्थिति, इतिहास और धार्मिक महत्त्व की जानकारी दी गई। यहाँ उत्तराखण्ड की इस यात्रा की तैयारी पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक होगा। ताकि यात्रा काल में यात्रियों को किसी प्रकार की कठिनाई जानकारी न होने के कारण न हो।

यात्रा का समय

उत्तराखण्ड की यात्रा बारहों मास नहीं हो सकती। यह यात्रा मई से प्रारम्भ होकर नवम्बर के मध्य तक चलती है। शीतकाल के छह मास ये तीर्थ हिमाच्छादित होकर अगम्य हो जाते हैं। यमनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ और बदरीनाथ धाम के पट खुलने का मुहूर्त देखा जाता है। आमतौर पर यह अप्रैल के अन्तिम सप्ताह या मई के प्रथम सप्ताह में निकलता है। कैसी भी स्थिति हो, मई के दूसरे सप्ताह तक सभी तीर्थों के कपाट खुल जाते हैं। पट खुलने की तिथि की प्रचार साधनों के माध्यम से पूर्व घोषणा हो जाती है। इन तीर्थों के पुरोहित भी अपने यजमानों तक यह सन्देश पहुँचाते हैं। पैदल यात्री अप्रैल मास से ही उत्तराखण्ड के पथ पर बढ़ने लगते हैं। वाहनों के द्वारा यात्रा करने वाले यात्री पट खुलने के २-३ दिन पूर्व ही घर से चलते हैं। अधिक दूर के यात्रियों को कुछ और पहले चलना पड़ता है। जो यात्री पट खुलने के प्रथम दिन दर्शन करना चाहते वे एक दिन पूर्व अपने गन्तव्य पर पहुँच जाते हैं। विशेषकर बदरीनाथ की

प्रथम ज्योति के दर्शनों के लिए धार्मिक आस्था वाले यात्री बड़े लालायित रहते हैं।

उत्तराखण्ड की यात्रा का सबसे अच्छा समय मई-जून रहता है। जुलाई में वर्षा आरम्भ हो जाती है। सितम्बर-अक्टूबर में भी अच्छा समय है। विशेषकर पर्यटकों के लिए। फूलों की घाटी जाने वाले सैलानियों के लिए सबसे अच्छा समय अगस्त मास होता है। इस समय यह घाटी पूर्ण यौवन पर होती है। हरिद्वार और ऋषिकेश में वाहनों की व्यवस्था और यात्रा मार्ग की हर जानकारी हो जाती है। ऋषिकेश से १८ किलोमीटर दूर जौली ग्रांट में अब हवाई जहाज भी उतरने लगे हैं।

भाषा

उत्तराखण्ड याने टिहरी, उत्तरकाशी, पौड़ी और चमोली के लोगों की भाषा गढ़वाली है। किन्तु यहाँ के लोग हिन्दी अच्छी तरह समझ और बोल लेते हैं। होटलों, बसों और तीर्थ स्थानों पर यात्रियों से लोग हिन्दी भाषा में बात-चीत करते हैं। दक्षिणी भारत के उन लोगों को भाषा की कठिनाई होती है जो न हिन्दी जानते हैं और न अंग्रेजी। यहाँ अंग्रेजी जानने वाले लोग भी मिल जाते हैं। अतः विदेशियों को भी यहाँ अधिक कठिनाई भाषा के सम्बन्ध में नहीं होती।

वस्त्र

उत्तराखण्ड के तीर्थों में मई-जून में भी ठण्ड रहती है। अतः इन महीनों में यात्रा करने वाले यात्रियों को भी सूती वस्त्रों के साथ-साथ पर्याप्त ऊनी वस्त्र रख लेने चाहिए। मफलर और ऊनी मोजे साथ में रखने आवश्यक हैं। सितम्बर से नवम्बर तक की यात्रा में तो भारी ऊनी वस्त्रों की आवश्यकता होती है। अपने पास बिस्तरे की पूरी व्यवस्था होनी चाहिए। रजाई गद्दे के बजाय कम्बल रखना उचित होगा। अन्य वस्त्र यात्री अपनी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार रख सकते हैं।

भोजन सामग्री

उत्तराखण्ड के चारों धामों की यात्रा में अब हर मुख्य पड़ाव पर खाने के होटलों की व्यवस्था है। चाय भी सर्वत्र सुलभ है। फिर भी यात्रियों को बिस्कुट के पैकेट व कुछ सूखे मेवे अपने साथ रख लेने चाहिए।

जो यात्री होटलों का खाना नहीं खाते उन्हें अपने साथ आवश्यक बर्तन, स्टोव और मिट्टी का तेल रख लेना चाहिए। आटा, दाल, चावल व सब्जियाँ सभी जगह मिल जाती हैं। यात्रा मार्ग पर यात्रियों के लिए सस्ते राशन व मिट्टी के तेल की दुकानें खुली रहती हैं। यात्रा मार्ग पर अब जलाने की लकड़ी कठिनाई से मिलती है। फल और दूध यात्रा मार्ग पर उपलब्ध हो जाते हैं।

पैदल यात्रियों को अपने साथ आवश्यक खाद्य सामग्री उसी दशा में रखनी चाहिए जब होटलों के खाने का बिल्कुल परहेज हो। वैसे पैदल यात्री भी अब मोटर मार्ग पर ही चलते हैं और हर ५-१० किलोमीटर की दूरी पर दुकानें मिल जाती हैं।

दवाईयाँ

यात्रा में कुछ दवाइयाँ अपने साथ अवश्य रख लेनी चाहिए। जैसे उल्टी रोकने की गोलियाँ, सिरदर्द दूर करने की गोलियाँ—ऐस्प्रो नावलजीन, सारीडोन आदि। अजवाइन और काला नमक भी साथ में रख लेने चाहिए।

अन्य आवश्यक सामग्री

टार्च, मोमबत्ती, चाकू, सूई धागा, माचिस, लालटेन, थर्मस, गिलास लोटा और खाना खाने के साधारण बर्तनो के अतिरिक्त कैमरा और फिल्म अवश्य रखनी चाहिए क्योंकि उत्तराखण्ड की यात्रा में एक से एक दर्शनीय स्थल, मन्दिर, संगम और प्राकृतिक दृश्य मिलते हैं। सामर्थ्यवान यात्रियों को दूरबीन भी रखनी चाहिए। यात्रा गाइड और उत्तराखण्ड का एक नक्शा हरिद्वार या ऋषिकेश से ही अपने पास रख लेना चाहिए। लेखकों और पत्रकारों को नोट बुक, पेन या पेंसिल साथ में रखनी चाहिए।

वर्षा ऋतु में यात्रा करने वाले यात्रियों को बरसाती या छाता साथ में रख लेना चाहिए। हेमकुण्ड लोकपाल और फूलों की घाटी जैसी पैदल त्रा के लिए बल्लम जैसी लाठी पैदल चलने व चढ़ाई चढ़ने में बड़ी मदद ती है। पैदल चलने वाले यात्रियों को कपड़े के हल्के जूते आरामदायक ते हैं।

अन्य सावधानियाँ

बसों से यात्रा करने वाले यात्रियों को अपनी बस का नम्बर और बस संचालित करने वाली कम्पनी का नाम नोट कर लेना चाहिए या मौखिक याद रखना चाहिए ताकि यदि कोई यात्री छूट जाए तो उसके सामान आदि का पता लगाने में कोई असुविधा न हो। किसी स्टेशन पर जब कोई यात्री टट्टी, पेशाब या किसी अन्य कारण से इधर-उधर जाए तो ड्राइवर या कण्डक्टर को अवश्य सूचित कर दे। कण्डक्टर से यह भी पूछ लेना चाहिए कि इस स्थान पर बस कितनी देर रुकेगी। अपने सह-यात्रियों को भी बस से अपनी अनुपस्थिति के सम्बन्ध में बतलाकर जाना चाहिए। पर्वतीय मोटर मार्ग बड़े संकरे होते हैं। अतः यात्रियों को चलती बस में सिर या कोई अंग बाहर नहीं निकालना चाहिए। पहाड़ से या विपरीत से आने वाले वाहन से टकराने का भय रहता है।

यात्रा काल में किसी भी अनजान व्यक्ति को दी हुई वस्तु नहीं खानी —हिए।

पर्यटन-खण्ड

ाराखण्ड के अनेक सौन्दर्य स्थलों का विवरण यात्रा खण्ड में दिया
है। इस खण्ड में पर्यटन का अर्थ, उद्‌भव और उसके विकास पर
प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही उन महत्त्वपूर्ण पर्यटक
ा विवरण दिया गया है जो यात्रा मार्ग से हटकर हैं और जिनका
ात्रा खण्ड में नहीं हुआ है।

—लेखक

पर्यटन का अर्थ और उद्भव

पर्यटन का अर्थ भ्रमण करना घूमना या सैर सपाटा करना है। किन्तु पर्यटन के मायने निरर्थक घूमना नहीं है, पर्यटन सोद्देश्य होता है। अंग्रेजी भाषा में इसे 'टूरिज्म' से अभिहित किया जाता है।

पर्यटन की उद्भावना मानव की जिज्ञासु प्रवृत्ति का परिणाम है। मानव ने सर्वप्रथम जब आंखें खोलीं और अपनी चहुँ ओर निहारा तो उसके दृष्टिपथ में जितना क्षेत्र आया उससे भी परे देखने की लालसा उसके मन में उत्पन्न हुई। मनुष्य की यही जिज्ञासु प्रकृति उसे नये-नये स्थानों के अवलोकन के लिए बाध्य करती रही, कभी वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी इधर-उधर घूमा, किन्तु मुख्य रूप से ज्ञान की पिपासा ने मनुष्य को नये-नये स्थानों के अवलोकन व खोज के लिए प्रेरित किया। चीनी यात्री फाह्यान, ह्वेनसांग और अफ्रीकी यात्री इब्नबतूता की भारत यात्रा इसी जिज्ञासा का परिणाम थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि पर्यटन का इतिहास काफी पुराना है। और वह सार्वभौमिक है।

प्राचीनकाल में कई पर्यटकों ने अपने देश से बाहर दूसरे देशों की यात्रा करके अपने यात्रा वृतान्त लिखे हैं, जिससे एक देश वालों को दूसरे देश की संस्कृति, भाषा-साहित्य, रहन-सहन, खान पान, सामाजिक व्यवस्था और शासन प्रणाली की जानकारी प्राप्त हुई। इन्हीं पर्यटकों के यह यात्रा वृतान्त इतिहास का अंग बन गये। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यटन सत्य का उदघाटन भी करता है।

कि पर्यटक (टूरिस्ट, वह है जो पंचतारा (फाइवस्टार) होटल में टिकता है।

भारत में पर्यटन का चलन प्राचीन काल से ही विद्यमान रहा है। किन्तु तब इसका स्वरूप आज जैसा नहीं था। धर्म प्रधान देश होने के कारण हमारे यहाँ हर व्यवस्था में धर्म का पुट होना स्वाभाविक था। अतः पर्यटन भी हमारे यहाँ धार्मिक यात्राओं और तीर्थाटन के रूप में विकसित हुआ है। हम इसे धार्मिक पर्यटन कह सकते हैं। हमारी प्राचीन मान्यताओं के अनुसार तीर्थ सेवन आत्म शान्ति और भव बाधाओं से मुक्ति का एक साधन माना गया है। पुराण काल और बौद्धकाल में धार्मिक यात्राओं का पर्याप्त विकास हुआ है। राजा महाराजाओं द्वारा भी धार्मिक यात्राओं का आयोजन किया जाता था। अशोक की धर्म यात्रायें प्रसिद्ध हैं। गुप्तकाल में हिन्दू धर्म को प्रबल समर्थन मिलने से मन्दिरों, तीर्थों और धार्मिक यात्राओं का काफी महत्त्व बढ़ा।

ब्रिटिश शासन काल में भारत में पर्यटन को काफी बढ़ावा मिला, अंग्रेजों ने पर्यटन की दृष्टि से कई स्थलों को विकसित किया है। जिनमें कश्मीर, श्रीनगर, मसूरी, नैनीताल, शिमला व दार्जिलिंग मुख्य हैं। इस युग में यातायात और दूरसंचार की भी सुविधाएँ उपलब्ध होने लगीं। इस कारण भी पर्यटन का चलन बढ़ने लगा। अब तीर्थ यात्री और पर्यटक की परिभाषा भी बदलने लगी। जिसका अन्तर आज स्पष्ट दिखाई देने लगा है। आज का पर्यटक पंचतारा होटलों की सुविधा चाहता है। वह आरामदेह डीलक्स बसों व कारों से सफर करना चाहता है। उसे सुरा और सुन्दरी के सेवन से भी कोई परहेज नहीं। वह खुलेआम आलिंगन और चुम्बन की पश्चिमी संस्कृति से आम लोगों को परिचित कराना चाहता है जबकि तीर्थयात्री एकमुखी होता है। वह अपने आराध्य के दर्शन व तीर्थस्नान को अपना मुख्य धर्म मानकर लौट जाता है। वह तीर्थ स्थान तक पहुँचने में कष्टों को भी खुशी से झेलता है। पर्यटक भी तीर्थ-स्थानों, मंदिरों, मस्जिदों व गुरुद्वारों तक जाते हैं किन्तु वे उनके बाह्य सौंदर्य व प्राकृतिक छटा तक ही अपने को सीमित रखते हैं। बहुत कम ऐसे लोग मिलेंगे जो पर्यटक और तीर्थ यात्री दोनों रूपों में अपने आप को उपस्थित रखते हैं।

पर्यटन के नये आयाम

विश्व के देशों में राष्ट्रीय समृद्धि के लिए पर्यटन को आज काफी महत्त्व दिया जा रहा है। अब इसे एक उद्योग के रूप में भी स्वीकार कर लिया गया है और विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक प्रमुख साधन भी मान लिया गया है। नवीन आंकड़ों के अनुसार पर्यटन उद्योग का विश्व व्यापार में 6 प्रतिशत योगदान है। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में तेल के बाद इसी उद्योग का सर्वाधिक महत्त्व है भारत में भी यह छठा बड़ा निर्यात उद्योग है। आंकड़े बताते हैं कि औसतन 10 लाख विदेशी पर्यटक प्रति वर्ष भारत में आते हैं जिससे हमारा देश अरबों रुपये विदेशी मुद्रा के रूप में प्रति वर्ष अर्जित कर रहा है। भारत जैसे विकासशील देश के लिए तो यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन विदेशी पर्यटकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हो रही है। यह हमारे देश के लिए शुभ संकेत है।

भारत सरकार ने पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए एक पर्यटन मंत्रालय का अलग से गठन कर लिया है। देश के प्रमुख शहरों में पर्यटकों को अच्छी आवासीय सुविधा मुहैय्या करने के लिए अच्छे होटलों का निर्माण किया जा रहा है। होटल निर्माण में सरकार पर्याप्त ऋण की सुविधा भी उपलब्ध करा रही है। सारे देश में पर्यटक स्थलों को विकसित किया जा रहा है। ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का जीर्णोद्धार एवं सौन्दर्यीकरण किया जा रहा है। पर्यटन विभाग संचालित भ्रमणों का आयोजन कर रहा है जिससे पर्यटकों को पर्याप्त सुविधा मिलती है। इससे उनका समय, श्रम और पैसा बचता है। संचालित भ्रमणों में वाहन और गाइड की सुविधा उपलब्ध रहती है।

पर्यटन राष्ट्रीय एकता की धुरी

पर्यटन जहां एक ओर राष्ट्रीय समृद्धि का पर्याय बनता जा रहा है वहां यह राष्ट्रीय एकता की भी धुरी है, भारत विभिन्न बोली भाषाओं, संस्कृतियों, रस्म रिवाजों और उपासना पद्धतियों वाला एक विशाल देश है। पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक इस देश में विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायों के लोग निवास करते हैं। इसकी विविधता को देखने के लिए

एक क्षेत्र के लोग दूसरे क्षेत्र में जाते हैं भारत की चारों दिशाओं में अने
मठ-मंदिर, सरिता-संगम, गिरि-गह्वर, शैल-शिखर, पशु-पक्षी, जल प्रपा
एवं अनेक कलात्मक ऐतिहासिक भवन विद्यमान हैं। इनको देखने के लि
पर्यटक एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं। हमारा देश एक धर्मप्रधा
देश है। इसके चारों कोनों में चार धाम स्थित हैं। जिनकी यात्रा करन
हमारे यहाँ महत्त्वपूर्ण माना जाता है। विभिन्न संस्कृतियों में पलने प
भी लोग सारे भारत को अपना देश मानते हैं। दक्षिण के लोग बदरीना
को अपना धाम मानकर उसके दर्शनों के लिए आते हैं। इसी प्रकार उत्त
के लोग रामेश्वरम् को अपना तीर्थ समझ कर उसकी यात्रा करते हैं। इस
प्रकार उत्तर के लोग सागर के दर्शन के लिए दक्षिण में और दक्षिण के
लोग हिमालय के दर्शन के लिए उत्तर की ओर आते हैं और एक दूसरे क्षेत्र
के लोगों से आत्मीयता स्थापित करते हैं।

सौन्दर्य का आगार उत्तराखंड

'उत्तराखंड' की राजनैतिक परिभाषा और परिधि जो भी हो, मेरा आशय उत्तराखंड से यहाँ केवल गढ़वाल मंडल के 5 जिलों—उत्तरकाशी, टेहरी, चमोली, पौड़ी और देहरादून से है। इस उत्तराखंड के चार धाम गंगोत्तरी, यमनोत्तरी, बदरीनाथ और केदारनाथ जहाँ युग-युगों से असंख्य भारतीयों की आस्था के केन्द्र बने हुए हैं, वहाँ यहाँ के हिम धवल उत्तुंग शैल शिखरों, दूधिया ग्लेशियरों, नन्दन कानन जैसी फूल घाटियों, पशु विहारों, कालीन जैसे बुग्यालों, सरोवरों, जल प्रपातों, फेनिल नदियों, सघन जंगलों एवं सरिता-संगमों ने भी स्वदेशी और विदेशी पर्यटकों को आकर्षित किया है।

प्रकृति ने अपना जो सौंदर्य यहाँ बिखेरा है वह अन्यत्र दुर्लभ है। सूत्र रूप में उत्तराखंड को सौन्दर्य-स्थलों का संग्रहालय कहें तो अत्युक्ति न होगी। ऐसा नहीं कि हम भारतवासी ही उत्तराखंड हिमालय के प्रशंसक हैं। अनेक विदेशी प्रकृति प्रेमी पर्यटकों एवं पर्वतारोहियों को इसके सौन्दर्य ने आकर्षित कर आत्म विभोर किया है। उन्होंने गढ़वाल हिमालय स्वानुभूत का वर्णन भी लिपिबद्ध किया है।

एच० डब्ल्यू० तिलमैन की—"नंदादेवी का सफल आरोहण" नामक पुस्तक में प्रसिद्ध पर्वतारोही डॉ० टी० जी० लौंग स्टाफ लिखते हैं—"हिम प्रदेशों की छः यात्रायें करने के पश्चात मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि गढ़वाल एशिया का सुन्दरतम प्रदेश है। न तो करा-कोरम की बीहड़ प्राकृतिक छटा, न एवरेस्ट पर्वत की एकाकी विशालता, न हिन्दूकुश की नाजुक काकेशियन सुषमा और न ही हिमालय का दूसरा कोई भू-भाग गढ़वाल की समता कर सकता है। यहाँ के पर्वत शृंग, सुन्दर घाटियां, वन तथा बुग्याल, घास के मैदान, पक्षी एवं वन जन्तु तितलियां एवं पुष्प, इन सबकी सम्मिलित छटा एक ऐसे आनंद की अभि-सृष्टि करती है जो अन्यत्र दुर्लभ है।"

प्रसिद्ध पर्यटक कैप्टेन शिनर ने विश्व भ्रमण के उपरान्त अपने संस्मरणों में लिखा है—

"हिमालय के आंचल में स्थित गढ़वाल-बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्तरी, यमनोत्तरी आदि रमणीय तीर्थों और भ्यूंडार की विश्व प्रसिद्ध फूलघाटी के लिए विश्व विख्यात है। परन्तु मैंने गढ़वाल यात्रा के बाद यह अनुभव किया है कि गढ़वाल सचमुच भू-स्वर्ग है। मैंने यूरोप की रमणीय सौन्दर्य स्थलियों से भी अधिक सौन्दर्य स्थल गढ़वाल में पाये हैं।"

प्रसिद्ध रूसी विद्वान, लेखक, पर्यटक चित्रकार, पुरातत्त्वविद एवं अन्वेषक निकोलस रोरिक ने अनेक वर्षों तक हिमालय को निकट से देखा और उसके अप्रतिम सौन्दर्य को तूलिकाबद्ध एवं शब्दबद्ध कर उसके साथ तादात्म्य स्थापित किया है। हिमालय के सौन्दर्य से अभिभूत होकर रोरिक लिखते हैं—

"हिमालय के उत्तुंग शिखरों के आरोहण अभियान में एक अव्यक्त और अनिर्वचनीय आनंद निहित है। अन्तरात्मा की कोई शक्ति हमें निरन्तर इस उच्चता की ओर बढ़ने के लिए पुकारती रहती है। इन साहसिक यात्राओं का प्रारम्भ कब हुआ, यदि कोई यह पता लगाने की कोशिश करे तो अद्भुत परिणाम सामने आयेंगे। इन शिखरों के आकर्षण की पृष्ठ भूमि का परिज्ञान यह सिद्ध कर देगा कि हिमालय अप्रतिम क्यों

है। अज्ञात अतीत काल से असंख्य विभूतियों का सम्बन्ध इन पर्वतीय अंचलों से जुड़ा हुआ है।"

हिमालय भ्रमण पर आई हुई एक यूरोपीय महिला के विचार—"आप भारतवासी धन्य हैं, जो सौन्दर्य के आगार इस हिमालय के नित्य दर्शन करते हैं। मैंने स्कूल में इसकी सुषमा का वर्णन पढ़ा था और तभी प्रतिज्ञा की थी कि एक दिन इसके दर्शन करूँगी उस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए मैं अभी तक अविवाहित रही और पिता की संपत्ति से जो कुछ मिला उसी को लेकर इस रम्य स्थली के दर्शन करने आई हूँ।"

सौन्दर्य के आगार हिमालय के सम्बन्ध में भारत रत्न पण्डित जवाहर लाल नेहरू के विचार—"हिमालय केवल हमारे समीप ही नहीं है वल्कि हमारा प्राण बल्लभ भी है, क्योंकि हिमालय सदा ही हमारे इतिहास, हमारी परम्परा, हमारी विचारधारा, हमारी काव्य धारा, हमारी उपासना और हमारी भक्ति भावना का प्रमुख अंग रहा है। पुराणों के अनुसार ये चोटियां हमारे देवी देवताओं के पुण्य धाम हैं।

आगे के पृष्ठों में उत्तराखंड के महत्त्वपूर्ण पर्यटक स्थलों का जिलेवार संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

पर्यटकों का स्वर्ग मसूरी[1]

पर्वतों की रानी मसूरी उत्तर भारत की प्रमुख पर्यटक स्थली के रूप में भारत विश्रुत है। इसको यह प्रतिष्ठा इसके नैसर्गिक मोहक सौन्दर्य के कारण मिली है। इसकी वानस्पतिक सम्पदा, वन्य जन्तु जल प्रपात, ऊँची नीची पहाड़ियाँ, नागिन सी बल खाती सड़कें, इसके चहुँ ओर के नयनाभिराम दृश्य और ६४.२५ वर्ग किलो मीटर भू-खण्ड पर दूर-दूर तक वृक्षों की झुरमुट में छिटके हुए इसके रंग बिरंगे भवन मसूरी में एक परी लोक की कल्पना को साकार करते हैं। इसके इस आकर्षक रूप के कारण ही मसूरी आज असंख्य प्रकृति प्रेमियों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

---

1. पर्यटकीय मानचित्र पर मसूरी का अपना अलग महत्व है। इस कारण जनपद देहरादून का हिस्सा होते हुए भी एक पृथक अध्याय में मसूरी का सांगोपांग वर्णन किया है। —लेखक

जब से पर्यटन को उद्योग के रूप में मान्यता मिली है तब से मसूरी का महत्व और भी बढ़ गया है। मसूरी की पर्यटकीय संभावनाओं के कारण उत्तर प्रदेश के पर्यटन विभाग एवं गढ़वाल मण्डल विकास निगम ने भी मसूरी के पर्यटकीय स्वरूप को निखारने में भरसक प्रयत्न किया है और यह प्रयास सतत् जारी है।

मसूरी की स्थिति

३०° २७' उत्तरी अक्षांस से ७०° ६' पूर्वी देशान्तर के मध्य देहरादून के उत्तर में ६४.२५ वर्ग किलो मीटर में फैली सिन्धुतट से २००५ मीटर की ऊँचाई पर उत्तरी भारत की सुविख्यात पर्यटक स्थली मसूरी बांज, बुरांस एवं देवदार के सघन वनों के बीच अवस्थित है। इसके दक्षिण में दून घाटी का झिलमिलाता दृश्य, सहारनपुर तथा उत्तराखंड के प्रवेश द्वार हरिद्वार का सुरम्य विस्तार जहाँ दर्शकों को एक अनिर्वचनीय आह्लाद प्रदान करता है वहीं इसके उत्तर-पूर्व में हिमधवल पर्वत शृंखलाओं का चित्रोपम दृश्य आत्म विस्मृत कर देता है। प्रशासनिक दृष्टि से मसूरी गढ़वाल मंडल के देहरादून जनपद में स्थित है।

मसूरी इतिहास के झरोखे से

ब्रिटिश शासनकाल में विकसित अन्य पर्वतीय नगरों की भाँति मसूरी के निर्माण विकास का श्रेय भी अंग्रेजों को जाता है। सन् १८१४ ई० के गोरखा युद्ध के बाद देहरादून पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया था। अब अंग्रेजों की कुछ फौज वहाँ रहने लगी थी। सन् १८२२ में एफ० जे० शोर देहरादून का ज्वाइंट मजिस्ट्रेट था। वह सिरमोर राइफल के कैप्टेन यंग के साथ मसूरी की पहाड़ी पर शिकार खेलने जाया करता था। प्रकृति प्रेमी और शिकार के शौकीन इन अंग्रेज अफसरों को यह स्थान बहुत भाया। क्योंकि यहाँ सघन वन और जंगली जानवर काफी मात्रा में थे। उन दिनों उसी स्थान पर यहाँ कोई बस्ती न थी। भट्टा और क्यारकुली गांव वालों की कुछ दरमानी छानियाँ अवश्य थीं, जहाँ उनके पशु बंधे रहते थे।

इन्हीं दिनों कैप्टेन यंग और एफ० जे० शोर ने केमल्स बैक रोड पर एक आखेट कुटीर (शूटिंग बॉक्स) बनाई। कुछ समय के उपरान्त उन्होंने

एक और शिकार कुटीर कुलड़ी में उस जगह बनाई जहाँ पर आज
हाल विद्यमान है। बाद में कैप्टेन यंग को मसूरी की पहाड़ी स्वास्थ्य
दृष्टि से तथा प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से भी काफी पसन्द आ गई।
उसने लंढौर के पास सन् १८२६ ई० में एक मकान बनाया। यही म
का पहला आवासीय भवन है जो मलिंगार के नाम से आज भी विद्य
है। कैप्टेन यंग जो कि बाद में कर्नल के पद तक पहुँचा, आयरलैण्ड का
वाला था। मलिंगार उसके पैतृक गाँव का नाम था। अत: उसने म
के इस प्रथम भवन का नाम अपने गाँव की स्मृति को ताजा रखने के
मलिंगार रखा।

कैप्टेन यंग के सुझाव पर कम्पनी सरकार ने सन् १८२७ ई०
सैनिकों के लिए एक स्वास्थ्य लाभ पड़ाव स्थापित किया जहाँ गोरे सै
देहरादून की गर्मी से परेशान होकर स्वास्थ्य लाभ के लिए आया करते
इसी वर्ष मसूरी का प्रथम पोस्ट ऑफिस खुला।

अब धीरे-धीरे यहाँ प्रकृति प्रेमी अंग्रेजों का आगमन होने लगा।
यहां के बाशिंदों के लिए दैनिक उपभोग की वस्तुओं की आवश्यक
महसूस हुई तो सन् १८२९ में लारेंस नामक अंग्रेज ने अपनी प्रथम परच
की दुकान खोली। सन् १८३२ में कर्नल एवरेस्ट ने मसूरी के पश्चि
छोर पर हाथी पाँव के निकट अपनी कोठी बनाई। उसने अपना सर्वे
कार्यालय भी इसी कोठी में खोला। वह भारत का प्रथम सर्वेयर जनर
था। अब धीरे-धीरे आम जनता तथा प्रकृति प्रेमियों का आकर्षण मसू
के प्रति बढ़ने लगा और प्रारंभ में मुख्य रूप से पश्चिम की ओर
आवासीय भवनों का निर्माण होने लगा। बाद में यह योजना बदल गई।

जब अंग्रेज यहाँ सपरिवार रहने लगे तो उनके बच्चों की शिक्ष
व्यवस्था का प्रश्न पैदा हुआ तथा उनको उपासना स्थल की भ
आवश्यकता हुई। अत: अब धीरे-धीरे स्कूलों और गिरजाघरों की स्थापन
हुई। १८३३ में मैकिनन नामक अंग्रेज ने मसूरी में प्रथम स्कूल 'मसूर
सेमिनरी' के नाम से स्थापित किया। किन्तु यह स्कूल अधिक दिन नह
चला, मसूरी का प्रथम स्कूल वास्तव में 'कानवेण्ट ऑफ जीजस एण्ड
मैरी' है जो सन् १८४५ में स्थापित हुआ और आजतक है। १८३६ में

टेन रेनी टेलर ने आज के लाइब्रेरी बाजार के निकट क्राइस्ट चर्च मक प्रथम गिरजाघर की स्थापना की। इसी वर्ष मसूरी का प्रथम बैंक र्थ वेस्ट बैंक खुला। इस प्रकार धीरे-धीरे मसूरी एक पर्वतीय नगरी के प में उभरने लगी।

प्रारंभ में मसूरी में अंग्रेजों का ही बोलबाला रहा। उन्होंने इसे अपने ामोद-प्रमोद का स्थल बनाना पसन्द किया तथा यहाँ उन्हीं संस्थाओं की थापना की जिनसे उनका हित हो सकता था। अंग्रेजों ने अपने आवास-ृह घने जंगलों के बीच या पहाड़ की एकान्त चोटियों में बनाये। वे भारतीयों का मसूरी में आना पसन्द नहीं करते थे। किन्तु १९१४ के प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद मसूरी में कुछ परिवर्तन होने लगे। अब धीरे-धीरे हिन्दुस्तानी लोग वहाँ बसने लगे।

स्वास्थ्य वर्धक स्थान होने के साथ-साथ अंग्रेजी माध्यम के अच्छे विद्यालयों की स्थापना होने के कारण अंग्रेजों के अतिरिक्त कुछ अभिजात वर्ग के हिन्दुस्तानी विशेषकर राजे महाराजे मसूरी की ओर आकर्षित हुए। कुछ भारतीय राजाओं ने भी यहाँ अपनी कोठियाँ बनानी शुरू की। जिनमें कपूरथला, नाभा, कटेश्वर, कसमण्डा, टिहरी आदि मुख्य हैं। जब इन अभिजात वर्गीय लोगों के बच्चों को अंग्रेजी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश मिलने लगा तो धीरे-धीरे मसूरी की आबादी बढ़ने लगी। अब काफी हिन्दुस्तानी यहाँ व्यापार में संलग्न होने लगे।

यद्यपि २०वीं सदी के प्रथम दो दशकों में काफी भारतीय यहाँ रहने लगे थे किन्तु ये सब अंग्रेजों की दया के पात्र थे। अर्थात् १९४७ तक मसूरी में अंग्रेजों का ही दबदबा रहा।

यह सही है कि प्रारंभ में अंग्रेजों ने मसूरी को एक स्वास्थ्य वर्धक तथा शिक्षण संस्थाओं की नगरी के रूप में विकसित किया। किन्तु इसके प्राकृतिक सौन्दर्य, इसकी स्वच्छता और इसकी स्वास्थ्य वर्धक जलवायु के कारण ग्रीष्म ऋतु में यहाँ पर्यटकों का आगमन आरंभ हो गया। इसकी मोहक आकृति के कारण सौन्दर्य प्रेमियों ने इसे "पर्वतों की रानी" के नाम से विभूषित कर दिया। इसका यह नाम काफी प्रचारित हुआ। जब यहाँ पर्यटकों का आना शुरू हुआ तो उनके आवास के लिए यहाँ होटल

भी बनने लगे। प्रारंभ में तो यहाँ अधिक संख्या अंग्रेजों व धनाढ्य लोगों की ही होती थी किन्तु यातायात की सुविधा होने से मध्यम दर्जे के लोग भी यहाँ आने लगे। कुछ इसका सौन्दर्य पान करने के लिए, कुछ मैदानों की भीषण गर्मी से बचने के लिए तथा कुछ आमोद-प्रमोद के लिए यहाँ आया करते थे।

मसूरी की पर्यटकीय आधारभूत सुविधायें

वास्तव में कोई भी पर्यटकस्थली तभी लोकप्रिय हो सकती है जब वहां पर्यटकीय आधारभूत सुविधायें उपलब्ध हों। मसूरी इस दृष्टि से भाग्यशाली है। यहाँ इस प्रकार की सभी सुविधायें विद्यमान हैं। जैसे यातायात की सुविधा, आवास की सुविधा तथा मनोरंजन के पर्याप्त साधन। यही कारण है कि मसूरी उत्तर भारत की सबसे लोकप्रिय पर्यटक नगरी है। यहाँ आनेवाले पर्यटकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि इसकी लोकप्रियता का प्रबल सबूत है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सन् १९८७ में मसूरी में वर्ष भर में लगभग ग्यारह लाख पर्यटक आये।

पर्यटकों के आवास के लिए यहाँ अलग-अलग श्रेणियों के ८४ होटल, १० विभागीय होली डे होम, ६ धर्मशालायें तथा तीन सरकारी निरीक्षण भवन उपलब्ध हैं। यातायात की यहाँ सुलभ व्यवस्था है। यातायात की दृष्टि से मसूरी देश के हर हिस्से से जुड़ी है। मसूरी का निकटस्थ रेलवे स्टेशन देहरादून है जो यहाँ से ३५ कि० मी० की दूरी पर है। मसूरी के लिए देहरादून से बसों व टैक्सियों की पर्याप्त सुविधा है। मसूरी का निकटतम हवाई अड्डा मात्र ६० कि०मी० की दूरी पर देहरादून-ऋषिकेश मार्ग पर जौलीग्रांट हवाई पट्टी है। जहाँ वायुदूत सेवा देहरादून से दिल्ली तक उपलब्ध है। मसूरी से कार द्वारा जौलीग्रांट तक एक घंटे में पहुँचा जाता है।

मसूरी में स्थानीय पर्यटक स्थलों के लिए हाथ से खींचे जाने वाले रिक्शा, डांडी तथा घोड़े उपलब्ध हैं जो म्यूनिसिपल गार्डन, चिल्ड्रन लौज, केमल्स बैक रोड आदि का भ्रमण कराते हैं। छोटे बच्चों के लिए यहाँ बच्चा गाड़ी भी उपलब्ध रहती है। गढ़वाल मंडल विकास निगम

काल में इस चोटी पर एक तोप रखी रहती थी जो समय का ज्ञान कराने के लिए १२ वजे दिन में छोड़ी जाती थी इससे लोग अपनी घड़ियाँ मिलाते थे। वाद में आवादी वढ़ने पर तथा तोप के मुख से निकले विस्फोटक से हुई हानि के कारण सन् १९१९ में इसे वन्द कर दिया गया। गन हिल तक पहुँचने के लिए माल रोड़ से एक किलो मीटर पैदल मार्ग है तथा ट्राली (रज्जुमार्ग) द्वारा यह दूरी ४०० मीटर है। इससे ऊपर पहुँचने में केवल पाँच मिनट लगते हैं। साथ ही रज्जुमार्ग से चढ़ना-उतरना बड़ा रोमांचक लगता है। गनहिल से हिमालय का नयनाभिराम दृश्य तथा दून घाटी का विस्तार मन को आनन्दित कर देता है। सम्पूर्ण मसूरी को एकसाथ देखने के लिए यह स्थान सवसे उत्तम है। पर्यटक यहाँ पर विभिन्न वेश-भूषाओं में फोटो खिचवाते हैं। जलपान और भोजन की यहाँ पर अच्छी व्यवस्था है। सीजन में एक हजार पर्यटक यहाँ केवल रज्जुमार्ग से जाते हैं।

चिल्ड्रन लॉज

यह स्थान मसूरी से ४ कि० मी० की दूरी पर लंढौर कैंट इलाके में स्थित है तथा मसूरी का सबसे ऊँचा स्थल है। १९७६ में यहाँ पर एक शक्तिशाली दूरवीन लगाई गई है। जिससे हिमालय की पर्वत श्रेणियों का भव्य दृश्य दिखाई देता है। इस दूरवीन से मसूरी तथा देहरादून घाटी को भी अवलोकित किया जा सकता है। यहाँ तक पहुँचने के लिए टैक्सियाँ, घोड़े तथा रिक्शे आसानी से मिल जाते हैं।

म्यूनिसिपल गार्डन

पर्यटक कार्यालय मसूरी से लगभग ४ कि० मी० नगर के कोलाहल से दूर वांज एवं देवदार के वृक्षों के वीच पश्चिम की ओर यह चित्ताकर्षक वाग स्थित है। यहाँ लता-द्रुमों के झुरमुट में जीवन के कुछ क्षण गुजारना अति आनन्ददायक है। नाना भाँति के पुष्प यहाँ खिले रहते हैं। वच्चों के मनोरंजन के लिए यहाँ खेल-कूद के साधन उपलब्ध हैं। वाग के मध्य में नौका विहार हेतु एक कृत्रिम तालाव भी है। फोटोग्राफी और जलपान

ी समुचित व्यवस्था है। यहाँ तक पहुँचने के लिए टैक्सी, घोड़ा व रिक्शा हर समय उपलब्ध हैं।

कैम्पटी फॉल

कैम्पटी फॉल मसूरी का प्रमुख आकर्षण है। मसूरी पहुँचने वाले लगभग ९० प्रतिशत पर्यटक इस जल-प्रपात को देखने अवश्य जाते हैं। यह प्राकृतिक जलप्रपात मसूरी से १४ कि० मी० की दूरी पर टिहरी जनपद के जौनपुर विकास-खण्ड में पड़ता है। कैम्पटी ग्राम के नजदीक होने से इसका नाम कैम्पटीफॉल हुआ। पहले यहाँ तक पहुँचने के लिए पैदल यात्रा थी किन्तु अधिक पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए सन् १९६३ में यहाँ तक पहुँचने का मोटर मार्ग निर्माण किया गया। अत: अब यहाँ उ० प्र० सड़क परिवहन निगम की बसों द्वारा टैक्सियों द्वारा अथवा निजी वाहनों द्वारा आसानी से पहुँचा जा सकता है।

मैदानी पर्यटकों के लिए इस जल-प्रपात का दृश्य रोमांचक एवं आल्हादकारी होता है। पर्यटक प्रपात के नीचे स्नान का आनन्द भी लेते हैं। यहाँ पर्यटकों के लिए भोजन एवं अल्पाहार की समुचित व्यवस्था है। पर्यटकों के लिए यह वर्ष भर खुला रहता है।

केमल्स बैक रोड

मसूरी नगर के सभी मार्ग प्रात: कालीन भ्रमण के लिए उपयुक्त हैं, जिनमें केमल्स बैक रोड प्रमुख है। ३ किलो मीटर लम्बा यह मार्ग कुलड़ी बाजार में रिंक हाल से शुरू होता है तथा लाइब्रेरी बाजार में रोजलिन होटल पर समाप्त होता है। मार्ग देवदार के सघन वृक्षों के बीच में से होकर जाता है। यहाँ से पर्यटक हिमालय तथा टिहरी गढ़वाल की पहाड़ियों के मनोरम दृश्य देख सकते हैं। इस रोड पर पर्यटक घुड़सवारी का आनन्द ले सकते हैं। यह रोड़ गनहिल के पीछे की ओर है। गनहिल का इस ओर का एक भाग प्राकृतिक रूप से ऊँट की आकृति का बना है जिसे इस मार्ग पर स्थित मसूरी पब्लिक स्कूल के निकट से ऊपर की ओर देखा जा सकता है। इस चट्टान के नाम पर इस मार्ग का नाम केमल्स बैक रोड़ पड़ा।

मसूरी के उपनगरीय पर्यटक स्थल

धनोल्टी

धनोल्टी मसूरी से २८ किलोमीटर की दूरी व २२३०मीटर की ऊँचाई पर मसूरी-चम्बा मोटर मार्ग पर स्थित है। यह क्षेत्र बांज, बुराँस व देवदार के सघन वृक्षों से आच्छादित है। यहाँ से एक ओर जहाँ हिमालय की पर्वत शृंखलाओं का बहुत ही आकर्षक दृश्य दिखाई देता है वहीं दूसरी तरफ दून घाटी का दृश्य भी बड़ा मन मोहक लगता है। यहाँ का शान्त वातावरण क्लान्त मन के लिए निश्चित रूप से औषधि का कार्य करता है। फिल्म जगत के विख्यात कलाकार निर्माता निर्देशक राज कपूर को यह स्थान अतिप्रिय है। उन्होंने यहाँ कुछ फिल्मों की शूटिंग भी की है। यहाँ आवास के लिए २० शय्याओं का आवास गृह है जिसमें रात्रि निवास व भोजन की उचित व्यवस्था है। गढ़वाल मंडल विकास निगम द्वारा धनोल्टी व सुरकंडा के लिए संचालित भ्रमणों का भी आयोजन किया जाता है।

सुरकंडा

धनोल्टी से ८ किलो मीटर आगे मसूरी-चम्बा मार्ग पर कद्दूखाल तक मोटरीय यातायात की सुविधा है। कद्दूखाल से २ कि० मी० की चढ़ाई चढ़कर सुरकंडा पहुँचा जाता है। चढ़ाई थकाने वाली है किन्तु चारों ओर का नजारा मनमोहक है। सुरकंडा में भगवती सुरेश्वरी का मन्दिर है। मन्दिर दस हजार फीट की ऊँचाई पर है। इस स्थान की मान्यता सिद्ध पीठ के रूप में है। पहले यहाँ बलि देने की प्रथा थी किन्तु अब वह बन्द हो गई। स्थानीय व्यक्तियों के अतिरिक्त दूर मैदानी क्षेत्रों के दर्शनार्थी भी यहाँ पूजा-अर्चना हेतु आते हैं। गंगा दशहरे को यहाँ पर भारी मेला लगता है।

यहाँ का प्राकृतिक वैभव वर्णनातीत है। दस हजार फीट ऊँचे इस रमणीक शिखर पर पहुँचते ही पर्यटक प्रकृति के नयनाभिराम दृश्यों को देखकर आत्म विस्मृत हो जाते हैं। उत्तर की ओर से पर्वतराज हिमालय के हिमराजित शृंग मानो आलिंगन करने को आतुर हों। शिखर की

वानस्पतिक हरियाली देखकर आँखें उसका सौन्दर्यपान करते नहीं अघातीं। प्रकृति प्रेमियों का शिखर से लौटने का मन ही नहीं करता।

नागटिब्बा

मसूरी से नाग टिब्बा ५५ किलो मीटर दूर टिहरी जनपद के जौनपुर विकास खंड में दस हजार फीट की ऊँचाई पर है। यहाँ पर नाग देवता का मन्दिर है। यहाँ तक पहुंचने के लिए मसूरी से थत्यूड़ तक (३४ कि० मी०) बस यातायात उपलब्ध है। यहाँ से ७ कि० मी० पर देवलसारी है। जहाँ वन विभाग का विश्राम भवन आवास के लिए उपलब्ध है। देवलसारी से नागटिब्बा १४ कि० मी० है। देवलसारी में आवास की कोई सुविधा नहीं है। पर्यटक या तो टेन्ट में रहते हैं या लौटकर देवलसारी आते हैं। नागटिब्बा से हिमालय एवं आसपास के चित्ताकर्षक दृश्य दृष्टिगोचर होते हैं।

जनपद देहरादून

सहस्त्रधारा

देहरादून से सहस्त्रधारा १४ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। यहाँ तक जाने के लिए बस की सुविधा है। निजी वाहन से भी यहाँ जाया जा सकता है। यह प्राकृतिक सौन्दर्य एवं गन्धक युक्त पानी के झरने के लिए विख्यात है। बताया जाता है कि इस पानी के स्नान से चर्म रोग दूर होते हैं। पर्यटकों के आवास के लिए यहाँ पर पर्यटक विश्राम गृह तथा सा० नि० वि० का निरीक्षण भवन है।

टपकेश्वर महादेव

शहर से ५ किलो मीटर की दूरी पर यह प्रसिद्ध शिवालय है। नगर बस सेवा यहाँ तक जाने के लिए हर समय उपलब्ध रहती है। यहाँ की विशेषता प्राकृतिक शिवलिंग और चट्टान के छेद से शिवलिंग के ऊपर टपकता जल है। शिवरात्रि को यहाँ भारी मेला लगता है।

गुच्छूपानी

रेलवे स्टेशन से ८ किलो मीटर दूर उत्तर-पश्चिम की ओर कैन्टोनमेन्ट एरिया के बाद पहाड़ों और सीढ़ीनुमा खेतों पर स्थित गुच्छू पानी के

लिए नगर बसों की सुविधा उपलब्ध है। निजी वाहनों के द्वारा भी ज सकते हैं। यह एक गुम्बदनुमा घाटी है जो दोनों ओर से कठोर चट्टानों रे घिरी है। चट्टानों पर अनेक छोटे-छोटे छेद हैं। इस घाटी में दोपहर में भं धूप के दर्शन नहीं होते। घाटी में अत्यन्त ठण्डा पानी बहता है। पिकनिव के लिए यह स्थान बहुत आनन्ददायक है।

लक्ष्मणसिद्ध

देहरादून से १२ किलोमीटर की दूरी पर देहरादून-ऋषिकेश मार्ग पर लक्ष्मणसिद्ध का मन्दिर है। कहते हैं इस स्थान पर लक्ष्मणसिद्ध नाम के एक सन्त पुरुष ने तपस्या कर सिद्धि पाई थी। आमतौर पर लोग रविवार के दिन इस सिद्ध पीठ पर श्रद्धा सुमन अर्पण करने जाते हैं। सभी प्रकार के वाहन मन्दिर तक जा सकते हैं।

तपोवन

देहरादून-रायपुर रोड़ पर नगर से ६ किलोमीटर की दूरी पर यह साधना स्थली है। यहाँ तक जाने के लिए ४ किलोमीटर तक वाहन की सुविधा है तथा २ किलोमीटर पैदल चलना पड़ता है। स्थान अत्यन्त रमणीय है। तप्त कुण्ड एवं खंडित किले के भग्नावशेष दर्शनीय हैं।

डाक पत्थर

देहरादून-चकरौता मार्ग पर देहरादून से ४५ किलोमीटर की दूरी पर यमुना जल विद्युत परियोजना का मुख्य स्थल है। यमुना नदी पर बाँध के दृश्य के कारण अत्यन्त रमणीक एवं लोकप्रिय है। सुन्दर हरित घास का मैदान व उद्यान दर्शनीय है। यहाँ तक पहुँचने के लिए देहरादून से नियमित बस सेवायें उपलब्ध हैं।

वन अनुसंधान शाला

देश का यह प्रसिद्ध संस्थान नगर से ५ किलोमीटर दूर देहरादून-चकरौता मार्ग पर घने वृक्षों के बीच में स्थित है। इस संस्थान में वन सम्बन्धी अनुसधान कार्य होता है। भवन देखने योग्य है। वन में पैदा होने वाली अनेक वस्तुओं का प्रदर्शनालय, पुष्प वाटिका, कागज मिल, वनस्पति उद्यान व हिरन वाटिका दर्शनीय हैं।

ज़सी

यह ऐतिहासिक स्थल देहरादून से ५० किलोमीटर की दूरी पर स्थित । सम्राट अशोक का पाली भाषा में लिखा-शिला लेख कालसी का ख्य आकर्षण है जो पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में है।

करौता

देहरादून से ९२ किलो मीटर की दूरी पर बसा चकरौता अपनी सर्गिक छटा के लिए प्रसिद्ध है। बांज, बुराँस तथा अन्य उच्च स्तरीय ादपों से घिरा यह पर्वतीय पर्यटक स्थल समुद्र की सतह से २१३५ किलो ोटर की ऊँचाई पर स्थित है। चकरौता की स्थापना का श्रेय भी अंग्रेजों ो जाता है। कर्नल ह्यूम ने ब्रिटिश सैनिकों के लिए सन् १८६६ ई० में से बसाया था। स्वास्थ्य वर्धक स्थान होने के साथ-साथ चकरौता ैलानियों का स्वर्ग है। हिमालय का मनोरम दृश्य तथा चारों ओर का ाकृतिक सौन्दर्य यहाँ दर्शकों का मन मोह लेता है। चकरौता के निकट ी अन्य दर्शनीय स्थलों में देववन व टाइगर फाल प्रसिद्ध हैं। चकरौता में आवास आदि की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

लाखामण्डल

लाखा मण्डल जाने के लिए दो मार्ग हैं। एक देहरादून से कालसी होकर और दूसरा मसूरी से यमुना पुल होकर। मसूरी से लाखा मण्डल की दूरी ७५ किलो मीटर है। मसूरी से कुवा (७१ कि० मी०) तक मोटर मार्ग की सुविधा है। कुवा से ट्राली द्वारा यमुना नदी को पार करना पड़ता है। पुल पार कर कुछ चढ़ाई चढ़कर लगभग ११०० मीटर की ऊँचाई पर ऐतिहासिक लाखा मंडल है।

कथा है कि यहीं पर कौरवों ने पाण्डवों को जलाने के लिए लाक्षागृह का निर्माण किया था। लाक्षागृह गाँव से उत्तर की ओर कुछ दूरी पर है। कहते हैं यहां से एक सुरंग कहीं निकली है जिसके रास्ते पांडव बच निकले थे।

लाखा मंडल का मुख्य आकर्षण यहाँ के कलात्मक मन्दिर और अनेक मूर्तियां हैं। यहां शिव, विष्णु, परशुराम और पांचों पाण्डवों के मन्दिर

हैं। मूर्तियों का यहाँ संग्रहालय है। ये मन्दिर और मूर्तियाँ पुरातात्त्विक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। ये मूर्तियाँ ८ वीं से १६वीं सदी तक की बताई जाती हैं। लाखा मण्डल में जो पुरावशेष उपलब्ध हैं उनसे पता चलता है कि यह स्थान प्राचीन काल में कला और संस्कृति का केन्द्र रहा होगा। यहाँ एक विशाल शिवलिंग मिला है जिसके आकार को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस मन्दिर में यह स्थापित रहा होगा वह बड़ा विशाल रहा होगा।

जनपद उत्तरकाशी

हरकीदून

उत्तरकाशी जिले में ३५६६ मीटर की ऊँचाई पर स्थित हरकीदून प्रकृति के अनुपम सौन्दर्य का खजाना है। घाटी में प्रवेश करते ही प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य मोह लेते हैं। देवदारू के सघन वन, पक्षियों की चहचाहट और मृग शावकों की उछल-कूद तन को गुदगुदा देते हैं। प्रकृति प्रेमियों का यह स्वर्ग है।

हरकीदून पथारोहियों के लिए अत्यन्त रोमांचकारी पर्यटक स्थल है। यहाँ तक पहुँचने के लिए देहरादून अथवा मसूरी से पर्यटक नौगाँव पहुँचते हैं। नौगाँव से पुरोला—जरमोला—मोरी होते हुए नैटबाड़ तक मोटर मार्ग की सुविधा है। नैटवाड़ से लगभग ४५ किलो मीटर पैदल यात्रा है जो कि अत्यन्त आनन्ददायक है। नैटवाड़ से तालुका और ओसला होते हुए हरकीदून की यात्रा अब काफी सरल हो गई है। हरकीदून की घाटी पंचगाई और फतेह पर्वत के पाद प्रदेश में स्थिर है। टौंस नदी इसे हिमालय प्रदेश से अलग करती है। नैटवाड़ में रुपिन व सुपिन नदियों का संगम है। जहाँ से टौंस नदी का जन्म होता है।

हरकीदून जाने के लिए सबसे अच्छा मौसम अगस्त-सितम्बर माना जाता है जबकि इस घाटी में भाँति-भाँति के फूल खिले रहते हैं और स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति होती है। इस घाटी को यदि "ईश्वर की घाटी" कहें तो अत्युक्ति न होगी।

ोडीताल

देवदार, वांज, बुरांस व चीड़ के सघन वन के मध्य प्रकृति की गोद में ।सा डोडीताल उत्तरकाशी से ३२ किलो मीटर की दूरी पर है। समुद्र ।ल से इसकी ऊँचाई ३०२४ मीटर है। उत्तरकाशी से ४ किलो मीटर ंगोरी तक मोटर मार्ग का सफर है। गंगोरी से ७ कि० मी० कल्याणी तक जीप द्वारा मार्ग तय किया जा सकता है। इसके बाद अगोडा होकर २१ कि० मी० पैदल चलकर डोडीताल पहुँचते हैं। स्वच्छ जल वाला प्रकृति की गोद में बसा ट्राउट मछलियों से युक्त डोडीताल प्रकृति प्रेमियों को हर मौसम में आकर्षित करता है।

नचिकेता ताल

यह ताल जनपद उत्तरकाशी की पट्टी धनारी के पंचाणगांव व फोल्ड गांव के मध्य स्थित है। ताल हमेशा जल पूरित रहता है। उत्तरकाशी से लम्बगांव जाने वाली सड़क पर चौरंगी खाल तक बस का सफर है। चौरंगीखाल से पैदल चलना पड़ता है। ताल बाँज बुरांस के सघन वृक्षों के मध्य है। स्थान चित्ताकर्षक है।

हर्सिल

उत्तरकाशी-गंगोत्तरी मार्ग पर उत्तरकाशी से ७६ कि० मी० की दूरी पर हर्सिल एक अत्यन्त रमणीक स्थान है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई २५६१ मीटर है। हर्सिल सेव के वगीचों के लिए बहुत प्रसिद्ध है। जल-वायु स्वास्थ्य वर्धक है।

जनपद टेहरी

चन्द्रवदनी

देव प्रयाग से चन्द्रवदनी तक जाने के लिए मोटर मार्ग की सुविधा है। लगभग ३६ कि० मी० वस या कार का सफर है। इसके बाद डेढ़ कि० मी० की चढ़ाई चढ़कर चन्द्रवदनी मन्दिर में पहुँचते हैं। मन्दिर में देवी की कोई प्रतिमा नहीं है। शिला पर देवी का यंत्र है। उसी की पूजा होती है। पहले यहाँ पशुबलि दी जाती थी। स्वामी मन्मथन के प्रयास से

अब वलि प्रथा १६७० से वन्द हो गई है। मन्दिर का जीर्णोद्धार भी कर दिया गया है। चैत्र एवं आश्विन के नवरात्र में यहाँ भारी मेला लगता है

धार्मिक भावना वाले यात्रियों के अलावा यहाँ सैलानियों के लिए भं अच्छा पर्यटक स्थल है। २७५६ मीटर ऊँचे इस स्थान से हिमालय कं पूरी श्रृंखला दिखाई देती है।

पर्यटकों के लिए गढ़वाल मण्डल विकास निगम ने यहाँ नैखरी में एव २० शय्याओं वाला आवास गृह बना दिया है। जो बहुत ही रमणीक स्थान पर बना है। नैखरी में एक कृत्रिम सरोवर भी है। चन्द्रवदनी जाने के लिए श्रीनगर-टिहरी मार्ग के कांडीखाल नामक स्थान से भी एक पैदल मार्ग (८ कि० मी०) जाता है। इसी प्रकार एक मार्ग टिहरी-अंजनीसैण होकर भी है।

श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम

देव प्रयाग-टिहरी मोटर मार्ग पर देव प्रयाग से ३२ कि० मी० की दूरी पर यह आश्रम स्थित है। स्वामी मन्मथन नामक प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता ने सन् १६७७ में इस आश्रम की स्थापना की है। आरम्भ में यह आश्रम निराश्रित महिलाओं की सेवा के लिए बनाया गया था किन्तु अब यह उत्तराखण्ड में महिला जागरण, श्वेत क्रान्ति, हरित क्रान्ति, वैकल्पिक ऊर्जा, शिक्षा, पर्यावरण तथा सामाजिक चेतना का प्रमुख केन्द्र बन गया है। इसके कलात्मक भवन फलोद्यान एवं पुष्प वाटिका देखने लायक हैं।

कूजापुरी

ऋषिकेश-टिहरी मार्ग पर नरेन्द्र नगर से मोटर मार्ग द्वारा ६ किलो मी० की दूरी पर कूजापुरी है। यहाँ पर भगवती दुर्गा का मन्दिर है। समुद्र की सतह से यह स्थान १६४५ मी० ऊँचा है। चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मोहक है। हिमालय[1] की बर्फीली चोटियाँ यहाँ से स्पष्ट दिखाई देती हैं। ऋषिकेश, हरिद्वार व देहरादून का दृश्य भी यहाँ से बड़ा आकर्षक लगता है।

।।

देवप्रयाग से एक मोटर मार्ग भागीरथी के किनारे-किनारे जाजल
टी में ऋषिकेश-टिहरी मार्ग से मिलता है। इसी मार्ग पर छ हजार
ट की ऊँचाई पर गजा एक सुन्दर पर्यटक स्थल है। यहाँ बांज, बुराँस व
ड़ के सघन वन हैं। गजा जाने के लिए चम्बा से भी एक मार्ग जाता
। इसी मार्ग पर पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय का प्रसिद्ध रानीचौरी
रिसर है। बादशाही थौल इस मार्ग पर एक दर्शनीय स्थल है।

वालीकांठा

समुद्र की सतह से ३६६३ मीटर की ऊँचाई पर पुराने गंगोत्री-
त्रयुगी नारायण मार्ग पर स्थित है। अब पँवाली कांठा जाने के लिए
टेहरी से घनसाली होते हुए घुत्तु तक एक मोटर मार्ग गया है। घुत्तु से
वाली तक १५ किलो मी० का पैदल सफर है। एक दूसरा पैदल मार्ग
चिरविटिया से भी पँवाली कांठा गया है। सैलानियों को वास्तव में यही
मार्ग अपनाना चाहिए। इस मार्ग पर रास्ते के दृश्य अत्यन्त मोहक हैं।
बांज बुरांस व देवदार के सघन वनों के अतिरिक्त सुन्दर बुग्याल (हरी
घास के मैदान) यहाँ देखने को मिलते हैं।

पँवाली का प्राकृतिक वैभव देखते ही बनता है। जड़ी बूटियों का यहाँ
विशाल भण्डार है। रंग-बिरंगे फूलों का यहाँ कुदरती बगीचा है। पर्यटकों
को यहाँ अगस्त-सितम्बर में जाना चाहिए। रात्रि निवास के लिए यहाँ
काली कमली की धर्मशाला है। पर्यटकों को खाद्य सामग्री अपने साथ ले
जानी चाहिए, यहाँ कोई दुकान नहीं है। ग्रीष्म और बरसात में यहाँ गूजर
रहते हैं। उनसे दूध पर्याप्त मात्रा में मिल सकता है।

चिरविटिया

टिहरी-तिलवाड़ी मोटर मार्ग पर तिलवाड़ा से ३२ किलो मीटर की
दूरी पर बांज, बुरांस के सघन वन के मध्य यह रमणीक स्थान है। चारों
ओर का दृश्य सुहावना है। निकट ही राजकीय सेब का बगीचा व आलू
फार्म है। यहाँ से एक पैदल मार्ग राजखूंगा पर्वत तथा दूसरा पँवालीकांठा
को गया है। यहाँ चाय एवं खाने के लिए अच्छे होटल हैं।

खतलिंग ग्लेशियर

पर्यटकों के स्वर्ग खतलिंग ग्लेशियर की ऊँचाई समुद्र की सतह से ३७१७ मीटर है। खतलिंग पथारोहण अत्यन्त रोमांचकारी है। टिहरी से घुत्तु तक ६० किलो मीटर मोटरमार्ग की सुविधा है। घुत्तु से पूरी यात्रा पैदल की है। घुत्तु से रीह, गंगी, कल्याणी, भेलवागी होकर ४५ किलो मीटर का पैदल सफर तय कर खतलिंग पहुँचते हैं। यही भिलंगना नदी का उद्गम स्थल है, खतलिंग पहुँचकर दर्शक चारों ओर के नजारों को देखकर आत्मविभोर हो जाते हैं। देवप्रयाग क्षेत्र के भूतपूर्व विधायक पं० इन्द्रमणि वड़ोनी ने आठवें दशक में खतलिंग तक पर्यटकों की टोलियाँ ले जाने का कार्य शुरु किया है। आज खतलिंग विश्व पर्यटन के नक्शे पर आ गया है।

सहस्त्रताल

निर्मल जल वाला यह दिव्य सरोवर समुद्रतल से ४५७२ मीटर की ऊँचाई पर है। खतलिंग के रास्ते रीह से सहस्त्रताल का रास्ता कटता है, रीह से यह लगभग २१ किलो मीटर है। यहाँ छोटे-बड़े कई तालों का समूह है। यहाँ की प्राकृतिक छटा निराली है। यहाँ ब्रह्म कमल तथा अन्य कई प्रकार के पुष्प खिलते हैं। यह तीर्थ स्थान माना जाता है। माह भाद्रपद में यहाँ भेड़ों का मेला लगता है।

महासर ताल

३६७५ मी० की ऊँचाई पर यह ताल खतलिंग से ६ कि० मी० की दूरी पर है। इस ताल का पानी भी अत्यन्त निर्मल व पारदर्शी है। चहुँ ओर का दृश्य लुभावना है।

खैट पर्वत

टिहरी जनपद की धारमंडल एवं ढुंगमन्दार पट्टियों के मध्य ३०३० मीटर ऊँचा खैट पर्वत आछरियों (अप्सराओं) के पर्वत (डांडा) के रूप में अब तक विख्यात था किन्तु १९८३ में प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता प्रेमदत्त नौटियाल 'कामिड' के अथक प्रयास से प्रकृति की यह क्रीड़ास्थली पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र वन गया है। सन् १९८४ में पर्वत के शिखर

पर दुर्गा का एक भव्य मन्दिर भी बना दिया गया है। साथ ही धर्मशाला एवं सरोवर का भी निर्माण जनता के सहयोग से हो गया है। किंवदन्ती है कि खैट पर्वत पर अप्सराएँ रहती थीं। जिन्होंने जीतू बगड्वाल नामक युवक का हरण किया था।

खैंट पर्वत से चारों ओर का दृश्य मनोमुग्धकारी है। बांज, बुरांस, राई, थुसेर के सघन वृक्षों का यहाँ साम्राज्य है। यहाँ तक पहुँचने के लिए घोंटी नामक मोटर स्टेशन से साढ़े आठ कि० मी० पैदल चलना पड़ता है। घोंटी पहुँचने के लिए श्रीनगर अथवा टेहरी से बस पकड़नी पड़ती है।

माणिकनाथ

टिहरी जनपद की पट्टी डागर एवं कोटिफँगुल पट्टियों के मध्य २२७५ मी० की ऊँचाई पर यह रमणीक स्थान है। कथा है कि गोरखपंथी गुरु माणिक नाथ ने यहाँ तप किया था। शिखर पर एक मन्दिर है। मन्दिर से अष्ट धातु की गुरु माणिक नाथ की कीमती मूर्ति कुछ वर्ष पूर्व चोर ले गये हैं। यहां पानी का एक कुण्ड चट्टान के अन्दर है। यहाँ जाने के लिए श्रीनगर-टिहरी मार्ग के मगरौं नामक पड़ाव से रास्ता जाता है। दूसरा रास्ता पट्टी डागर के पाली गांव से जाता है। माणिक नाथ के निकट तांबे की खान बताई जाती है। स्थान बड़ा रमणीक है। हिमालय और भिलंगना घाटी का मोहक दृश्य यहाँ से दिखाई देता है।

मैठाणा

रुद्र प्रयाग से उत्तर की ओर जनपद टिहरी की भरदार पट्टी में तिलवाडा से ९ किलो मीटर पैदल चलकर मैठाणा पहुँचा जाता है। बाँज बुरांस के सघन वन के मध्य यह रमणीक स्थान है। पर्वत शिखर पर समतल भूमि है जहाँ पर जगदम्बा का कलात्मक मन्दिर है। मैठाणा एक शक्ति पीठ है। यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा चित्ताकर्षक है। यहाँ से ५ कि० मी० की दूरी पर कुर्मासिनी देवी का प्राचीन मन्दिर है जो प्राचीन होने के साथ भव्य भी है। मैठाणा जाने के लिए अब तिलवाड़ा से घेंगड़खाल तक मोटर मार्ग बन गया है।

जनपद चमोली

देवरियाताल

देवरियाताल जनपद चमोली में ऊखीमठ से ८ कि० मी० की
है। यह दूरी पथारोहण से तय की जाती है। दूसरा रास्ता ऊ
गोपेश्वर वाले मोटर मार्ग के मस्तूरा नामक स्थान से जाता है।
से देवरियाताल केवल ४ कि० मी० है। २४३८ मीटर ऊँचाई प
वन के मध्य स्थित देवरियाताल सैलानियों का स्वर्ग है। इस त
परिधि ७४४ मी० है। सामने खड़े चौखम्बा की छाया जब इस
पड़ती है तो बड़ा चित्ताकर्षक दृश्य उपस्थित हो जाता है। बदरीना
केदार के हिमधवल शृंग यहाँ से अत्यन्त लुभावने लगते हैं। एव
कथा के अनुसार वाणासुर की कन्या उषा अपनी सहेलियों के सा
क्रीड़ा के लिए इस सरोवर में जाती थी।

रूपकुण्ड

यह रहस्यमय सरोवर समुद्र की सतह से ५०२० मी० की ऊँच
त्रिशूल पर्वत की गोद में स्थित है। इसके चारों ओर मानव कंकाल
हैं। जिसके सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं। कोई इन्हें जनरल जोराव
की फौज के अस्थि अवशेष बताते हैं तो किन्हीं का कहना है कि या
का दल बर्फानी तूफान में दब गया था। बहरहाल रूप कुण्ड अभी
के घेरे में है। यहाँ तक पहुँचने के लिए कर्णप्रयाग से थराली-देवाल
हुए मंदोली तक मोटर मार्ग की सुविधा है। इससे आगे वाण गाँव
हुए ६१ कि० मी० पैदल चलकर रूप कुण्ड पहुँचा जाता है। रूप
हर मौसम में चारों ओर बर्फ से ढका रहता है। बंगाली पर्यटक यहां ब
मात्रा में जाते हैं। रूपकुण्ड के लिए अल्मोड़ा से ग्वालदम होकर भी
गया है।

वेदनी बुग्याल

प्रकृति का यह सौन्दर्यस्थल रूपकुण्ड के रास्ते पर वाण गाँव से
कि० मी० की दूरी पर स्थित है। यहाँ शान्ति और नीरवता का साम्रा

है। मीलों तक मखमली घास और रंग-बिरंगे पुष्प खिले रहते हैं। कहते हैं कि वेदों की रचना यहीं हुई थी। इसके मध्य में वैदनी कुण्ड व मन्दिर है जिसमें प्राचीन मूर्तियाँ देखने योग्य हैं।

औली बुग्याल

जोशीमठ से १३ कि० मी० की दूरी पर यह अलौकिक स्थल है। सिंधुतट से २७६० मी० ऊँचा औली बुग्याल प्रकृति प्रेमियों का स्वर्ग है। अब जोशीमठ से औली तक जाने के लिए रज्जु मार्ग का निर्माण हो रहा है। साथ ही शीतकालीन खेल स्कीइंग (बर्फ पर फिसलने) की भी यहाँ व्यवस्था कर दी गई है। इससे औली का आकर्षण और भी बढ़ गया है।

ग्वालदम

कर्णप्रयाग-अल्मोड़ा मार्ग पर थराली से २१ किलो मीटर दूर सिंधुतट से १८२९ मीटर ऊँचा ग्वालदम चमोली और अल्मोड़ा जनपद की सीमा पर विद्यमान है। बाँज बुराँस व देवदार के वनों से घिरा बड़ा ही रमणीक स्थान है। यहाँ से हिमालय की चोटियाँ और जनपद अल्मोड़ा की घाटियां दृष्टिगोचर होती हैं। अल्मोड़ा तथा देहरादून व हरिद्वार से सीधे बस सेवा उपलब्ध है।

आदि बदरी

कर्णप्रयाग-रानीखेत मोटर मार्ग पर कर्णप्रयाग से २१ किलो मीटर की दूरी पर यह प्राचीन देवस्थल है। उत्तराखण्ड के ५ बदरियों में से एक है। यहाँ पर १६ मन्दिरों का एक समूह है। इनमें कुछ मन्दिर अत्यन्त प्राचीन हैं। इनका शिल्प भी उत्तराखण्ड के अन्य मन्दिरों से भिन्न है।

चांदपुर गढ़ी

कर्णप्रयाग-रानीखेत मार्ग पर यह प्राचीन गढ़ी कर्णप्रयाग और आदि बदरी के बीच में है। गढ़वाल के पँवार वंशीय राजा कनकपाल की प्राचीन राजधानी के अवशेष यहाँ विद्यमान हैं। कहते हैं पंवार वंश का यह शक्तिशाली गढ़ था। महाराजा कनकपाल पंवार वंश का प्रथम शासक था।

नन्दादेवी पशुविहार

एवरेस्ट के वाद नन्दादेवी शिखर भारत का सर्वोच्च शिखर है। नन्दादेवी ने विश्व के अनेक पर्वतारोहियों का आह्वान किया है। कई दल इस चोटी पर चढ़ने में सफल भी हुए हैं। सन् १९८१ में गढ़वाल की साहसी वेटी कु० हर्षवन्ती विष्ट ने भी नन्दादेवी पर चढ़ने में सफलता पाई है।

इसी नन्दा देवी के पाद प्रदेश में सुन्दर पशुविहार है जिसमें कई प्रकार के वन्य पशु विहार करते हैं। इस पशु विहार की ऊँचाई ४५०० मी० है जबकि नन्दादेवी शिखर की ऊँचाई ७३१७ मी० है। नन्दादेवी पशुविहार के लिए पथारोही जोशीमठ से लाटा तक बस द्वारा जाते हैं। लाटा से पद यात्रा आरम्भ होती है। यहाँ से लाटाखरक-धरांसी-रामणी होते हुए नन्दादेवी पशुविहार की दूरी ५३ कि० मीटर है। मार्ग कष्ट साध्य है। साहसी पथारोही ही यहाँ जाने का साहस करते हैं। पशुविहार का नाम अव संजय गांधी के नाम पर रखा गया।

दुगलबीटा

यह रमणीक स्थल गोपेश्वर-ऊखीमठ मार्ग पर ४१ किलो मीटर की दूरी पर सघन वन के बीच स्थित है। सा० नि० वि० का आलीशान विश्राम स्थल ब्रिटिश काल का [वना हुआ है। नाना प्रकार के पुष्प और पशुपक्षी यहाँ मिलते हैं। चौखंवा का दृश्य यहाँ से देखा जा सकता है। तुंग नाथ के लिए यहीं से रास्ता जाता है। पर्यटकों का यह स्वर्ग है।

जनपद पौड़ी

कार्बेट नेशनल पार्क

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का पशु विहार कार्वेट नेशनल पार्क पौड़ी जनपद के दक्षिण पूर्व में रामगंगा के किनारे समुद्र की सतह से ४०० मी० की ऊँचाई पर अवस्थित है। इसकी स्थापना सन् १९३५ में की गई थी। प्रसिद्ध शिकारी जिम कार्बेट के नाम पर इसका यह नाम रखा गया। रामनगर से इसकी दूरी ५० कि० मी० है। कोटद्वार से भी यहाँ मार्ग गया है।

अनेक प्रकार के वन्य जन्तु यहाँ बड़ी मात्रा में हैं। यहाँ का उद्यान बहुत ही आकर्षक है। शेर, हाथी, चीते, हिरण आदि पशुओं का स्वच्छन्द विचरण यहाँ देखने लायक है। सभी आधुनिक सुविधाएँ यहाँ विद्यमान हैं। इसके निकट ही कालागढ़ बाँध देखने योग्य है।

व आश्रम

कण्वाश्रम कोटद्वार से ६ कि० मी० की दूरी पर स्थित है। मोटाढांग-दूखाता-कलालघाटी होते हुए यहाँ पहुँचा जाता है। प्राचीनकाल में र्षि कण्व का सुविख्यात विश्वविद्यालय यहीं था, जहाँ काफी बड़ी ख्या में छात्र विद्याध्ययन के लिए आते थे, यहीं शकुन्तला और भरत का न्म स्थान माना जाता है। मालिनी नदी के किनारे पेड़ पौधों के झुरमुट वसा यह स्थान अत्यन्त रमणीक है। यह तपोवन जैसा लगता है। यहाँ क पहुँचने के लिए कोटद्वार से बसें आसानी से मिल जाती हैं। संपूर्णानंद ी के मुख्यमन्त्री काल में सम्वत् २०१२ वि० में श्री जगमोहनसिंह नेगी ने हाँ पर एक चबूतरे का शिला न्यास किया था। आज यह स्थान पर्यटकों े आकर्षण का केन्द्र बन चुका है। बसन्त पंचमी को यहाँ भारी मेला गता है, प्रसिद्ध पत्रकार श्री ललित प्रसाद नैथानी ने इसके विकास के लिए बहुत प्रयास किया है।

सिद्धवली

कोटद्वार से डेढ़ किलो मीटर की दूरी पर खोह नदी के किनारे सिद्धवली का प्रसिद्ध मन्दिर है। इस मन्दिर में बहुत दूर-दूर से दर्शनार्थी बड़ी संख्या में आते हैं। मन्दिर देखने योग्य है।

लैंसडाउन

कोटद्वार से ४० कि० मी० की दूरी पर समुद्र की सतह से १७०६ मी० ऊँचे लैंसडाउन की स्थापना का श्रेय अंग्रेजों को जाता है। इसका नाम पहले कालौं डाँडा था। वर्तमान नाम इसका वायसराय लार्ड लैंस डाउन के नाम पर रखा गया है। यहाँ सन् १८८७ में गढ़वाल राइफल्स की स्थापना की गई थी। तब से यह गढ़वाल राइफल्स का मुख्यालय होने के साथ-साथ प्रकृति की गोद में बसा एक सुन्दर पर्यटक स्थल भी है। बाँज

बुराँस व देवदार के सघन वनों के बीच यह नगरी सैलानियों का स्वर्ग है। यहाँ से हिमालय के नयनाभिराम दृश्य दिखाई देते हैं। कालेश्वर महादेव का मन्दिर प्रसिद्ध है, यहाँ का सैनिक स्मारक दर्शनीय है।

ज्वालपादेवी

कोटद्वार-पौड़ी मार्ग पर पश्चिमी नयार नदी के किनारे पर ज्वालपा-धाम स्थित है। पौड़ी से इसकी दूरी ३३ किलो मीटर है। यहाँ पर देवी का दर्शनीय मन्दिर है। नवरात्र में यहाँ दर्शनार्थियों की भारी भीड़ रहती है। यहाँ एक संस्कृत पाठशाला भी है। गढ़वाल मण्डल विकास निगम ने यहाँ पर एक पर्यटक आवास गृह भी बना दिया है।

पौड़ी

गढ़वाल मण्डल का मुख्यालय होने के साथ-साथ अपनी आकर्षक छटा के कारण पौड़ी आज सैलानियों का केन्द्र बन गया है। सिन्धुतट से १८१४ मीटर की ऊँचाई पर बसा पौड़ी श्रीनगर से २९ किलो मीटर की दूरी पर है।

सन् १८४० ई० में अंग्रेजों ने इसे ब्रिटिश गढ़वाल का मुख्यालय बनाया था। इससे गढ़वाल की राजधानी श्रीनगर थी। हिमालय का जो भव्य दृश्य यहाँ से दिखाई देता है वह अन्य किसी स्थान से दुलर्भ है। एकबार प्रधानमन्त्री श्रीमती इंदिरागांधी कंडोलिया के मैदान में भाषण देते समय हिमालय का दृश्य देखकर मन्त्र मुग्ध हो गई थीं। यहाँ के देवदार बांज व बुराँस के वृक्ष पर्यटकों को आकर्षित करते हैं। यहाँ की जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है। क्यूंकालेश्वर का प्राचीन मन्दिर यहाँ देखने योग्य है। सभी आधुनिक सुविधाएँ यहाँ उपलब्ध हैं।

देवलगढ़

श्रीनगर से लगभग १२ कि० मी० की दूरी पर श्रीनगर-खिर्सू मार्ग पर यह प्रसिद्ध शक्तिपीठ है, यहाँ भगवती राजराजेश्वरी का प्राचीन मन्दिर है। उनियाल जाति के ब्राह्मण इसके पुजारी हैं। यह देवी गढ़वाल

नरेशों की भी कुलदेवी है। पँवार वंश के ३७ वें राजा ने श्रीनगर से पूर्व अपनी राजधानी यहीं बसाई थी। यहाँ सत्यनाथ का मन्दिर भी दर्शनीय है। वैशाखी को देवलगढ़ में भारी मेला लगता है। भारत के महान राजनीतिज्ञ हिमालय के वरद पुत्र उ० प्र० के भूतपूर्व मुख्यमन्त्री श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा का गाँव बुधाणी इसी के निकट है।

खिर्सू

पौड़ी से १६ कि० मी० की दूरी पर खिर्सू अत्यन्त रमणीक स्थान है। बांज बुराँस के सघन जंगल के मध्य यह स्थान विकास खण्ड का मुख्यालय होने के साथ-साथ सेवों के लिए भी प्रसिद्ध है। हिमालय का दृश्य यहाँ से बड़ा चित्ताकर्षक लगता है। यह एक स्वास्थ्यवर्धक स्थान है।

बिनसर

दूधातोली पर्वत के पाद प्रदेश में पौड़ी से लगभग ६३ कि० मी की दूरी पर बिनसर स्थित है। देवदास के घने जंगल के मध्य बिनसर देवता का प्राचीन मन्दिर वस्तुकला का अनोखा नमूना है। सिन्धुतट से इसकी ऊँचाई २७५६ मी० के लगभग है।

नीलकंठ

लक्ष्मण झूला से पैदल मार्ग से आठ कि० मी० की दूरी पर १५५०. मी० ऊँचाई पर नीलकंठ महादेव का विशाल मन्दिर है। यह मनोरम और स्वास्थ्यवर्धक जलवायु वाला स्थान है। साधुओं का सिद्ध स्थल भी माना जाता है। पतित पावनी गंगा का दृश्य यहाँ से बहुत ही मनोरम लगता है। अब फूलचट्टी होते हुए कुछ दूरी तक मोटर मार्ग की भी सुविधा हो गई है। धार्मिक भावना वाले यात्री यहाँ सावन भादों में जाते हैं।

बिल्वकेदार

यह स्थान श्रीनगर से ५ कि० मी० दक्षिण की ओर कीर्तिनगर के सामने है। खांडव नदी और अलकनन्दा का लुभावना संगम है। शिव का प्राचीन मन्दिर है। शिव और अर्जुन का किरातर्जुन युद्ध यहीं पर हुआ था। पैदल यात्रा के दिनों में यह यात्रियों का मुख्य पड़ाव था।

मुण्डनेश्वर

पौड़ी-कांसखेत-सतपुली मार्ग पर विकासखंड कल्जीखाल में समुद्र की सतह से १८०० मी० की ऊँचाई पर बड़ा रमणीक स्थान है। यहाँ के प्राचीन मन्दिर में प्रतिवर्ष मेला लगता है।

तड़ासर

लैंसडाउन से लगभग २१ कि० मी० दूर देवदार वृक्षों के मध्य तड़ासर महादेव का प्राचीन मन्दिर है। स्थान रमणीक है। वातावरण अत्यन्त शान्तिमय है।

मसूरी से केदारनाथ

(टिहरी, घनसाली व चिरबिटिया होकर)

स्थान	ऊँचाई (मी०)		दूरी (कि०मी)
मसूरी	१६२१		०
धनोल्टी	२२५८		२६
चम्बा	१५२४		५५
टेहरी	७७०		७६
गडोलिया	७७०		९३
घनसाली	९७६		१११
चिरबिटिया	२१३४		१४२
तिलवाड़ा	६७१		१८४
अगस्त्यमुनि	७६२		१९४
कुण्ड	९७६		२०९
गुप्तकाशी	१४७९		२१४
नारायण कोटि	१५००		२१७
फाटा	१६०१		२२८
रामपुर	१६४६		२३७
सोनप्रयाग	१८२९		२४०
गौरीकुण्ड	१९२२		२४५
रामवाड़ा	२५९१	(पैदल)	२५२
गरुड़चट्टी	३२६२	(पैदल)	२५६
श्री केदारनाथ	३५८३	(पैदल)	२५९

मसूरी से बदरीनाथ

(टिहरी, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग होकर)

स्थान	ऊँचाई (मी०)	दूरी कि०मी०)
मसूरी	१९२१	०
धनोल्टी	२२५८	२६
चम्बा	१५२४	५५
टेहरी	७७०	७६
श्रीनगर	५७९	१३६
रुद्रप्रयाग	६१०	१७०
घोलतीर	६४५	१८०
गौचर	७९०	१९०
कर्णप्रयाग	७९५	२०१
नन्दप्रयाग	९१४	२२१
चमोली	१०६९	२३१
विरही	११००	२३९
पीपलकोटि	१३११	२४८
गरुड़ गंगा	१३७२	२५३
हेलंग	१५२४	२६५
जोशीमठ	१८९०	२७९
विष्णुप्रयाग	१३७२	२८९
पाण्डुकेश्वर	१८२९	३०३
देवदर्शनी	३१०१	३२५
श्री बदरीनाथ	३११०	३२७

नैनीताल से बदरीनाथ

(रानीखेत होकर)

स्थान	ऊँचाई (मी०)	दूरी (कि० मी०)
नैनीताल	१८२६	०
भुवाली	१८००	११
रानीखेत	१८२९	५९
द्वाराहाट	१३१३	९७
चौखुटिया	१००२	११८
पाण्डुखाल	१७५०	१३८
गैरसैण	१३१३	१५६
कर्णप्रयाग	७९५	२१२
नन्दप्रयाग	९१४	२३२
चमोली	१०६९	२४२
पीपल मोटी	१३११	२६१
जोशीमठ	१८९०	२९२
पाण्डुकेश्वर	१८२९	३१६
हनुमानचट्टी	२२८६	३२५
श्री बदरीनाथ	३११०	३४०

नैनीताल से बदरीनाथ

(अल्मोड़ा होकर)

स्थान	ऊँचाई (मी०)	दूरी (कि० मी०)
नैनीताल	१८२९	०
भुवाली	१८००	११
अल्मोड़ा	१६४६	६५
कौसानी	१८९०	११६
बैजनाथ	११०८	१३५
ग्वालदम	१९४०	१४९
कर्णप्रयाग	७९५	२१८
नन्दप्रयाग	९१४	२४०
चमोली	१०६९	२५०
बिरही	११००	२५८
पीपलकोटी	११३१	२६७
गरुड़ गंगा	१३७२	२७२
टंगणी	१६७७	७८
हेलंग	१५२४	८४
जोशीमठ	१८९०	९८
विष्णुप्रयाग	१३७२	०८
गोविन्दघाट	१८२९	३१८
पाण्डुकेश्वर	१८२९	३२२
हनुमानचट्टी	२२८६	३३१
श्री बदरीनाथ	३११०	३४६

उत्तराखण्ड के कुछ प्रसिद्ध पर्वत शिखर

शिखर का नाम	ऊँचाई (मीटरों में)
नन्दादेवी	७८१८
कामेट	७७५८
माणा	७२७४
चौखंबा	७१४०
त्रिशूल	७१२२
दूनागिरी	७०६८
पंचचूली	६९०५
चंगबंग	६८६६
नन्दाकोट	६८६३
मृगथूनी	६८५७
गंगोत्तरी	६६७२
पंवालीधार	६६६५
शिवलिंग	६५४४
नीलकंठ	६५९७
कीर्तिस्तंभ	६४०२
बन्दरपूंछ	६३१७
नन्दाघूंटी	६३१४
स्वर्गारोहिणी	६२५४
हनुमान	६०७६

परिशिष्ट

२५

कुछ प्रसिद्ध तीर्थों की नामावली

आज के युग में मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे अधिक विस्तार से पढ़ने का और सभी जगह घूमने का समय नहीं है। अतः अपने देश की संस्कृति, सिद्ध क्षेत्रों, दिव्य देशों, प्रधान तीर्थों और विभिन्न धर्मों के संबंध में सारांश में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा।

(क) द्वादश ज्योतिर्लिंग

(१) सोमनाथ (२) मल्लिकार्जुन

(३) महाकालेश्वर (४) ओंकारेश्वर

(५) केदारनाथ (६) भीम शंकर

(७) विश्वनाथ (८) त्र्यम्बकेश्वर

(९) वैद्यनाथ (१०) नागेश्वर

(११) रामेश्वर (१२) घुश्मेश्वर

ये १२ ज्योतिर्लिंग भारत में विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। इनमें केदारनाथ उत्तराखण्ड (गढ़वाल) में है। इनका स्मरण करने से सात जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, ऐसा कहा गया है। (शि० पु० ज्ञा० सं० अ० ३८)

(ख) २१ गणपति क्षेत्र

भारत में २१ प्रधान गणपति क्षेत्र बताए गए हैं। जिनके नाम नीचे दिये गये हैं।

१. मोरेश्वर	६. पाली	११. सिद्धटेक	१६. लेह्याद्रि
२. प्रयाग	७. पारिनेर	१२. राजनगांव	१७ वेरोल
३. काशी	८. गंगा मसले	१३. विजयपुर	१८. पद्मालय
४. कलम्ब	९. राक्षस भुवन	१४. कश्यपाश्रम	१९. नामल गांव
५. अदोप	१०. येऊर	१५. जलेशपुर	२०. राजूर
			२१. कुंभ कोणम

(ग) शंकराचार्य द्वारा स्थापित ४ प्रधान पीठ

(१)	ज्योतिष्पीठ	(जोशीमठ गढ़वाल में)
(२)	गोवर्धनपीठ	(जगन्नाथ पुरी में)
(३)	शारदा पीठ	(द्वारका में)
(४)	शृंगेरीपीठ	(मैसूर में)

(घ) १०८ दिव्य शिव क्षेत्र

भूमि पर स्थित १०८ दिव्य शिव क्षेत्र बताये गए हैं। जिनमें केदार, कूर्मेश्वर (गन्धमादन पर) और त्रिपुरान्तक (कूर्मांचल में) उत्तराखण्ड में हैं। —(ललितागम, ज्ञानपाद, शिवलिंग, प्रादुर्भाव पटल)

(ङ) १०८ दिव्य देश

आलवार सन्तों की दिव्य सूक्तियों के अनुशीलन करने पर १०८ दिव्य देशों की चर्चा मिलती है। (दिव्य देश वह होता है जो प्राकृत न होकर दिव्य-चिन्मय हो)

इनमें देव प्रयाग, तिरुप्पिरिदि (जोशीमठ) और वदरिकाश्रम गढ़वाल में हैं। [स्वामी राघवाचार्य जी—तीर्थांक (कल्याण)]

(च) १०८ दिव्य शक्ति स्थान

पुराणों के अनुसार भगवती दुर्गा के १०८ दिव्य शक्ति स्थान बताये गये हैं। भगवती दुर्गा इन स्थानों पर विभिन्न नामों से प्रसिद्ध है इनमें १६ स्थान उत्तराखण्ड हिमालय में हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. कामाक्षी (गंधमादन पर्वत पर)
२. कामचारिणी (मंदराचल पर)
३. मार्गदायिनी (केदारनाथ में)
४. नन्दा (हिमालय पर्वत पर)
५. त्रिसंध्या (कुब्जाभ्रक में)
६. रतिप्रिया (गंगाद्वार में)
७. भीमा (हिमाद्रि में)
८. उर्वशी (बदरीवन में)
९. मन्मथा (हेमकूट पर्वत पर)
१०. निधि (कुबेर गृह—अलकापुरी में)
११. शिवकारिणी (अच्छोद सरोवर)
१२. कुमुदा (मानसरोवर में)
१३. कुमारी (मायापुरी में)
१४. काला (चन्द्रभागा तट पर)
१५. मंगला (गंगा तट पर)
१६. मृगावती (यमुनातट पर)

(देवी भागवत ७।३।५५-८४; मत्स्य पुराण १३।२६-५६)

मोक्षदायिनी सप्त पुरियां

काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुरावन्तिका चैता: सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा:॥

काशी, कांचीपुरम, मायापुरी, (हरिद्वार) अयोध्या, द्वारावती, मथुरा और अवन्ती (उज्जैन) ये सात मोक्ष देने वाली पुरियां कही गई हैं।

चार धाम

भारत के चारों कोनों (चारों दिशाओं) में चार धाम प्रसिद्ध हैं।

१. श्री बदरीनाथ—यह धाम उत्तर दिशा में हिमालय में नर-नारायण पर्वत के नीचे है।

२. श्री द्वारका—द्वारकाधाम पश्चिम में गुजरात राज्य में समुद्र के किनारे है।

३. श्री जगन्नाथपुरी—यह पूर्व दिशा में प्रसिद्ध धाम है। यह उड़ीसा राज्य में है।

४. श्री रामेश्वर—यह दक्षिण दिशा में प्रसिद्ध धाम है। यह मद्रास राज्य में सागर तट पर है।

(छ) २७४ शैव स्थल

तमिल भाषा के पेरिया पुराण के अनुसार भारतवर्ष में २७४ स्थल हैं। इनमें ५ उत्तराखण्ड (हिमालय) में हैं। जो निम्न प्रकार हैं:

(१) इन्द्रकील पर्वतम
(२) गौरी कुण्डम
(३) केदारम
(४) कैलाश पर्वत
(५) अगस्त्यम् पलिल

(ज) १०८ दिव्य विष्णु स्थान

विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु के १०८ दिव्य स्थान हैं। जिन महात्माओं ने पूजा की है। इनमें—श्री रंग, श्री मुष्ण, वेंकटस्थल, हरिक्षे नैमिष, तोताद्रि, पुष्कर और बदरिकाश्रम इन आठ स्थानों पर भगवान श्री विग्रह स्वयं प्रकट हुए हैं।

(झ) ५१ शक्तिपीठ

तंत्रचूड़ामणि के अनुसार भारतवर्ष में ५१ शक्तिपीठ हैं। शक्तिपीठ स्थान हैं [जहाँ जहाँ भगवान शिव द्वारा मृत सती को ले जाते हु उनके अंग गिरे थे। इन स्थलों पर एक एक शक्ति तथा एक एक भैरव प्रकट हुए।

(ञ) वल्लभाचार्य की चौरासी बैठकें

भारतवर्ष में श्री वल्लभाचार्य की चौरासी बैठकें हैं। जिनमें बदरिकाश्रम, केदारनाथ, व्यासाश्रम और व्यासगंगा उत्तराखण्ड में हैं। ये बैठकें उन स्थानों पर स्थापित की गईं जहाँ जहाँ श्री आचार्य जी ने यात्राओं में श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण किया। आचार्य जी उत्तराखण्ड (गढ़वाल) में सम्वत् १५६८ में आए थे। देव प्रयाग में श्री चक्रधर जोशी के पास आचार्य जी के हस्ताक्षर वाला एक कागज है।

(ट) भारत के प्रधान बौद्ध तीर्थ

१. लुम्बिनी—बुद्ध का जन्म स्थान, यह नेपाल की तराई में है।

२. बुद्ध गया—यहाँ बुद्ध ने बोध प्राप्त किया था। गया से ७ मील दूर है।

३. सारनाथ—यहाँ से बुद्ध ने अपने धर्म का उपदेश दिया था। बनारस छावनी से ६ मील दूर है।

४. कुशीनगर—यहाँ बुद्ध का निर्वाण हुआ था। यह स्थान देवरिया सदर स्टेशन से २१ मील है।

(ठ) भारत के प्रधान दिगम्बर जैन तीर्थ

जैन सम्प्रदाय के दो प्रमुख भेद हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। प्रमुख जैन धर्म के अधिकतर तीर्थों को दोनों सम्प्रदाय मानते हैं। यहाँ केवल दिगम्बर जैन तीर्थों की सूची दी जा रही है।

१. अयोध्या, २. श्रावस्ती, ३. कौशांबी, ४. वाराणसी, ५. सिंहपुर, ६. चन्द्रपुर, ७. खखुंद, ८. रत्नपुर, ९. कम्पिल, १०. हस्तिनापुर, ११. सौरीपुर १२. मथुरा, १३. अहिच्छत्र १४. सम्मेद शिखर १५. पावापुर १६. राजगृह १७. चंपापुर १८. खण्डगिरि १९. कैलाश पर्वत, २०. गिरनार २१. मांगी-तुंगी २२. गजपन्था, २३. कुंथलागिरि २४. श्रवण वेलगोला २५. मूलबिद्री, २६. कारकल २७. केशरियाजी २८. श्री महावीर जी २९. सिद्धवर कूट ३०. बड़वानी ३१. मुक्तागिरि ३२. थूवन जी ३३. देवगढ़, ३४. अहार ३५. पपौरा ३६. कुण्डलपुर ३७. नैनागिरि, ३८. दोणगिरि ३९. खजुराहो ४०. सोनागिरि।

(श्री कैलाश चन्द्र शास्त्री—कल्याण (तीर्थाङ्क))

(ङ) जैन धर्म के २४ तीर्थङ्कर

१. श्री ऋषभ	१३. श्री विमल
२. श्री अजित	१४. श्री अनन्त
३. श्री संभव	१५. श्रीधर्म
४. श्री अभिनन्दन	१६. श्री शान्ति
५. श्री सुमति	१७. श्री कुन्थु
६. श्री पद्मप्रभ	१८. श्री अर
७. श्री सुपार्श्व	१९. श्री मल्लि
८. श्री चन्द्रप्रभ	२०. श्री मुनि सुव्रत
९. श्री पुष्पदन्त	२१. श्री नमि
१०. श्री शीतल	२२. श्री नेत्री
११. श्री श्रेयास	२३. श्री पार्श्व
१२. श्री वासुपूज्य	२४. श्री महावीर

भारत के १२ प्रधान देवी विग्रह

१. कामाक्षी	—	काञ्चीपुर
२. भ्रामरी	—	मलयगिरि में
३. कुमारी	—	मालावार (केरल) में
४. अम्बा	—	आनर्त (गुजरात) में
५. महालक्ष्मी	—	करवीर (कोल्हापुर) में
६. कालिका	—	मालवा (उज्जैन) में
७. ललिता	—	प्रयाग में
८. विन्ध्यवासिनी	—	विन्ध्यगिरि
९. विशालाक्षी	—	वाराणसी में
१०. मंगलावती	—	गया में
११. सुन्दरी	—	वंगाल में
१२. गुह्यकेश्वरी	—	नेपाल में

(त्रिपुरा रहस्य, माहात्म्य खं० अ० ४८/७१-७५)

संदर्भ ग्रंथ

१. उत्तराखण्ड यात्रा दर्शन—	डा० शिव प्रसाद डबराल
२. उत्तराखण्ड का इतिहास—	"
३. केदार खण्ड (गढ़वाल)—	"
४. अलकनन्दा उपत्यका—	"
५. उत्तराखण्ड के भोटान्तिक—	"
६. उत्तराखण्ड के पशुचारक—	"
७. गढ़वाल का इतिहास—	पन्डित हरिकृष्ण रतूड़ी
८. नरेन्द्र हिन्दू लो—	"
९. तपोभूमि उत्तराखण्ड—	महीधर शर्मा
१०. बदरीनाथ दर्शन—	प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
११. गंगा यमुना के नैहर में—	विष्णु प्रभाकर
१२. गंगोत्तरी दर्शन—	डा० महावीरसिंह गलहोत
१३. उत्तराखण्ड एक सर्वेक्षण—	सं० डा० गोविन्द चातक
१४. कुमायूं का इतिहास—	पं० बदरीदत्त पाण्डे
१५. ऋगवेद—	सातवलेकर भाष्य
१६. अथर्व वेद—	" "
१७. गढ़वाल की लोकधर्मीकला—	मोहनलाल बाबुलकर
१८. हिमालय में मतमतांतर—	मोहनलाल बाबुलकर
१९. हिमालय का इतिहास—	डा० मदनचन्द्र भट्ट
२०. केदारखण्ड—	बम्बई संस्करण
२१. हिमालय की गोद में—	महावीर प्रसाद पोद्दार

२२. उत्तराखण्ड की यात्रा— सेठ गोविन्द दास

२३. महाभारत— गीताप्रेस संस्करण

२४. कुमार संभव— महाकवि कालिदास

२५. किरातार्जुनीयम— भारवि

२६. रामायण प्रदीप— मेधाकर शास्त्री

२७. मानोदय— भरत कवि

२८. हिमालय परिचय— महापंडित राहुल सांकृत्यायन

२९. श्री शंकराचार्य— बलदेव उपाध्याय

३०. पुराण साहित्य— विभिन्न प्रकाशन

३१. कनक वंश महाकाव्य— बालकृष्ण भट्ट

३२. तीर्थाङ्क (कल्याण)— गीताप्रेस

३३. पुराणों में गंगा— दयाशंकर दुबे

३४. उत्तरापथ की एक झांकी— उमराव सिंह रावत

३५. कादम्बरी— बाण भट्ट

३६. काल आफ बदरीनाथ— गोविन्द प्रसाद नौटियाल

३७. हिमालयन डिस्ट्रिक्ट— एटकिन्सन

३८. होलि हिमालय— ओकले

३९. एक्सप्लोरेशन इन तिब्बत— प्रणवानन्द

४०. गढ़वाल एनशियन्ट एण्ड माडर्न— पातीराम

४१. कस्टमरी लॉ इन कुमायूँ— पन्नालाल

४२. वेलि आफ गॉड्स— परिपूर्णानन्द पैन्यूली

४३. श्री बदरीनाथ टेंपल ऐक्ट— राजकीय प्रकाशन

४४. गढ़वाल सेटलमेंट रिपोर्ट—

४५. ऐट द फीट आफ बदरीनाथ— एस. एल. मल्होत्रा

४६. फुट पाथ्स आफ इण्डियन हिस्ट्री— मिस्टर निवेदिता

४७. गजेटियर आफ गढ़वाल डिस्ट्रिक्ट— वाल्टन

४८. वेस्टर्न तिबेट एण्ड ब्रिटिश बोर्डर लैंड— शेरिंग

४९. वेलि आफ फ्लावर्स— स्माइथ

५०. रिपोर्ट आन द पिलग्रिम रूट— आदम्स

५१. गढ़वाल में कौन कहाँ— महीधर शर्मा बड़थ्वाल

५२. गढ़वाल की दिवंगत विभूतियाँ— भक्त दर्शन

५३. उत्तराखण्ड परिचय— रमेश दत्त उनियाल

५४. देवभूमि यात्रापर्यटन पर्वतारोहण विशेषांक रामप्रसाद बहुगुणा

५५. गढ़वाली लोकमानस— डा. शिवानंद नौटियाल

५६. वसुधारा (चण्डीगढ़)— स० बलराज जोशी

५७. असंख्य भारतीयों की आस्था का केन्द्र बदरीनाथ—धर्मानन्द उनियाल—(लेख अमर उजाला में)

५८. चारों धाम यात्रा महात्म्य— विशालमणि शर्मा

५९. उत्तराखण्ड तीर्थ महात्म्य— पं. कुलानन्द शर्मा

६०. सर्वोच्च हिन्दू तीर्थ तुंगनाथ—धर्मानन्द उनियाल (लेख-तरुण हिन्दी में)

६१. तपोवन से स्वर्गारोहण— प्रेमलाल भट्ट (लेख-मासिकी)

६२. पुन्यस्थल—श्रीनगर— भैरवदत्त शास्त्री

६३. बदरिकाश्रम— सच्चिदानन्द भारती

२८८+३२=३२०]

६४. हिमालय दर्शन— सं. वेणीशंकर शर्मा

६५. श्री बदरीनाथ महायोजना—नगर एवं ग्राम नियोजन विभाग (उ० प्र०)

६६. विचित्र नाटक— गुरु गोविन्द सिंह

●

लेखक : धर्मानन्द उनियाल

मूलतः पत्रकार; नाटक एवं उपन्यास को छोड़कर हिन्दी की लगभग सभी विधाओं में रचनायें प्रकाशित। पुस्तक रूप में अब तक छोटी बड़ी केवल 7 पुस्तकें छपी हैं। आठवीं पुस्तक "बदरी-केदार की ओर" आपके हाथ में। चर्चित पुस्तकें—"देश के सच्चे सपूत" (चार संस्करण) और "गढ़वाल दर्शन"। आकाशवाणी से हिन्दी तथा गढ़वाली वार्तायें एवं कवितायें प्रसारित। अनेक सामाजिक संस्थाओं से सम्बद्ध। सम्प्रति गढ़वाल मण्डल में फ्री लांसर पत्रकार।

आगामी रचनाय :

1—उत्तराखण्ड के दर्शनीय स्थल

2—रण बाँकुरे गढ़वाली

3—विद्रोही सुमन

उत्तराखण्ड यात्रा का नक्शा